चीन-भारती हिन्दी ग्रंथमाला—२

चीन का भाग्य

चिआङ् काइ-शेक

अनुवादक
कृष्ण किंकर सिंह

चीन—भारती
(चीन-भारत सांस्कृतिक संघ की भारतीय शाखा)

शांतिनिकेतन, भारतवर्ष
की ओर से

साहित्य भवन लिमिटेड
प्रयाग

मूल्य सजिल्द आठ रुपया

प्रथम संस्करण, १९४८

प्रकाशक—चीन-भारती, शांतिनिकेतन की ओर से
साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग
मुद्रक—जगतनारायण लाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

जेनरलिस्मो चाङ् काइ-शेक और उनकी धर्मपत्नी

प्राक्कथन

मुझे जेनरलिस्मो चिश्राङ् काइ-शेक की अत्यन्त प्रसिद्ध चीनी पुस्तक "चीन का भाग्य" का हिंदी अनुवाद भारतीय पाठकों के सामने उपस्थित करने में अत्यन्त हर्ष हो रहा है। पिछले वर्षों में संसार में जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें सबसे अधिक बिकनेवाली पुस्तकों में यह एक है। इसीसे पुस्तक की अद्भुत लोकप्रियता का पता चल जाता है। अंग्रेजी में इसके दो अनुवाद हो चुके हैं। आधुनिक युग में चीन और भारत को समझने के लिये तीन अति उत्तम पुस्तकें लिखी गई हैं। एक तो यही है, दूसरी है डा० सुन् यात सन् की पुस्तक "जनता के तीन सिद्धान्त।" तीसरी पुस्तक है पंडित जवाहरलाल नेहरू की "डिस्कवरी ऑफ इंडिया।" इन पुस्तकों ने चीन और भारत को ठीक ठीक चित्रित किया है। पश्चिमी पाठक प्रायः ऐसी भ्रान्त धारणाएँ बनाए हुए हैं जिनके कारण वे पूर्व की हलचलों को ठीक-ठीक नहीं समझ पाते। उनके लिये ये पुस्तकें अच्छे मार्गदर्शन का काम देती हैं।

अब तक संसार जेनरलिस्मो चिश्राङ् को एक महान् राजनीतिज्ञ और लोक-नेता के रूप में ही जानता रहा है। इस पुस्तक ने पहली बार उसे दिखा दिया कि चीन का यह जन-नायक वस्तुतः सूक्ष्मदर्शी-पंडित और तत्त्वदर्शी भी है। अपने महान् नेता की आँखों से देखा हुआ चीन का यह चित्र बहुत प्रेरणादायक बना है। साम्राज्यवाद के हाथों उसकी दुर्दशा, वर्तमान समय की उसकी उलझी हुई समस्याएँ और भविष्य की उसकी आवश्यकताएँ बहुत स्पष्ट रूप में दुनिया के सामने प्रकट हुई हैं। इस पुस्तक में इस जन-नायक ने अपने देश के पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय चेतना संचार की योजनाएँ प्रस्तुत की हैं और इन योजनाओं को संगठित रूप से कार्य कर बनाने के सुझाव दिए हैं। जेनरलिस्मो चिश्राङ् का यह साहित्यिक उपस्थापन और सांस्कृतिक दृष्टिकोण बहुत ही विस्मयकर रूप में संसार के सामने प्रकट हुआ है। उनकी अन्तर्भेदिनी पैनी दृष्टि सब-कुछ के बाह्य आवरण का अतिक्रम करके भीतर जा सकी है।

यद्यपि पुस्तक में राजनीतिक और आर्थिक बातों की ही अधिक चर्चा है तथापि यह राजनीति या अर्थनीति—प्रतिदिन की व्यावहारिक राजनीति या अर्थनीति—नहीं है। यह समूचे राष्ट्र के अन्तःस्पन्दन की सूचना देने वाली व्यवस्था है। इन बातों को पढ़े बिना हम आधुनिक चीनी जनता की आशाओं और आकांक्षाओं का ठीक-ठीक अन्दाजा नहीं लगा

सकते। आज के युग में राजनीति और अर्थनीति जाति के संपूर्ण अस्तित्व को जकड़े हुए है। उनको छोड़कर किसी देश के वर्तमान और भविष्य का विचार नहीं किया जा सकता।

इस महान् पुस्तक का हिंदी अनुवाद श्री कृष्ण किंकर जी ने किया है श्री कृष्ण किंकरसिंह जी आजकल चीन भवन में हिंदी के अध्यापक हैं; कुछ दिन पहले वे चीन के प्राच्य विद्या कालेज में हिंदी के अध्यापक थे। अनुवाद परिश्रमपूर्वक किया गया है और उसमें यथासंभव मूल के निकट रहने का प्रयत्न है। इन्होंने अनुवाद करने के पहले चीन के प्राचीन और आधुनिक साहित्य और इतिहास का मनन और अध्ययन किया है। इस प्रकार के मनन के बिना पुस्तक को समझना संभव नहीं था। इसीलिये मुझे इस अनुवाद को भारतीय पाठकों के सामने रखने में विशेष आनंद आ रहा है।

भारतवर्ष की चीन-भारती (चीन-भारत सांस्कृतिक संघ) ने "चीन-भारती ग्रंथमाला" नाम से हिंदी और अंग्रेजी में दो ग्रंथमालाएँ निकली हैं। हिंदी ग्रन्थमाला की प्रथम पुस्तक डा० सुन् यात्-सन् के "जनता के तीन सिद्धान्त" प्रकाशित हो चुकी है और यह पुस्तक इसी माला की दूसरी पुस्तक है। भारत के अच्छे ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद कराने का प्रयत्न भी हो रहा है। चीन-भारती के सदस्य और चीन भवन में चीनी भाषा और साहित्य के अध्यापक श्री य० य० याङ् ने पंडित नेहरू की 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया" का चीनी अनुवाद प्रस्तुत किया है जिसे शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।

यह कितने आश्चर्य और खेद की बात है कि चीन और भारत इतने निकट के पड़ोसी होते हुए भी और अत्यंत प्राचीनकाल से एक दूसरे के परिचित और मित्र होते हुए भी आजकल एक दूसरे से प्रायः अपरिचित हो बने हुए हैं। इस प्रकार के अनुवादों से निश्चय ही हमें एक दूसरे को समझने में सुविधा होगी। हमें आशा करनी चाहिए कि भविष्य में भारतवर्ष और चीन अत्यधिक निकट आएंगे और एक दूसरे का परिचय घनिष्ठ भाव से प्राप्त कर सकेंगे। तभी वे संसार को कुछ नया दे सकेंगे। तथास्तु।

तान युन-शान 譚雲山

चीन भवन
शांतिनिकेतन
१—१२—४८

चीन भारती के अधिष्ठाता
और
विश्व भारती चीन भवन के अध्यक्ष

चीन का भाग्य

चिआङ् काइ-शेक

पहला अध्याय

चुङ् ह्वा (चीनी) राष्ट्र की वृद्धि और विकास

पाँच हजार वर्ष बीत रहे हैं जब कि एशिया महादेश में हमारे चुङ् ह्वा राष्ट्र की स्थापना हुई थी। संसार के बहुत से पाँच हजार वर्ष प्राचीन राज अब ऐतिहासिक ख्याति मात्र रह गए हैं पर हमारा ही एकमात्र राज है जो अब तक केवल गौरव के साथ अपना अस्तित्व ही बनाए हुए नहीं है बल्कि आज सार्वभौमिक न्याय और ईमानदारी की स्थापना तथा मानव जाति की स्वतंत्रता और मुक्ति के लिये विभिन्न शांतिप्रिय और आक्रमण विरोधी राष्ट्रों के साथ मिलकर इस अभूतपूर्व युद्ध[1] में जुझा हुआ है तथा गौरवमय विजय और स्थायी शांति की ओर अग्रसर हो रहा है।

हम सभी जानते हैं कि राष्ट्र का विकास प्राकृतिक ढंग से होता है और राज मानवीय शक्तियों द्वारा स्थापित किया जाता है। अपनी प्राकृतिक वृद्धि की प्रक्रिया में चुङ् ह्वा राष्ट्र को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये सम्मिलित विरोध द्वारा बाहरी आक्रमण का मुकाबला करना पड़ा है और उसके सभी लोगों के सम्मिलित उद्योग से चीन राज का निर्माण हुआ है। निरन्तर मिश्रण और जनसंख्या की क्रमिक वृद्धि के कारण चुङ् ह्वा राष्ट्र बहुत बड़ा तथा शक्तिशाली हो गया और साथ-साथ उसके राज की सीमा का भी विस्तार हुआ। लेकिन चीनी राष्ट्र ने अपनी वृद्धि की प्रक्रिया में न तो कभी अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की सीमा का अतिक्रमण किया है और न कभी अपने राज की सीमा के बाहर अपने सैन्य बल के प्रसार का प्रयत्न ही किया है। यदि अपने सैन्य बल से चीन की राष्ट्रीय सीमा के भीतर घुस कर कोई आक्रमणकारी चीन के अस्तित्व के लिए आवश्यक भूभाग पर

(१) यह पुस्तक प्रथम बार चीन में सन् १९४३ में चीनी भाषा में प्रकाशित हुई थी। उस समय प्रशांत युद्ध और युरोपीय युद्ध दोनों ही चल रहे थे और चीन आक्रमणकारियों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों के साथ था।

अधिकार जमाता था तो इस अपमान की पीड़ा और अस्तित्व रक्षा की आवश्यकता से प्रेरित हो चुङ् ह्वा (चीनी) लोग उठ खड़े होते थे और खोए हुए भूभाग को पुनः लौटा लेते थे और इस प्रकार अपने राज का पुनरुद्धार करते थे।

चीन के इतिहास पर अगर हम गौर करें तो ज्ञात होगा कि चुङ् ह्वा (चीनी) राष्ट्र विभिन्न कुलों के एक में घुलमिल जाने से बना है। ये विभिन्न कुल मूलतः एक ही जाति और एक ही वंश के थे जो पामीर प्लेटो से पूर्व ह्वाङ् हो (ह्वाङ्=पीला; हो=नदी), ह्वाइ हो, छ्राङ् चिश्राङ् (याङ् टि सि किश्राङ्; चिश्राङ्=नदी) हइ लुङ् चिश्राङ् (आमूर नदी) और चु चिश्राङ् (पर्ल नदी) के कांठों और दूनों में फैले हुए थे। भौगोलिक वातावरण की विभिन्नता के कारण उनमें विभिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ और इसी कारण हरेक की अपनी विशेषतायें रहीं। लेकिन गत पाँच हजार वर्षों से लगातार एक दूसरे के सम्पर्क में आने और बहुत बार स्थान परिवर्तन के कारण निरन्तर वे आपस में घुलते-मिलते गए। इस प्रकार अब वे एक राष्ट्र के अविछिन्न अंग हैं। लेकिन इस मिश्रण का कारण हमारी संस्कृति का आकर्षण था, सैन्य बल का भय नहीं और चीन ने उन्हें विजय द्वारा नहीं, सहायता द्वारा अपने में मिलाने का उपाय बरता। वु ति (=पाँच शासनकर्त्ता—चीन के प्रागैतिहासिक काल के शासनकर्त्ता) काल के बाद का लिखित वृत्त अपेक्षाकृत अधिक मिलता है और उससे उन कुलों के संगठन की विभिन्न बातों का स्पष्ट पता चलता है। चार समुद्र के अंदर (यह चीनी भाषा की एक पुरानी कहावत है जिसका अर्थ है सम्पूर्ण चीन देश) के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले विभिन्न कुलों की उत्पत्ति या तो एक पूर्वज से हुई थी या उनका पारस्परिक संबंध परम्परागत वैवाहिक बंधन के कारण हो गया था। श चिङ् (=काव्य संहिता, यह चीनी भाषा का एक प्राचीन ग्रंथ है जिसमें पुरानी कविताओं और गीतों का संग्रह है) में लिखा है—"वन् वाङ् (सम्राट् वन्; वाङ्=सम्राट्) के वंशधरों की मूल परम्परा और उप-परम्परा सौ पीढ़ियों में है।" इसका तात्पर्य यह है कि एक वंश परम्परा की छोटी-बड़ी शाखाओं में एक ही रक्त रहता है। इसी ग्रंथ में पुनः उल्लेख है— "वे पराये नहीं, वे भाई, भांजे और मामा हैं।" इसका तात्पर्य

यह है कि विभिन्न कुलों को रक्त संबंध के अतिरिक्त वैवाहिक संबंध भी एक सूत्र में बाँधे हुए था। प्राचीन काल में इसी तरह से चीनी राष्ट्र संगठित हुआ। इसलिये उस समय चीन के सब लोगों का यह महान् नैतिक आदर्श और उदार भ्रातृ प्रेम कि "चार समुद्र के अंदर के सब लोग भाई भाई हैं" शब्दाडम्बर मात्र नहीं था।

छिन् राजवंश (ई० पू० २४६—२०६—इसी राजवंश ने पहली वार चीन को एक केन्द्रीय सरकार के अधीन संगठित किया) और हान् राजवंश (ई० पू०—२०६—सन् २२० ई०) के समय चीन की सैन्य शक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर थी। यह सैन्य शक्ति उत्तरी सीमा पर बाहरी दुश्मनों से चीन के राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा करती थी और दक्षिण में लोगों की जीविका के लिये नए नए स्थानों को खोज कर आबाद कर रही थी। चीन के उत्तर-पश्चिम की मरुभूमि और चरागाह वाले प्रदेशों में बसने वाले भिन्न-भिन्न कुल निरन्तर स्थान परिवर्तन करते हुए मध्य चीन के कृषि-प्रधान भूभाग में खिसक आते थे तो उनके और चीन वालों के बीच छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ हो ही जाती थीं। उन खानाबदोश लोगों के साथ चीन सरकार की नीति अपनी सैन्य शक्ति द्वारा उनके आक्रमण का मुकाबला करने की थी और जब वे चीन सरकार के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करते थे तो वह (चीन सरकार) अपने अच्छे शासन-प्रबंध द्वारा उन्हें सुसंस्कृत बनाती थी। इसी कारण उस काल में चीन की सीमा उत्तर में मरुभूमि के पार तक पूर्व में लिआव् तुङ् तक और पश्चिम में छुङ् लिङ् पर्वत तक फैली हुई थी। उधर दक्षिण-पूर्व में धीरे-धीरे कृषि की उन्नति हो रही थी और दक्षिण-पश्चिम प्लेटो प्रदेश तथा मध्य चीन के समतल प्रदेश के बीच घनिष्ट आर्थिक संबंध स्थापित हो रहा था। इसलिये उस काल में दक्षिण चीन की सीमा दक्षिण में नान् हाइ (दक्षिण चीन सागर) तक, पूर्व में वु (आधुनिक चिआङ् सु और चे चिआङ् प्रान्त) तक, पश्चिम में मिएन् तिएन् (वर्मा) तक और दक्षिण-पश्चिम में युए नान् (इंडोचाइना) तक फैल गई थी। जीविका के लिये अन्योन्याश्रित होने तथा पारस्परिक सांस्कृतिक मिश्रण के कारण चीन के विभिन्न भागों में बसने वाले अधिकांश कुल उस समय तक एक साथ मिलकर चुङ् हा (चीन) नामक एक महान् राष्ट्र के रूप में हो चुके थे।

त्रिक राज काल[1] (सन् २२०-२५६ ई०) में यद्यपि चीन स्वतंत्र इकाइयों में विभक्त हो गया था और वे आपस में एक दूसरे से जुझे रहते थे फिर भी तीनों राजों (वइ, वु और शु-हान्) की सरकारों ने सीमाप्रान्तों में सुव्यवस्था स्थापित कर तथा बंजर और सुदूर भूभागों को आबाद कर उभय हान्[2] राजवंशों के अधूरे कार्यों को पूरा करने का प्रयत्न किया था। पश्चिम चिन् राजवंश[3] (सन् २६५-३१६ ई०) के समय 'वु हु'[4] (वु=पांच, हु=वर्बर—पाँच वर्बर) कबीलों के आक्रमण के कारण हान् लोगों को (चीन लोगों को) दक्षिण खिसक जाना पड़ा और ह्वाङ् हो (पीली नदी) के कांठों पर श्युङ् नु (हूण) और शिएन् पइ[5] कबीलों का अधिकार हो गया। ये लोग भी धीरे धीरे हान् लोगों द्वारा अपने में घुला मिला लिए गए। फु छिन्[6] (सन् ३५१-३८६ ई० के लगभग) और यूआन् वइ[7] (सन् ३८६-५३५ ई०) राजवंशों ने यद्यपि अधिक या थोड़े काल तक ह्वाङ हो कांठों पर राज्य किया लेकिन दोनों ने ही अंत में चीन के रीति-रिवाज तथा राजनीतिक और शिक्षा संबंधी नीति अपनाई। सुइ (सन् ५८१-६१८ई०) और थाङ् (सन् ६१८-९०७ ई०) राजवंशों के समय सारा देश जो एक सूत्र में संगठित किया जा सका वह वास्तव में वइ,[8] चिन्[9] और उत्तर[10] तथा दक्षिण[11] राजवंशों के चार सौ वर्षों के बीच विभिन्न कुलों के एक में घुलमिल जाने का ही फल था। उस काल तक चुङ् ह्वा राष्ट्र में कितने ही कुल अन्तर्लीन हो चुके थे और उसकी (चुङ् ह्वा राष्ट्र की) संस्कृति इतनी फूली-फली थी कि उसकी सीमा के अन्दर यानी छुङ् लिङ् पर्वत शृङ्खला के पूर्व, ह्वाङ्हाइ (पीला सागर) के पश्चिम, मरुभूमि (गोबी मरुभूमि) के दक्षिण और नान् हाइ (दक्षिण चीन सागर) के उत्तर के सम्पूर्ण भूभाग के दर्शन, साहित्य, कला, ज्योतिष, गणित, कानून, संस्थायें रीति रिवाज और अनुश्रुतियाँ सब के सब एक साँचे में ढल गए थे।

सुङ् राजवंश (सन् ९६०-१२७९ ई०) के समय राष्ट्र की अस्तित्व

१ देखिए परिशिष्ट 'क' में टिप्पणी नं० १
२ ,, ,, ,, ,, ,, नं० २
३ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ३
४ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ४
५ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ५
६ देखिए परिशिष्ट 'क' में टिप्पणी नं० ६
७ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ७
८ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ८
९ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ९
१० ,, ,, ,, ,, ,, नं० १०
११ ,, ,, ,, ,, ,, नं० ११

रक्षा के लिये चीन के पास काफी शक्ति नहीं थी। चीन के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में रहने वाले छि तान[1] (कितान् या खितान—लिआव् राजवंश) और नू-चन्[2] (चिन् राजवंश) कुलों का मिश्रण अब तक हान् लोगों के साथ पूर्ण रूप से नहीं हुआ था। इन कुलों ने सुङ् राजवंश के उस अवसर का लाभ उठाकर जब देश में लोगों का चारित्रिक ह्रास हो गया था, राजनीतिक अराजकता फैली हुई थी और सुङ् राजवंश की सैन्य शक्ति कमजोर पड़ गई थी, अपने पड़ोसी कुलों को हड़प लिया और वे शक्तिशाली हो गये। छि-तान् और नू-चन् दोनों ने क्रमशः आगे पीछे मध्य चीन में प्रवेश कर उस पर अपना अधिकार जमाया; पर दोनों ने ही उसकी संस्कृति से लाभ उठाया। मंगोलों का उदय भी छि-तान् और नू-चन् की तरह ही हुआ। चंगेज खां के घोड़सवारों के दल ने जितने बड़े भूभाग पर दखल जमाया वह चुङ् हा राष्ट्र की अस्तित्व-रक्षा की आवश्यकता से कहीं अधिक था। इसलिये कुबलइ खां के सम्राट् होने के बाद चीन की मूल सीमा के बाहर के भूभाग चीन राज से टूट कर अलग हो गए। इसके फलस्वरूप केवल कुबलइ खां के वंशज और उनके अनुयायी ही चुङ् हा राष्ट्र द्वारा अपने में मिला लिए गए। मांचुओं ने भी चीन पर अपना अधिकार जमाया और वे भी चिन् राजवंश की तरह चुङ् हा राष्ट्र द्वारा अपने में घुला-मिला लिए गए। सन् १९११ ई० की क्रांति के बाद से मांचू और हान् आपस में इस प्रकार मिल गए कि यह एकदम पता नहीं चलता कि वे दो कुल के थे।

उपरोक्त बातों से यह पता चलता है कि चुङ् हा लोगों की सुदृढ़ राष्ट्रीय भावना, दुर्दमनीय एवं अटूट राष्ट्रीय शक्ति तथा टिकाऊ एवं अभंगुर सर्वांगीण संस्कृति इन सबों ने उन्हें इस योग्य बनाया है कि न तो वे दूसरों द्वारा सताया जाना सहन करते हैं और न वे दूसरों को सताते ही हैं। चूंकि चीनी राष्ट्र दूसरों द्वारा सताया जाना सहन नहीं कर सकता इसलिये जब कभी कोई विदेशी राष्ट्र चीन में प्रवेश कर उस पर अपना अधिकार जमाता था तो चुङ् हा लोग संगठित होकर आक्रमणकारियों को भगाने तथा अपनी प्रादेशिक एकता की पुनः स्थापना के लिये शस्त्र लेकर उठ खड़े होते थे। चूंकि वह दूसरों को

१ देखिए परिशिष्ट 'क' में टिप्पणी न०१-२ २ देखिए परिशिष्ट 'क' में टिप्पणी न० १३

सताना नहीं चाहता था इसलिये वह अपने पड़ोसी कुलों को उनके पारस्परिक संघर्ष और उत्पीड़न के संकट से मुक्त किया करता था और अपनी अभंगुर तथा सर्वांगीण संस्कृति द्वारा उन कुलों को अपने में घुलामिला कर चुङ् ह्वा राष्ट्र का अविछिन्न अंग बना लिया करता था। संक्षेप में कहें, *तो चुङ् ह्वा राष्ट्र का बरताव बाहरी लोगों के साथ यह था कि वह दूसरों के सैनिक आक्रमण का विरोध करता था पर अपनी सैन्य शक्ति का कभी दुरुपयोग नहीं करता था। वह उनकी संस्कृति को आत्मसात कर लेता था और बदले में अपनी संस्कृति की अच्छाइयों से उन्हें लाभ उठाने देता था।* यही हमारे राष्ट्र की वृद्धि और विकास की सबसे प्रमुख विशेषताएँ हैं।

स्वभावतः चीन की अपनी सीमा उतनी ही रही है जितनी कि चीनी राष्ट्र के अस्तित्व के लिये तथा उसकी सांस्कृतिक एकता के लिये आवश्यक थी। सौ वर्ष पहले तक चीन के एक करोड़ वर्ग किलोमिटर से भी अधिक क्षेत्रफल के बीच कोई भी ऐसा भाग नहीं था जो राष्ट्र के अस्तित्व के लिये आवश्यक न रहा हो और न ऐसा ही कोई भाग था जो उसकी संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित न हुआ हो। चीन की प्रादेशिक एकता को छिन्न-भिन्न करने का अर्थ न केवल उसके अस्तित्व को मिटाना है बल्कि उसकी संस्कृति का भी सत्यानाश करना है। जब ऐसी बात होने लगे तो संपूर्ण देश के लोगों को इसे अपना राष्ट्रीय अपमान समझना चाहिए और जब तक चीन की प्रादेशिक एकता पूर्ण रूप से पुनः स्थापित न कर ली जाय तब तक इस अपमान को धोने तथा देश को बचाने के लिये हम लोगों को युद्ध जारी रखना चाहिए।

चीन की सीमा के भीतर रहने वाले विभिन्न कुलों के रीति-रवाज और विभिन्न प्रदेशों का रहन-सहन भिन्न-भिन्न है। इन विभिन्न रीति-रिवाजों के मेल से ही चीन की राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण हुआ है और इन विभिन्न प्रदेशों के भिन्न भिन्न रहन-सहन का योग ही चीन का राष्ट्रीय जीवन है। यह स्पष्ट ऐतिहासिक तथ्य केवल राजनीतिक आवश्यकता का ही परिणाम नहीं है बल्कि चीन की प्राकृतिक स्थिति, आर्थिक संगठन, राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकता और विभिन्न कुलों के समान भाग्य से भी उत्पन्न हुआ है।

चीन की प्राकृतिक (भौमिक) स्थिति पर अगर दृष्टि डाली जाय तो चीन की पर्वत शृंखलाओं और नदियों ने स्वयं एक पूर्ण व्यवस्थित एकता स्थापित की है। पश्चिम से पूर्व की ओर एक सरसरी निगाह डालें तो एशिया की छत पामीर से प्रारम्भ होकर उत्तर में थिएन् शान् (देवगिरी) और आलतई पर्वत शृंखलायें फैलती हुई पूर्व की ओर मंचूरिया तक चली गई हैं। मध्यभाग में पामीर से प्रारम्भ होकर खुन्-लुन् पर्वत शृंखला दक्षिण-पूर्व चीन के समतल मैदान तक फैली हुई है और दक्षिण में पामीर से ही चलकर हिमालय (शि-मा-ला-या चीनी भाषा में हिमालय का नाम) पर्वत मालायें मध्य-दक्षिण प्रायद्वीप[1] (चुङ् नान् पान् ताव्) में समाप्त होती हैं। इन पर्वत शृंखलाओं के ही बीच हइ लुङ् चिआङ् (चिआङ्=नदी) ह्वाङ् हो (हो=नदी), हुई हो, छ्याङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) और चु चिआङ् (पर्ल नदी) के कांठे और दून हैं। इन कांठों और दूनों में ही चुङ् ह्वा राष्ट्र की वृद्धि और विकास हुआ है। इनके भीतर का कोई भी भूभाग एक दूसरे से न तो काटकर अलग किया जा सकता है और न कोई स्वतंत्र इकाई के रूप में अपना अस्तित्व ही रख सकता है।

यदि चीन के आर्थिक संगठन पर दृष्टि डालें तो ऊपर वर्णित सुव्यवस्थित सीमा के भीतर के भिन्न भिन्न भागों में विशेष प्रकार की चीजें मिलती हैं और खास खास ढंग की धरती हैं। इसलिये भिन्न भिन्न भागों का रहन-सहन भी अलग अलग ही है। जैसे, कहीं के लोग शिकार पर जिंदगी व्यतीत करते हैं तो कहीं के लोग चरागाह वाली अवस्था में हैं; कहीं के लोग उन्नति कर कृषि और उद्योग-धंधों में लगे हैं तो कहीं वे खान खोदने और धातु बनाने के कार्य में पड़े हैं और कहीं तो वे मछली पकड़ने या नमक तैयार करने में लगे हैं। विभिन्न भागों में रहने वालों के कामों का बटवारा वहाँ के प्राकृतिक साधनों के आधार पर हुआ है और वहाँ का वाणिज्य-व्यापार जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से होता है। इसलिये रेल और जहाज आविष्कार तथा उनके आम व्यवहार के बहुत पहले

१. इन्डोचाइना तथा उसके आस पास के भूभाग का सम्मिलित नाम चीनी में "चुङ्नान् पान् तान्" है? जिसका अर्थ है 'मध्य दक्षिण प्रायद्वीप।'

से ही उन भागों के बीच आपस में काफी परिमाण में निरन्तर वाणिज्य-व्यापार चलता आया है। इस प्रकार का समान आर्थिक जीवन ही चीन वालों के राजनीतिक ऐक्य तथा राष्ट्रीय एकीकरण का आधारभूत तत्त्व है।

चीन की राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकताओं की दृष्टि से ऊपर वर्णित पर्वत शृंखलाओं और नदियों से बनी सुव्यवस्थित सीमा के भीतर का अगर कोई भूभाग विदेशियों द्वारा अधिकृत कर लिया जाता है और इस प्रकार अगर उसकी प्रादेशिक एकता छिन्न-भिन्न होती है तो संपूर्ण राष्ट्र और पूरा राज अपनी आत्मरक्षा का प्राकृतिक साधन खो देते हैं। हाङ् हो, हाइ हो, छाङ् चिआङ् और हान् सुइ (सुइ = नदी) के कांठों और दूनों में कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जो सुदृढ़ सरहदी सुरक्षा के उपयुक्त हो। इसलिये यह स्पष्ट है कि लिउ चिउ द्वीप समूह, थाइ वान् (फारमूसा) फङ् हु (पेसकाडोर द्वीप समूह), उत्तर-पूर्व प्रदेश (मंचूरिया), नेइ वाइ मङ् कु (भीतरी और बाहरी मंगोलिया), शिन् चिआङ् (चीनी तुर्किस्तान) और सि चाङ् (तिब्बत) सब के सब हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के नाके हैं। इनमें से किसी एक को भी चीन से काट कर अलग कर देने का अर्थ चीन की राष्ट्रीय सुरक्षा को नष्ट करना है। प्राकृतिक सम्पत्ति पर दृष्टि डालें तो उत्तर-पूर्व के कोयला, लोहा और अनाज, उत्तर-पश्चिम के घोड़े और ऊन, दक्षिण-पूर्व के टंगस्टन और शीशा तथा दक्षिण-पश्चिम के तांवा और टीन हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के अत्यन्त आवश्यक पदार्थ हैं। इन प्राकृतिक साधनों का खोना अपने राष्ट्र की जड़ ही खोदना है।

विभिन्न कुलों ने जिस समान भाग्य का निर्माण अपने समूचे इतिहास में किया है उसका श्रेय चीन के उन आंतरिक सद्गुणों को है जिन्होंने इन कुलों की भावनाओं को एक भक्ति-सूत्र में बांधा है तथा उनकी मूल भावनाओं और प्रवृत्तियों को नये साँचे में ढाला है। चीन के पड़ोसी उसे जो 'खिराज' भेजते थे चीन उनके बदले बराबर मूल्यवान उपहार भेजता था। चीन ने कभी भी इन पड़ोसी कुलों के शोषण की इच्छा नहीं रखी। पड़ोसी कुलों के बीच अगर कभी सशस्त्र कलह होता था तो चीन इस महान् सिद्धान्त का पालन करता था कि "उन्हें पुनः स्थापित करो जिनकी वंश परम्परा छिन्न

हो गई है और उन राजों को पुनर्जीवित करो जो कुचल दिए गए हैं।"
दूसरों पर आए संकट का लाभ उठा कर उनके भूभाग को हड़प लेने वाली
नीति का अनुसरण चीन ने कभी नहीं किया। इस नीति के कारण ही
पड़ोसी कुलों में से जो कोई भी मध्य चीन में प्रवेश कर उस पर अपना
आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुआ वह धीरे-धीरे चीनी राष्ट्र द्वारा
अपने में घुला मिला लिया गया। और जो कुल चीन के साथ शांतिपूर्वक
रहे वे अपनी जीविका की आवश्यकता तथा अपनी सांस्कृतिक अवस्था के
अनुसार चीन के करद राज, संरक्षित या स्वायत्त-शासन के रूप में रहे।
हरेक संरक्षित कुल को चीन के प्रति राजभक्त होने में तथा चीनियों द्वारा
अपने में मिला लेने में बहुत अधिक समय लग गया। उदाहरण के लिये
मंगोलों को लीजिए :—मंगोलों की चीन के प्रति राजभक्ति का
तथा चीन द्वारा मंगोलों को अपने में घुलामिला लेने का सूत्र चउ
राजवंश (ई० पू० ११२२—२४५) के शिएन् यून्[1] कबीले तथा छिन्
और हान् राजवंशों के समय के श्युङ् नु (हूण) कबीले से जोड़ा जा
सकता है। थाङ् राजवंश के आरम्भ काल में थू चूए (तुर्क) ने, थाङ्
राजवंश के अंतिमकाल तथा लिआङ् सुङ् (दोनों सुङ्) राजवंश
के समय छि तान् (कितान या खितान) ने और मिङ् (सन् १३६८—
१६४४ ई०) तथा छिङ् (माँचू—१६४४—१९११ ई०) राजवंशों
के समय मंगोलों ने उपरोक्त रास्ते का ही अनुसरण किया। शिन्
चिआङ् (चीनी तुर्किस्तान) की बात लें तो "बसन्त-पतझड़ युग"[2]
(ई० पू० ७२२—४८१) में छिन् राज ने उसमें बसने वाले पश्चिमी
बर्बरों (सि-रुङ्) पर अपना अधिकार जमाया था। उसके बाद हान्
राजवंश ने 'पश्चिम प्रदेश' (मध्य एशिया) के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क
स्थापित किया। थाङ् राजवंश ने थिएन् शान् शृंखला क्षेत्र में शांति

(१) चीन के उत्तर में बसने वाला एक जंगली कबीला। यह श्युङ् नू (हूण) का पूर्व नाम था। इसने चउ राजवंश के सम्राट् शुआन् वाङ् (वाङ्=सम्राट्) को बहुत हैरान किया था। यह घटना लगभग ई० पू० ८२७ की है।

(२) चउ राजवंश (ई० पू० ११२२—२४७) के ई० पू० ७२२—४८१ तक का काल "बसन्त पतझड़ युग" कहलाता है। कनफ्युसियस ने "बसन्त और पतझड़ विवरण" नाम से इस युग के इतिहास का एक ग्रंथ लिखा है यह युग "बसन्त पतझड़ युग" इसलिये कहलाता है कि इस काल में कितने सामंती रियासत बने और फिर बिगड़े।

स्थापित कर उस पर अपना आधिपत्य जमाया और अंत में यूआन् (सन् १२८०—१३६८ ई०) तथा छिङ् राजवंशों के समय तो पूरा शिन् चिआङ् (चीनी तुर्किस्तान) ही चीन का एक प्रान्त बन गया। इन दो प्रदेशों (मंगोलिया तथा चीनी तुर्किस्तान) को चीन का राजभक्त होने में दो हजार वर्षों से अधिक समय लग गया। तिब्बत (सि-चाङ्) तो सुइ और थाङ् राजवंशों के समय से चीन का राजभक्त होने लगा था जब कि थु फान्[1] (तिब्बती) बौद्ध धर्म (फ़ु चिआव्) में दीक्षित हुए थे। यूआन् राजवंश के समय तिब्बत चीन सम्राट् की सरकार के शुआन् चङ्-युआन् (एक सरकारी विभाग जिसके अधीन तिब्बत तथा बौद्ध धर्म संबंधी काम थे) के अधीन था। छिङ् राजवंश के समय वह लि फान्-युआन् (एक सरकारी विभाग जिसके अधीन तिब्बत और मंगोलिया के काम थे) के अधीन रहा। उस घटना को तेरह सौ वर्ष हो रहे हैं जब प्रथम बार तिब्बत ने चीन के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित की थी। उत्तर-पूर्व प्रदेश (मंचूरिया) तो अन्य सीमा प्रदेशों की अपेक्षा बहुत पहले ही चीन का राजभक्त हुआ। वहाँ का सु-शन्[2] कबीला तो चउ राजवंश के समय ही चीन का राजभक्त बना। उभय हान् राजवंशों के समय हान् लोगों ने (चीनी लोगों ने) उत्तर-पूर्व प्रदेश को अच्छी तरह विकसित किया। सुइ, थाङ्, सुङ्, यूआन् और मिङ् राजवंशों के समय तो हान् लोग और तुङ् हु[3] कबीले के लोग वहाँ साथ साथ रहते थे। छिङ् राजवंश के समय तो उत्तर-पूर्व प्रदेश (मंचूरिया) की कृषि, उद्योग-धंधे और वाणिज्य का विकास पूर्ण रूप से हान् लोगों द्वारा किया गया था और इसी काल में चुङ् हा राष्ट्र ने मांचू लोगों को अपने में घुला मिला लिया। थाइ वान् (फारमूसा) और फङ् हु (पेसकाडोर) द्वीप समूह पर सर्व प्रथम हान् लोग ही पहुँचे थे और उन्हें आबाद किया था। ये द्वीप समूह

(१) थु फान् या तु फान् आधुनिक तिब्बती लोगों के पूर्वज थे जो थाङ् राजवंश (सन् ६१८—९०६) के समय तिब्बत, चीनी तुर्किस्तान, और कान्-सु प्रान्त के कुछ हिस्सों में रहते थे।

(२) यह कबीला मंचूरिया के चि लिन् (किरिन) प्रान्त और उसके पूर्व रहता था। वह भूभाग भी सु-शन् ही कहलाता था। कहा जाता है कि सू-चन् कबीले का ही पूर्व नाम सु-शन् था।

(३) तुङ् हु = पूर्वी हु। ये कोरिया निवासियों और मांचू लोगों के पूर्वज थे।

चीन के दक्षिण-पूर्व में इस प्रकार स्थित हैं कि बहुत समय से ये विदेशी आक्रमण से चीन की रक्षा के लिये बड़े उपयुक्त नाके हैं। मिङ् राजवंश के अंतिम दिनों में उन पर डच लोगों ने अधिकार कर लिया था, लेकिन थोड़े ही दिनों के अंदर चङ् छङ्-कुङ् ने पुनः लौटा लिया। चङ् छङ्-कुङ् के वीरतापूर्ण कार्य बहुत ही प्रशंसनीय हैं। मध्य दक्षिण प्रायद्वीप (चुङ् नान् पान् ताव्) में रहने वाले कुलों के साथ तो चीन का संबंध और भी घनिष्ट रहा है। चीनी इतिहास में ऐसी "अनगिनत घटनाओं" की चर्चा है जब चीन ने "उन्हें पुनः स्थापित करो जिनकी वंश परम्परा छिन्न हो गई है और उन राजों को पुनर्जीवित करो जो कुचल दिए गए हैं" की नीति का अनुसरण कर न्यायसंगत सैनिक अभियान किया है जिसका एकमात्र उद्देश्य "दुर्बलों की सहायता करना तथा पददलितों को उठाना" होता था। संक्षेप में कहें तो पांच हजार वर्षों के चीन का इतिहास चुङ् ह्वा राष्ट्र के विभिन्न कुलों के समान भाग्य का वृत्त है। इस वृत्त से पता चलता है कि किस प्रकार विभिन्न कुलों के मिश्रण से चुङ् ह्वा राष्ट्र बना है और किस प्रकार सम्मिलित विरोध द्वारा उन्होंने चीन के राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा की और चुङ् ह्वा राज की स्थापना की। इस दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया में विभिन्न कुलों ने अपने सांस्कृतिक मिश्रण के विभिन्न युगों की अपनी वंशावली की जाँच कर पता लगाया कि उन सबों की उत्पत्ति एक से ही हुई है। उदाहरण के लिये मंगोल कुल को लीजिए :—साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि मंगोल श्युङ् नु (हूण) के वंशज हैं। *श चि* (ऐतिहासिक वृत्त) तथा *हान् शु* (हान् राजवंश का वृत्त, शु = ग्रन्थ) के अनुसार मंगोलों के पूर्वज शिआ हउ[1] घराने के थे। सर्व साधारण में यह मत प्रचलित है कि उत्तर पूर्व (मंचूरिया) का नू चन् कुल और तिब्बत का थु-फान् कुल शिएन् पि कबीले के वंशज हैं। *चिन् शु* (चिन् राजवंश का वृत्त) और *वइ शु* (वइ राजवंश का वृत्त) में उनके पूर्व पुरखों की चर्चा है जिससे पता चलता है कि वे ह्वाङ् ति की संतान हैं। इनके अलावा *चउ शु* (चउ राजवंश का वृत्त) *लिआव् श* (लिआव् राजवंश का इतिहास) और वन् शिएन् थुङ् खाव् (संस्थाओं का कोष) की बारीक छानबीन करने से भी यहां

---

(१) शिआ हउ घराना चीन के शिआ राजवंश (ई० पू० २२०५-१७६६) का राजघराना था।

पता लगता है कि वर्तमान काल के मांचू और तिब्बती लोग हाङ् ति की ही संतान हैं। चीन में पाये जाने वाले आज के तथाकथित मुसलमानों में अधिकांश तो वास्तव में हान् जाति के ही हैं जिन्होंने 'इस्लाम' धर्म स्वीकार कर लिया है। इसलिये हान् लोगों और मुसलमानों के बीच केवल धार्मिक विश्वास और रीति रिवाज का ही अंतर है। एक शब्द में कहें तो चीन के विभिन्न कुल वास्तव में एक राष्ट्र ही नहीं हैं बल्कि एक ही जाति के भी हैं। इसलिये संपूर्ण चुङ् ह्वा राष्ट्र इतना ठोस है और इसीलिये या तो संपूर्ण राष्ट्र का ही गौरवमय उत्थान होगा या सम्पूर्ण राष्ट्र का ही जघन्य पतन होगा। चीन में जिन पांच जातियों (हान्, मांचू, मंगोल, तिब्बती और मुसलमान) के नाम लिए जाते हैं वे नृतत्त्व और रक्त की विभिन्नता की दृष्टि से पाँच जातियाँ कतई नहीं हैं बल्कि धार्मिक विश्वास और भौगोलिक वातावरण की भिन्नता के कारण हैं। संक्षेप में कहें, तो चीन के पाँच कुलों के बीच प्रादेशिक और धार्मिक दृष्टि से अंतर है जाति और रक्त-भेद के कारण नहीं। इसे तो चीनी प्रजासत्तात्मक राज के सब लोगों को ठीक ठीक समझ लेना चाहिए।

चीन का यह दीर्घकालीन इतिहास उसके आंतरिक सद्गुणों पर आधारित है और यह उसकी महान् संस्कृति का सच्चा प्रमाण भी है। हम सभी जानते हैं कि राजभक्ति (चुङ्), मातृ-पितृ भक्ति (श्याव्), दया (जन्), प्रेम (आइ), विश्वास पात्रता (शिन्), न्याय (यि), ऐक्य (हो) और शांति (फिङ्) ये आठ चीन की नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त हैं और औचित्य (ली), न्यायनिष्ठता (यि), चारित्र्य (लिएन्) तथा प्रतिष्टा की भावना (छ) के सिद्धान्तों पर चीनी राज प्रतिष्ठित है। इन्हीं आठ सद्गुणों और चार सिद्धान्तों के कारण चुङ् ह्वा राष्ट्र अपनी प्रतिज्ञाओं और कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहा है और दूसरों के साथ उसका व्यवहार यह होता है कि वह उनके बीच पड़कर कलह नहीं होने देता। न्याय के लिये वह दया और बहादुरी से कार्य करता है और जहाँ लाभ की बात रहती है वहाँ चीन एकदम निःस्वार्थ भाव से भाग लेता है। उसे न बलवान और आतंककारियों का भय है और न वह दुर्बल तथा छोटों को सताता ही है। पांच हजार वर्षों की शांति और अराजकता तथा उत्थान और पतन के अनुभव से चीनी लोगों में निर्लोलुपता, प्रतिष्ठा की भावना, मान-अपमान के प्रति सहिष्णुता और जिम्मेवारी उठाने की क्षमता आई

है। चूँकि उसमें निर्लोलुपता का भाव है इसलिये वह अपने उचित भाग से अधिक की इच्छा नहीं रखता। चूँकि उसमें प्रतिष्ठा की भावना है इसलिये वह अपने को शक्तिशाली बना सका है। चूँकि वह अपने उचित भाग से अधिक की इच्छा नहीं रखता है इसलिये न वह दूसरों का अपमान करता है और न उन्हें सताता ही है। चूँकि वह स्वयं अपने को शक्तिशाली बना सका है इसलिये वह यह सहन नहीं कर सकता कि दूसरे उसे सताएँ। चूँकि चीन के लोग विनीत हैं इसलिये उनकी राष्ट्रीय शक्ति प्रच्छन्न है (उसका बाहर प्रदर्शन नहीं हुआ है) और चूँकि उनमें जिम्मेवारी निभाने की क्षमता है इसलिये उसका राष्ट्रीय संकल्प स्थायी होता है, क्षणिक नहीं। इन राष्ट्रीय सद्गुणों के कारण ही चुङ्हा लोग व्यक्ति का समष्टि के लिये और स्वार्थ का परमार्थ के लिये बलिदान कर सकते हैं। इसलिये विदेशी आक्रमण से आत्मरक्षा के लिये वे अपने संकल्प में दृढ़ रहते हैं और दूसरों के साथ उनका व्यवहार शांतिपूर्ण होता है। इतना ही नहीं, वे तो वास्तव में एक कदम और आगे बढ़े हुए हैं क्योंकि "उन्हें पुनः स्थापित करो जिनकी वंश परम्परा छिन्न हो गई है और उन राजों को पुनर्जीवित करो जो कुचल दिए गए हैं" तथा "दुर्बलों की सहायता करना तथा पददलितों को उठाना" वाली उदार नीति का अनुसरण करते हैं और इसी कारण वे इस सिद्धान्त पर चलते हैं :—"जिस स्थिति में तुम स्वयं रहना चाहते हो उसी स्थिति में दूसरों को भी रहने में मदद करो; जिस प्रकार तुम अपना विकास करना चाहते हो उसी प्रकार दूसरों को भी विकसित होने में मदद दो।" हमारी सहानुभूति और सहिष्णुता के ऐसे ही उदाहरण हैं। इसी का फल है कि गत पाँच हजार वर्षों से पूर्वी एशिया के कुछ लोगों ने तो चीन के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित की है, कुछ ने पारस्परिक रक्षा के लिये चीन के साथ सहयोग किया है और कुछ स्वतंत्र रहे हैं। पर उन सबों का चीन के साथ चाहे जिस किसी प्रकार का भी संबंध क्यों न रहा हो वे सबके सब अपनी भावना, परम्परा और रीति-रिवाज के अनुसार कार्य करने तथा अपनी संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ गुणों को विकसित करने में स्वतंत्र थे ताकि मानव-जाति की सम्मिलित प्रगति में वे भी सहायता कर सकें।

गत सौ वर्षों से चीन की स्थिति बहुत ही कमजोर पड़ गई है और लोगों का साहस धीरे धीरे क्षीण हो गया है। इससे एक असाधारण स्थिति

पैदा हो गई है जैसी चीन के पाँच हजार वर्षों के इतिहास में पहले कभी नहीं हुई। चीन को यह पीड़ा सहनी पड़ रही है कि उसके राष्ट्रीय अस्तित्व के लिये आवश्यक भूभागों में से कितने ही विदेशियों द्वारा छीन लिए गए हैं और उस पर असम संधियों का भार लाद दिया गया है जिससे वह दबा जा रहा है। इन सब कारणों से चीन की स्थिति ऐसी नाजुक हो गई है कि वह एक राष्ट्र और राज की हैसियत से जिन्दा ही नहीं रह सकता। पाँच हजार वर्षों के लंबे इतिहास में चीन राज को उत्थान और पतन तथा चीनी राष्ट्र को जीवन-मरण के रास्तों से निरन्तर गुजरना पड़ा है। गत सौ वर्षों से चीनी राज और राष्ट्र में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं और एक अभूतपूर्व संकट आ उपस्थित हुआ है, जिससे हमारे अस्तित्व की नींव ही ढह जाने को है और राष्ट्रीय पुनरुद्धार की सम्भावना ही रुक जाने वाली है। सचमुच में ऐसा उदाहरण हमारे भूतकाल के इतिहास में एक भी नहीं मिलता। अगर हमारे राष्ट्रपिता डा० सुन यात् सन् ने सान् मिन् चु-इ (जनता के तीन सिद्धान्त) का प्रतिपादन तथा जन-क्रांति का संचालन नहीं किया होता तो पाँच हजार वर्षों के चीन का राष्ट्रीय जीवन जापान की धीरे धीरे होने वाली सर्वग्राही विजय-नीति के नीचे चाव् शिएन् (कोरिया) की तरह ही समाप्त हो जाता। भाग्यवश हमारे दूरदर्शी राष्ट्रपिता ने मानवता और बुद्धि से ओतप्रोत अपने साहस का परिचय देकर अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता और समानता प्राप्ति के युद्ध के लिये लोगों का आह्वान किया। चालीस वर्षों तक क्रांतिकारी कार्य करते रहने के बाद लोगों को अपने मनोवांछित सही पथ पर चलाने में उन्हें सफलता मिली और अन्त में अपनी मृत्यु-शैय्या पर उन्होंने वसीयत की कि *चीनी जन क्रांति का प्रथम लक्ष्य असम संधियों को रद्द करना है*। उन्होंने अपने दल (क्वोमिनताङ्) के सहयोगियों तथा संपूर्ण देश की जनता को तब तक संघर्ष जारी रखने का आदेश दिया जब तक कि उनका अधूरा कार्य पूरा नहीं हो जाता। तदनुसार हम लोगों ने संघर्ष जारी रखा और उसी का यह फल है कि आज हम अपने प्रथम लक्ष्य को पूरा करने में सफलीभूत हुए हैं[1] तथा

(१) ११ जनवरी, सन् १९४३ ई० को वाशिंगटन में चीन और अमेरिका के बीच तथा उसी दिन चुंकिंग में चीन और ग्रेटब्रिटेन के बीच नई संधि हुई जिसके अनुसार पुरानी असम संधियाँ रद्द हुईं। इस प्रकार चीनी जन क्रांति का प्रथम लक्ष्य पूरा हुआ।

हमारे सम्मुख राष्ट्रीय नवीकरण का गौरवमय भविष्य है। चुङ् हुा प्रजा सत्तात्मक राजपुनः स्वतंत्र और मुक्त हो रहा है। इस अवसर पर मैं भूतकाल की घटनाओं को याद कर तथा इस नवयुग के प्रारम्भ में ही वर्तमान हालत पर विचार कर कह रहा हूँ कि गत सौ वर्षों में हमारे देश और हमारी जनता को क्या क्या अनुभव हुआ है और हमें भविष्य में किस दिशा में अपने कार्यों को केन्द्रित करना है। *मैं आशा करता हूँ कि संपूर्ण देश की जनता इसे समझेगी कि चीन का भाग्य उन्हीं पर निर्भर करता है और उसका निर्णय इसी युद्धकाल में (सन् १९३७-४५ का चीन जापान युद्ध) होने जा रहा है। आज हिचकिचाने तथा विलंब करने का कतई अवसर नहीं है और न अंधानुकरण कर दूसरों पर निर्भर रहने का समय ही है।* मैं पूर्ण आशा करता हूँ कि हमारे सभी देश-भाई इस स्थिति पर विचार करेंगे और उनके सामने जो महान् कार्य आ पड़ा है उसे पूरा करने के लिये संगठित होंगे।

दूसरा अध्याय

हमारे राष्ट्रीय अपमान के कारण और राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात

१

छिङ् (मांचू) राजवंश के समय कला, विज्ञान, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का अधःपतन और मांचू राजवंश की गृह नीति की मुख्य मुख्य भूलें।

गत सौ वर्षों से चीन की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कमजोर पड़ गई है और जनता का साहस क्षीण हो गया है। इसका एक मात्र कारण असम संधियाँ हैं। ये असम संधियाँ कैसे हुईं इसकी कहानी प्रारम्भ से अंत तक हमारे राष्ट्रीय अपमान का इतिहास है और इस राष्ट्रीय अपमान का कारण है मांचू राजत्वकाल की राजनीतिक गंदगी और विशेष कर उस काल में हुआ कला, विज्ञान और सामाजिक जीवन का अधःपतन।

मांचू जाति के लोग संख्या में कम थे। फिर भी उन्होंने ठेठ चीन पर कैसे अधिकार जमा लिया? मिङ् राजवंश (सन् १३६८-१६४४ ई०) के अंतिम दिनों में देश में राजनीतिक गंदगी, विचारों की असंबद्धता, दलवंदी और विस्तृत पैमाने पर डाकेजनी फैली हुई थी। दरबारी हिजड़ों के हाथों में राजशक्ति चली गई थी और सैनिक अधिकारी अपने मन की करने लगे थे। ऐसी हालत में देश में अराजकता फैल गई और बाहरी आक्रमण के लिये दरवाजा खुल गया। लि च-चङ् और चाङ् शिएन्-चुङ् नामक डकैतों के दल देश में उठ खड़े हुए और बाहर से मांचू सेना का आक्रमण हुआ। जिनके फलस्वरूप तीन सौ वर्षों का मिङ् राजवंश समाप्त हो गया। मांचू लोगों के चीन में प्रवेश कर जाने से चीनी राष्ट्रीयता को बड़ा धक्का लगा। हमारे राष्ट्रपिता ने कहा है—"जब शुन् च (सन् १६४४-१६६१ ई०) ने मिङ् राजवंश को समाप्त कर अपने को चीन का सम्राट् घोषित किया तो मिङ् राजवंश के समय के राजभक्त मंत्री और विद्वान् लोग हर जगह उसके विरोध में उठ खड़े हुए। यहाँ तक कि खाङ् शि (सन् १६६१-१७२३ ई०) के राजत्व

के प्रारम्भिक वर्षों में विरोध जारी था और मांचुओं द्वारा पूर्ण रूप से चीन अधिकृत नहीं किया गया था।" उन्होंने यह भी कहा है—"खाङ् शि और युङ् चङ् (सन् १७२३-१७३५ ई०) के राजत्वकाल में मांचू राजवंश विरोधी आन्दोलन बहुत जोरों का था और सरकार ने इसके विरुद्ध बड़ी बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन कराया था, जैसे "*ता यी चिओ मि लु*" (सम्राट् के प्रति राजभक्त बने रहने और जनता को अपनी भूलों का अनुभव कराने पर लिखा गया निबंध)। इन पुस्तकों में मांचू सरकार का विरोध नहीं करने की सिफारिश इस आधार पर की गई थी कि 'शुन् पूर्वी बर्बर थे तथा वन् वाङ् पश्चिमी बर्बर; इसलिये यद्यपि मांचू भी बर्बर हैं तो वे भी चीन के सम्राट् हो सकते हैं।' इससे कम से कम खाङ् शि और युङ् चङ् की ईमानदारी का तो पता चलता है कि वे लोग अपने को मांचू नस्ल का स्वीकार करते थे। पर छिएन् लुङ् के राजत्वकाल (सन् १७३५-१७६५ ई०) में मान् (मांचू) और हान् (चीनी) शब्दों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इतिहास में संशोधन किया गया तथा उससे सुङ् और मंगोल (यूआन्) तथा मिङ् और छिङ् (मांचू) राजवंशों से संबंध रखने वाली बातें निकाल दी गईं, और मांचू, श्युङ्नु तथा तातार से संबंधित सभी इतिहास बुरे बताये गए, वे नष्ट कर दिए गये और उनका रखना या पढ़ना रोक दिया गया।" पर जनता को दबाने के लिये मांचू सम्राट के ये निर्दयता के कारनामे तुलना में जापान द्वारा कोरिया में बरती गई नृशंस नीति से सचमुच ही बहुत नरम जान पड़ते हैं। कोरिया (चाव् शिएन्) को जापान के अधीन हुए अभी तीस वर्षों से कुछ ही अधिक दिन बीते हैं। पर इतने दिनों में ही अपने जापानी मालिक की गुलाम बनाने वाली शिक्षा-नीति के कारण कोरिया वाले अपने देश में ही अपने को एकदम भूल चुके हैं। कोरिया का अपना इतिहास और अपनी संस्कृति बिलकुल मिट चुकी है और वहां के लोगों में राष्ट्रीय भावना लेश मात्र भी नहीं बच पाई है। सचमुच में ऐसे इने गिने ही कोरियावासी हैं जो आज "काव् लि"[१] शब्द का यथार्थ अर्थ समझते हैं। हमें अपनी आँखों से यह देख भौंचक रह जाना पड़ता है कि किस प्रकार वर्तमान साम्राज्यवादी देश तेजी से अपने अधीनस्थ देशों तथा वहाँ के लोगों

(१) कोरिया शब्द "काव् लि" से निकला है। काव्—श्रेष्ठ और लि—सुन्दर—इस प्रकार 'काव् लि' का अर्थ है "श्रेष्ठ और सुन्दर देश"।

के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते हैं।

मांचू सम्राटों के दमनकारी और गुलाम बनाने की दुधारी नीति के नीचे चीन की परम्परागत महान् विद्या का बड़ा ही ह्रास हुआ। मिङ् राजवंश की स्थापना होने के बाद के वर्षों में चु शि सम्प्रदाय (चु श्युए) के दर्शन के प्रचार पर अधिक ध्यान दिया गया था। लेकिन मिङ् राजकाल के मध्य में चीन के विद्या के क्षेत्र में कुछ अनुचित प्रवृत्तियाँ प्रकट हुईं। वे विद्वान् जिन्होंने राजकीय प्रतियोगिता परीक्षा में बैठकर सरकारी उपाधि पाने की इच्छा की, छिट फुट अनुच्छेदों तथा वाक्यों पर टीका टिप्पणी करने और "संदर्भाष्टक" (पा कु)[1] निबन्ध लिखने में व्यस्त रहे तथा जो तत्वमीमांसा के अध्ययन में लगे रहे उन्होंने कुछ चुने हुये कथनों की व्याख्या करने या उन पर भाष्य लिखने में समय बिताया। इस प्रकार की अनुचित प्रवृत्तियों को रोकने के लिये वाङ् याङ् मिङ् ने स्पष्ट रूप से "ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य" (च शिङ् ह इ) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने "सच्चे ज्ञान की साधना" (च लिआङ् च) के सिद्धान्त का प्रतिपादन इसलिये किया कि उनके समय के विद्वान लोग जटिल साहित्यिक शैली और उलझे हुए विचारों से मुक्त हो सकें। पर वाङ् याङ् मिङ् सम्प्रदाय के विचार बहुत हद तक बेकार की बातचीत भर रह गए। जब चाङ् चिआङ् लिङ् के हाथों में शक्ति थी तो उन्होंने चु और वाङ् (चु शि और वाङ् याङ् मिङ्) दोनों के अनुयायियों की भूलों को सुधारने के लिये "व्यावहारिक ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग" (श श्युए श युङ्) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मिङ् राजवंश और चिङ् राजवंश के संक्रांति काल में वाङ् सम्प्रदाय के अनुयायियों की कट्टरता और तुङ् लिन् सम्प्रदाय वालों का झूठा अभिमान बना ही हुआ था। पर शू कुआङ्-चि, लि च चाव्, मइ वन् तिङ्, सुङ् यिङ् शिङ् आदि जैसे कुछ

(१) यह निबंध लिखने की एक विशिष्ट शैली थी जिसे राजकीय प्रतियोगिता परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सरकारी नौकरी चाहने वाले विद्वान् अधिकतर व्यवहार में लाते थे। इस शैली में सारा निबन्ध निम्न आठ भागों में बंटा रहता था—(१) भेद (२) स्थापना (३) उपक्रम (४) विषय प्रतिपादन (५) प्रपंच-विस्तार (६) अंगी विचारधारा (७) अंगभूत विचारा धारा (८) उपसंहार। पहले तो यह भी प्रतिबन्ध था कि सारा निबन्ध निश्चित शब्द-संख्या के भीतर ही पूरा हो, बाद में यह प्रतिबन्ध उठ गया। अब यह शैली व्यवहार में नहीं है।

विद्वान् मौजूद थे जिन्होंने अपना समय वैज्ञानिक अनुसंधान तथा ज्योतिष, गणित, कृषि और कला कौशल के अध्ययन में लगाया था। ये सबके सब व्यावहारिक ज्ञान और कौशल की प्राप्ति में लगे थे और बराबर प्रगति के इच्छुक थे। कनफ्युशस मतावलम्बी कु तिङ्-लिन्, ह्वाङ् लि-चोउ, वाङ् छुआन्-शान्, लि अर्-छू, यन् शि-चाय् और फु छिङ्-चु आदि बड़े बड़े विद्वानों ने इस पर जोर दिया कि सार्वजनिक कामों में तत्त्वमीमांसा और व्यावहारिक ज्ञान के बीच घनिष्ठ संबंध बना रहे और कर्म तथा चिंतन दोनों की एक सी प्रधानता हो। राष्ट्रीयता और जनता के अधिकार इन दोनों भावनाओं का लोगों के हृदय में जीवित रहना ही मांचू लोगों को खासकर खटका। मांचू शासकों के विरुद्ध लेखनी उठाने के कारण कितने ही विद्वानों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा और इस कारण व्यावहारिक ज्ञान की जिज्ञासा में तीव्रता से ह्रास होने लगा। छिएन् लुङ् (१७३५—१७९५) और चिआ छिङ् (१७९५—१८२० ई०) के राजत्वकाल में टीकाकारों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। विद्या के क्षेत्र में टीका को स्थान देने का श्रेय कु और ह्वाङ् (कु तिङ्-लिन् और ह्वाङ् लि-चउ) को है पर उन्होंने असल में इसे व्यावहारिक ज्ञान के एक अंग के रूप में अपनाया था। इसलिये टीका टिप्पणियों का उपयोग जब व्यावहारिक नहीं रहा तो उनका वास्तविक महत्व भी जाता रहा। छिएन् लुङ् और चिआ छिङ् काल के विद्वानों में इनको व्यावहारिक रूप देने की क्षमता नहीं रह गई और उनके ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा छिट फुट नामों, विषयों, शब्दों और वाक्यों के अध्ययन में सीमित रह गई। इस अनुचित प्रवृत्ति के कारण जीवन और राजनीति से ज्ञान बहिष्कृत हो गया। इस अस्वाभाविक साहित्यिक वातावरण में (जिसमें विद्वान असंबद्ध और साधारण चीजों से अपना संबंध बनाए हुए थे) विद्वानों ने मध्यम मार्ग (चुङ् युङ्) के अर्थ की भी गलत व्याख्या की। इन सबसे लोगों में अनिश्चित (मो लङ् लिआङ् ख) और कुटिल तर्क करने (स-श-अर्-फइ) की बुद्धि का विकास हुआ तथा जगत् का रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया जिसे छङ् ति-शङ् (=छङ् कुओ-फान्) के शब्दों में कहें तो उसमें "निश्चित रूप से न कुछ काला है और न सफेद; न दुःखदायी है न क्रोध उत्पन्न करने वाला।"

मांचू राजवंश का विशाल राज संगठन और श्रेष्ठ राजनीतिक संस्थान तथा कानून हान् और थाङ् राजवंशों के टक्कर के थे, सुङ् और मिङ् राज-

वंशों से बढ़कर और युआन् राजवंश से तो कहीं श्रेष्ठ थे। चीन में मांचू शासन के दो सौ साठ वर्षों के समय ही यूरोप और अमेरिका में मध्ययुग के अंधकारपूर्ण वातावरण के बाद आधुनिक राजों का गठन हुआ और उन राजों ने शक्तिशाली होने की चेष्टा की। अगर मांचू सम्राटों ने चीन में रहने वाले हान् (चीनी), मान् (मांचू), मङ् (मंगोल) हुइ (मुसलमान) और छाङ् (तिब्बती) इन पांच कुलों के बीच भेद भाव न रखा होता प्रत्युत यह समझ कर कि ये पाँचो कुल एक ही राष्ट्र के अविभाज्य अंग हैं तथा धर्म पेशा, सामाजिक स्थिति और लिंग विशेष पर ध्यान दिए बिना सबों के बीच समानता का बरताव रखा होता और साथ साथ अगर उन्होंने सीमान्त की जातियों को स्वायत्त शासन स्थापित करने की योग्यता प्राप्ति में मदद की होती तथा उन्हें समानता के व्यवहार का भरोसा दिया होता तो चीन भी अवश्य ही यूरोप और अमेरिका के राजों के समान ही शक्ति सम्पन्न और समृद्धिशाली हुआ होता और गत सौ वर्षों में उसके ऊपर असम संधियों का नियंत्रण रखकर उसका जो अपमान किया गया है यह न होने पाता तथा जापान को भी एशिया के लिये उपद्रवकारी होने का अवसर न मिला होता। पर मांचू शासक तो अपने समय के फैले हुए विचारों और विश्वासों में डूबे हुए थे; इसलिये उनसे प्रशस्त नीति के अनुसरण करने की आशा नहीं की जा सकती। अभाग्यवश, वे उपरोक्त तथ्य को तो नहीं ही भाँप सके उल्टे उन्होंने इन विभिन्न कुलों पर शासन करने के लिये भयंकर दमन और गुलाम बनाने की नीति अपनाई। जिसके फलस्वरूप दो सौ साठ वर्षों के बीच हमारी जनता के लिये एक दिन भी सौभाग्य का नहीं गुजरा। छिएन् लुङ् का शासन काल शांति और समृद्धि का माना जाता है पर उस काल के हू-शन् आदि शक्ति प्राप्त मांचू अफसर बड़े ही स्वार्थी और लोभी थे—तब से मांचू अफसर आमतौर पर खुल्लम खुल्ला रिश्वत लिया करते थे—उनकी लोलुपता कभी भी तृप्त होने वाली नहीं थी। जिन चीनी अधिकारियों और विद्वानों ने स्वयं अपनी इच्छा से मांचू शासकों की दासता स्वीकार कर ली थी वे कपोल कल्पित बातों में रमे रहने के इतने आदी हो गए थे कि उनमें वास्तविकता पर ध्यान देने की बिल्कुल प्रवृत्ति ही नहीं रह गई थी। वे सब के सब अपना उत्तरदायित्व छोड़ बैठे थे और उनहें बहाना यह था कि वर्त्तमान स्थिति में जो कुछ है उसमें कुछ भी दोष नहीं है। वे अपने पद को बचाए रखने के फेर में लगे रहते थे। सबसे नीच तो वे निकले जिन्होंने

लज्जा को ताक पर रख कर हान् चून् छि (=चीनी झंडे वाली सेना; मांचू सेना में एक विभाग का नाम 'हान् चून छि' था जिसमें हान् (चीनी) लोग भर्ती हुए थे।) में भर्ती होना मान की बात समझी और अपने इस पद का उपयोग शांति से रहने वाले नागरिकों के साथ बुरा बरताव करने तथा उन्हें सताने में किया। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि समाज में अराजकता बढ़ने लगी और धीरे-धीरे कला तथा विज्ञान का ह्रास होने लगा। मांचू शासकों ने चीन के विभिन्न कुलों के साथ जैसा व्यवहार किया उससे मन में घृणा ही उत्पन्न नहीं होती बल्कि भयंकर प्रतिशोध की भावना भी उठती है। विभिन्न कुलों के बीच घृणा का बीज बो देना ही उनका दूषित लक्ष्य था ताकि वे उत्तेजित होकर परस्पर विरोध और खून-खराबी करते रहें। फूट डाल कर शासन करने की इस नीति के कारण वे 'मछुआ' वाली कहावत[1] को चरितार्थ कर रहे थे और इस प्रकार मांचू राजवंश को सुदृढ़ तथा सुरक्षित बनाए हुए थे। मङ्कु (मंगोल) और सि छाङ् (तिब्बती) लोगों की सैनिक भावना को नष्ट करने के लिये उन्होंने ला मा चिआव् (लामा धर्म) का सहारा लिया ताकि ये दोनों कुल ही लुप्त हो जाएँ—ऐसा था उनका व्यवहार मंगोल और तिब्बती लोगों के प्रति। मांचू शासकों ने इस बात को प्रोत्साहन दिया कि हान् (चीनी) और हुइ (मुसलमान) के बीच आपस में घृणा पैदा हो जाय और वे संघर्ष करते रहें। सभी कुलों पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने के लिये वे उपरोक्त तरीकों के अलावे राजनीतिक और धार्मिक संस्थानों का भी सहारा लेते थे। उनका प्रधान तरीका था कि वे सबों पर शासन करने के लिये मांचू सैनिक नियुक्त करते थे। सब से आपत्तिजनक बात यह थी कि नागरिकों के बीच जो मांचू सैनिक रखे जाते थे उनमें और नागरिकों में स्पष्ट जातिगत भेद माना जाता था और दोनों के रहन सहन में भी बड़ा भेद रखा जाता था। मांचू शासकों का यह ख्याल था कि

(१) मछुआ वाली कहावत की कहानी यों है—एक बार एक सीपी धूप में मुंह खोले बैठी थी कि एक कौड़िल्ले ने उस पर अपनी चोंच चलाई। सीपी ने झट मुंह बंद कर लिया और इस प्रकार कौड़िल्ले की चोंच फँस गई। कौड़िल्ले ने कहा—'आज पानी नहीं पड़ेगा, कल भी नहीं पड़ेगा और फिर तुम अवश्य मर जाओगी।' सीपी ने उत्तर दिया—'आज तुम नहीं निकल सकोगे, कल भी नहीं निकल सकोगे और फिर तुम भी अवश्य मर जाओगे।' इतने में एक मछुआ आया और उसने दोनों को पकड़ लिया। इस प्रकार वे दोनों ही मछुये के शिकार हुए।

उनका यह तरीका सब से अच्छा है कि विभिन्न कुलों पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने के लिये मांचू सैनिक नियुक्त किए जाएँ। उन्होंने यह कतई नहीं सोचा कि किसानों और सैनिकों को सर्वथा दो विभिन्न वर्गों में विभक्त कर देने से मांचू सैनिक धीरे धीरे आलसी और निखट्टू हो जाएंगे। इस प्रकार यद्यपि शुरू से ही आम तौर पर सम्पूर्ण मांचू जनसंख्या को सैनिक की भांति रखा गया पर उपरोक्त दूषित नीति के कारण वह परपोजीवी तथा आलसी हो गई। थाइ फिङ् क्रान्ति (थाइ फिङ् थिएन् कुओ)* के समय यह पता चला कि मांचू सेना और "हरी बटेलियन"[1] (लू यिङ्) सब की सब दूषित और निकम्मी हो गई हैं। इसके बाद ही शिआङ् युङ् (हुनान् वीरों) और हुआइ युङ् (अन् हुइ वीरों) का प्रादुर्भाव हुआ जिनसे प्रान्तीय सेनाओं की नींव पड़ी।

ताव् कुआङ् (सन् १८२०-१८५० ई०) और थुङ् च (सन् १८६१-१८७५ ई०) सम्राटों के समय आते आते मांचू सरकार की उपरोक्त नीति के फलस्वरूप जो कि दूसरे कुलों और उसके निजी स्वार्थ के लिये भी खतरनाक थी, राजनीतिक संस्थान इतना विछिन्न हो गया तथा राष्ट्रीय सुरक्षा इस प्रकार उपेक्षित हो गई कि भयंकर विपत्ति का आना अनिवार्य सा हो गया। इसी काल में विदेशी शक्तियों के दबाव के कारण असम संधियाँ हुई जहां से चीन के राष्ट्रीय अपमान की लंबी कहानी प्रारम्भ होती है। इसी के कारण चीन कमजोर होता गया और अंत में मांचू सरकार का भी पतन हुआ। डा० सुन् यात्-सन् ने यह देखा कि मांचू सरकार की गृह-नीति के कारण चीनी राष्ट्र और राज दोनों नष्ट होते जा रहे हैं अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस दूषित शासन को समाप्त ही कर देना चाहिए। इसीलिये उन्होंने शिङ् चुङ् हुइ (चीन पुनरुत्थान समिति) और बाद में थुङ् मङ् हुइ (प्रतिज्ञाबद्ध भ्रातृ-संघ) नामक क्रान्तिकारी दलों की स्थापना की। सन् १९११ ई० की जनक्रान्ति पूर्ण रूप से सफल हो जाने के बाद तुरत ही डा० सुन् यात्-सन् ने "पांच कुलों का प्रजासत्तात्मक राज" (वु चु कुङ् ह) वाले सिद्धान्त को लागू किया ताकि विभिन्न कुलों के बीच का मतभेद मिट जाय और सबों का दर्जा समान हो। तब से राष्ट्रीय सरकार बराबर राष्ट्र पिता डा० सुन् यात्-सन् के आदेशानुसार और चुङ् क्वो क्वो मिन्-ताङ्

*देखिये परिशिष्ट 'क' टिप्पणी नं० १८.

(1) मांचू सेना में हान् (चीनी) नस्ल के सैनिकों का दस्ता अलग था। इस दस्ते के झंडे का रंग हरा था। अतः हरी बटैलियन कहलाता था।

(चीनी जनता की पार्टी) द्वारा समय समय पर प्रचारित घोषणापत्रों के अनुसार काम करती आ रही है। इसने माँचू शासन काल की हेय गृह नीति को एकदम त्याग दिया है और चीनी प्रजासत्तात्मक राज में रहने वाले विभिन्न कुलों को एकदम समान स्तर पर रखा है। इसके अलावा इस बात का क्रियात्मक प्रयत्न किया गया है कि सीमान्त के कुलों में स्वायत्त शासन की क्षमता हो, उनकी स्थिति ऊँची उठे और उनके धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन का संतुलित विकास हो। ये सभी कार्य इस दृष्टि से किए गए हैं कि उनकी एकता और राजभक्ति दृढ़ हो ताकि वे सब के सब अपने देश के प्रति वफादार हो सकें और केन्द्रीय सरकार को अपना पूर्ण सहयोग दे सकें। विभिन्न कुलों के अबाध सहयोग और सब की उन्नति करने के प्रयत्न से चुङ् हवा प्रजासत्तात्मक राज दिन प्रति दिन अधिक से अधिक समृद्धिशाली, दृढ़ और सुखी होगा और सम्पूर्ण संसार के सामने 'जनता के तीन सिद्धान्त' (सान् मिन् चु इ) की भव्यता प्रकट होगी। चुङ् क्वो क्वो मिन् ताङ् के नेतृत्व में हुई जनक्रान्ति की यही निरन्तर भावना रही है और इसी महान् उद्देश्य के लिये क्वोमिन्ताङ् की आंतरिक नीति निर्धारित होती है।

२

असम सन्धियों का होना और इससे जनता में हुई प्रतिक्रिया

पहली असम संधि नान् चिङ् (नानकिंग) की संधि थी जो अफीम युद्ध के फलस्वरूप ताव् कुआङ् के २२ वें वर्ष (सन् १८४२ ई०) में चीन और ग्रेट ब्रिटेन के बीच हुई। अफीम युद्ध में चीन की हार उसका "प्रथम राष्ट्रीय अपमान" था और नान् चिङ् संधि इसी प्रथम राष्ट्रीय अपमान का परिणाम था। तब से सन् १९११ ई० के हुई जन क्रांति तक का चीन का वैदेशिक संबंध तीन कालों में बांटा जा सकता है।

"पहला काल" अफीम युद्ध से सन् १८९४-९५ के चीन जापान युद्ध तक का समय है जिसकी प्रमुख घटना है थिएन चिङ् की सन्धि का होना। विभिन्न राजों ने चीन से उसके बन्दरगाहों में व्यापार आदि करने के अधिकार प्राप्त कर लिये जो "संधि से खोले गए बन्दरगाह" कहलाए और उन "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" को आधार बनाकर उन्होंने विभिन्न प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए। इस तरह पहले पहल

खोले गए बन्दरगाहों में क्वाङ् चउ (केन्टन) फु चउ, शिश्रा मन् (अमोय) निङ् पो और शाङ् हाइ (शंघाइ) थे जो साधारणतः "विदेशी व्यापार के लिये खोले गए पाँच बन्दरगाह" कहलाते थे। जिन जिन देशों के लिये बन्दरगाह खोले गए थे वहां वहां के नागरिक "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" में अपने देश के राजदूत के अधीन विशेष स्थिति में रहते थे और विशेष सुविधाओं का उपभोग करते थे। उन पर चीनी कानून नहीं लागू होता था। इसके अतिरिक्त उन्हें जितनी चुङ्गी लगनी चाहिए थी उससे कहीं कम वे, 'एकतरफा स्थापित व्यापार कर' के कारण देते थे। इस प्रकार वे अपने व्यापार संबंधी कामों में अनुचित लाभ उठाते थे। बाद में ग्रेट ब्रिटेन फ्रांस आदि देशों ने उन सब स्थानों में जहाँ जहाँ वे अपना व्यापारिक प्रभाव जमाना चाहते थे चीन से और भी बन्दरगाह खुलवा लिए और मांचू शासन काल के चीनी कूटनीतिज्ञ अफसरों के अज्ञान का लाभ उठा कर उन्होंने और भी विशेष अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। जब कोई देश चीन के साथ हुई संधि में अपने लिये कुछ और विशेष अधिकार प्राप्त कर लेता था तो दूसरे देश भी अपने को "चीन का परम हितू" (चुइ हुइ क्वो यिश्राव् ख्रुश्रान्) कहकर अपने लिये वही विशेष अधिकार प्राप्त कर लेते थे। और तो और कुछ मामलों में तो वे संधि की शर्तों की अपनी मनमानी व्याख्या कर संधि प्राप्त अपने विशेष अधिकारों की सीमा को और भी बढ़ा लेते थे जिसे चीन को मानना ही पड़ता था। इस प्रकार उन्होंने विशेष अधिकारों के मामले में अपनी स्थिति को अधिक से अधिक सुरक्षित किया। जैसे—किसी भी संधि में खुले तौर से 'रियायती क्षेत्र' संबंधी विशेष अधिकार की चर्चा नहीं है;वे तो बहिर्देशीय अधिकार(Consular Jurisdiction or extra territoriality) के निरन्तर व्यवहार करने के फलस्वरूप पैदा हुए। जिस का अजीब नतीजा यह निकला कि "मेहमान ही घर का मालिक बन बैठा।"

क्यों थिएन् चिङ् की संधि इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है? नान् चिङ् की संधि के बाद विदेशी लोग चीन के साथ असम संधियों के कारण जो व्यापार करते थे वह क्वाङ् चउ (केन्टन) में सबसे अच्छा चलता था। कुश्राङ् तुङ् और कुश्राङ् सि ही दो प्रान्त थे जहाँ विदेशी साम्राज्यवाद का चीन के आर्थिक जीवन और उसके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा और वहां की ही चीनी जनता में विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध सबसे

अधिक प्रतिक्रिया भी हुई। विशेष कर केन्टन निवासी विदेशियों के लिये बन्दरगाह खोलने और उनके जहाजों को चीनी बन्दरगाहों में घुसने देने के कट्टर विरोधी थे। नान् चिङ् संधि के नौ वर्षों बाद ताव् कुआङ् के तीसवें वर्ष (सन् १८५० ई०) में हुङ् शिउ छुआन् नामक व्यक्ति ने कुआङ् सि प्रान्त के चिन् थिएन् नामक स्थान में विद्रोह का झंडा उठाया। यह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था जो तीव्रता से कुआङ् सि से छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि-किआङ्) कांठें में फैल गया और उसके बाद शान् तुङ् और ह पइ प्रान्तों में भी इसकी आग फैल गई। इस आन्दोलन ने तो मांचू शासन को पलट देने में करीब करीब सफलता ही प्राप्त कर ली थी। इसी काल में अंग्रेजी फ्रांसीसी सेना ने केन्टन, थिएन् चिङ् और पइ फिङ् (पेकिङ्) पर धावा किया। इस संयुक्त विदेशी आक्रमण के कारण मांचू सरकार ने असमंजस में पड़कर थिएन् चिङ् की संधि की। इसके पहले तक विदेशी शक्तियों के दबाव के विरुद्ध मांचू सरकार की एक मात्र यही वैदेशिक नीति थी कि वह उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती थी, परम्परागत आत्म गौरव के गीत गाती थी और चीन में रहनेवाले सभी विदेशियों का विरोध करती थी। लेकिन थियन् चिङ् संधि के बाद मांचू दरबार को अपनी कमजोरी का पता लग गया और धीरे धीरे वह विदेशियों का दास बनता गया। हर बात में वह विदेशियों के सामने शिर नवा देता था। बहुत संधियों में तो उसने न्यूनाधिक रूप में अपनी इच्छा से ही विदेशियों को विशेष अधिकार दे दिया। यहाँ से ही चीन की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में घातक परिवर्तन प्रारम्भ होता है। इसी काल में विदेशियों के प्रति चीनी अफ़सरों और विद्वानों के रुख में भी मौलिक परिवर्तन हुआ। पहले तो मांचू सरकार की तरह वे लोग भी आत्मश्लाघी थे। बाद में, यद्यपि अधिकाँश लोग वैदेशिक मामलों के गुरुत्व को नहीं ही समझ सके और उसके बारे में अज्ञानी ही बने रहे पर कुछ लोगों ने इस बात को समझा कि पश्चिम के अस्त्र-शस्त्र और जहाज कितने कार्यकारी हैं। उन लोगों ने यह सोचकर कि कहीं वे लोग प्रतियोगिता में पीछे न रह जाएँ अपने देशवालों से पश्चिम की नकल करने तथा भौतिक विज्ञान पढ़ने की वकालत की। छङ् कुओ-फान्, चो चुङ्-थाङ् और लि हुङ्-चाङ् आदि जैसे व्यक्ति जिन्होंने मँचू शासक को थाइ फिङ् क्रान्ति दबाने में सफलतापूर्वक मदद की थी, इस प्रकार के सुधारों के अगुआ थे। इन सुधारों को बाद में मँचू सरकार ने अपनाया। पर उस काल में विदेशी बातों की

चर्चा केवल पश्चिमी ढंग के राइफल और तोप ढालने के कारखानों की स्थापना करने, यातायात के साधनों के निर्माण करने और पश्चिमी भाषाओं के पढ़ाने के लिये विद्यालय स्थापित करने तक ही सीमित थी। पर विदेशी भाषाओं के अल्प ज्ञान से कोई कूटनीतिज्ञ नहीं हो सकता और न जहाज बनाने या समुद्र तट की रक्षा की व्यवस्था करने या रेल बिछाने से ही यह समझा जा सकता है कि ये सब राष्ट्रीय सुरक्षा या जनता के आर्थिक जीवन के हित की दृष्टि से किए गए हैं। इन कामों के लिये अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि इनसे पश्चिम के शक्तिशाली जहाजों और बन्दूकों के लिये हमारे दिल में जो सम्मान है उसकी अभिव्यक्ति हुई है। पर यह सब काम हमारी राष्ट्र निर्माण की योजना का एक अंग था ऐसा नहीं माना जा सकता। तब भी, जो धन विशेष सुधार के कामों के लिये अलग कर दिया गया था उसे भी मांचू राजघराने के लोगों ने अपने उच्छृङ्खल कामों में खर्च कर दिया। सुधार संबन्धी कामों को चलाने के लिये जितने पद निर्धारित किए गए थे उन्हें आम तौर पर सभी अफसर आमदनी का जरिया समझते थे और अपने को मालामाल करने के लिये वे अनुचित उपाय काम में लाते थे। हाइ चून् या मन् (नौसेना विभाग) मांचू राजघराने की आज्ञा के अनुसार ग्रीष्म प्रासाद (इ ह युआन्) निर्माण करने में लगा था और चुङ् लि-क-क्वो श-वु-या-मन् (वैदेशिक विभाग) तो वह स्थान था जहाँ प्रभावशाली राजकुमार और अफसर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे और ऊँची तनख्वाह लेते थे। जब सन् १८६४-६५ ई० के चीन-जापान युद्ध में चीन हार गया तो लि हुङ्-चाङ् को चीन की ओर से मा कुआन् (शीमोनोसेकी) की संधि करने के लिये जापान भेजा गया। इस संधि में अपमानजनक शर्तों पर चीन के राष्ट्रीय अधिकार जापान को दिये गये। मांचू शासन के दो सौ वर्षों से ऊपर के काल में चीन का जो अधःपतन हुआ था और जिसके फलस्वरूप वह खोखला पड़ गया था उसकी पोल इस अवसर पर पूरी तरह खुल गई। *इसी से जापानी सैन्यवादी चीन का अपमान करने लगे और सम्पूर्ण एशिया के प्रति उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ी।*

इस काल की असम संधियाँ दो श्रेणियों में विभक्त की जा सकती हैं। पहली तो वे जो चीन के साथ हुए ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस के सम्मिलित युद्ध से पहले हुई थीं और दूसरी जो इस युद्ध के बाद हुईं। पहली श्रेणी में मुख्य मुख्य संधियाँ ये हैं:—सन् १८४२ ई० (ताव् कुआङ् २२ वें वर्ष)

की चीनी-ब्रिटिश नान् चिङ् संधि, सन् १८४३ ई० (ताव् कुआङ् २३ वें वर्ष की चीनी ब्रिटिश संधि जिसमें उन पाँच बन्दरगाहों के खोलने के नियम सम्मिलित थे जो "संधि से खोले गये बन्दरगाह" कहलाये। इसे हु-मन् (व्याघ्र द्वार—Bacca Tigris) की संधि भी कहते हैं। सन् १८४४ ई० (ताव् कुआङ् २४ वें वर्ष) की वाङ् शिआ की चीनी अमरिकी संधि और ह्वाङ् पु की चीन-फ्रांसीसी संधि, सन् १८४७ ई० (ताव् कुआङ् २७ वें वर्ष) की चीनी-स्वेडिस नारवेजियन संधि; और सन् १८५१ ई० (शिएन् फङ् १ ला वर्ष) की था अर पा हा थाइ (Kuldja) की चीनी-रूसी व्यापारिक संधि। इन संधियों द्वारा विभिन्न राष्ट्रों ने जो मुख्य मुख्य विशेष अधिकार प्राप्त किये थे वे निम्न हैं :—

(क) वहिर्देशीय अधिकार क्षेत्र—

(१) जिस अभियोग में वादी-प्रतिवादी दोनों ही विदेशी हैं उसका निर्णय चीनी अधिकारी नहीं कर सकते।

(२) जिन दीवानी मुकदमे में चीनी और विदेशी दोनों ही उलझे हैं पहले जिस देश के विदेशी हैं उस देश के अफसर पंच द्वारा समझौता कराने की चेष्टा करें। अगर समझौता न हो सके तो वे विदेशी अफसर तथा स्थानीय चीनी अफसर दोनों ही मिलकर मुकदमे को सुनवाई करें और इंसाफ के साथ मामला तय करें।

(३) यदि फौजदारी मुकदमे में चीनी और विदेशी दोनों ही उलझे हों तो चीनी प्रतिवादी की सुनवाई स्थानीय चीनी अधिकारी द्वारा चीन के कानून के अनुसार होगी और विदेशी प्रतिवादी की सुनवाई उसके अपने देश के अधिकारी द्वारा तथा उसी के देश के कानून के अनुसार होगी।

वहिर्देशीय अधिकार क्षेत्र तो चीन के शासन-अधिकार पर अनधिकार हस्तक्षेप था; जिसके फलस्वरूप चीन की सार्वभौमिकता का अपहरण होता था। इसलिये व्यापारिक या दूसरे प्रकार के कार्यों में चीन के लोग विदेशियों से समान स्तर पर नहीं व्यवहार कर सकते थे। सचमुच ही यह चीन के राष्ट्रीय स्वार्थ और जनता की जीविका पर बड़ा ही सांघातिक आघात था।

(ख) एक तरफा स्थापित व्यापार-कर

(१) चाय, लकड़ी, धातु और मसाला जिन पर मूल्यानुसार १० फीसदी व्यापार-कर बैठाया जाता था इन्हें छोड़कर और सभी विदेशी निर्यात और आयात पर मूल्यानुसार ५ फीसदी व्यापार कर बैठाया जा सकता था।

(२) जब विदेशी जहाज चीन के बन्दरगाहों में प्रवेश करते थे तो १५० टन से ऊपर के जहाज प्रति टन ०.५ टेल[1] और १५० टन से कम जहाज प्रतिटन ०.१ टेल जहाज-महसूल देते थे।

व्यापार-कर की दर इस प्रकार निश्चित हो जाने से चीन की प्रबन्ध नीत (Economy) और राजस्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विदेशियों के नियन्त्रण में चले गए। इससे जनता की जीविका को गहरा धक्का लगा और चीन का भविष्य अन्धकारपूर्ण हो गया।

असम संधियों की दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत मुख्य-मुख्य संधियाँ ये हैं:—सन् १८५८ में (शिएन् फङ् ८ वें वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-ब्रिटिश, चीनी-फ्रांसीसी चीनी अमरीकी और चीनी-रूसी संधियाँ, सन् १८६० की (शिएन् फङ् १० वें वर्ष) चीनी-रूसी अतिरिक्त संधि, सन् १८६१ में (शिएन् फङ् ११ वें वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी जर्मन संधि, सन् १८६२ में (थुङ् च प्रथम वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-पुर्तगीज संधि, सन् १८६३ में (थुङ् च २रे वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-डेनिश संधि और चीनी-डच संधि, सन् १८६४ में (थुङ् च ३रे वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-स्पेनिश संधि, सन् १८६५ में (थुङ् च ४ थे वर्ष) पइ चिङ् (पिकिङ्) में हुई चीनी-बेलजियन संधि, सन् १८६६ई० में (थुङ् च ५वें वर्ष) पइ चिङ् में हुई चीनी-इटालियन संधि, सन् १८६९ में (थुङ् च ८वें वर्ष) पइ चिङ् में हुई चीनी-अस्ट्रियन संधि, सन् १८७४ में (थुङ् च १३वें वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-पेरुवियन संधि, सन् १८७६ में (कुआङ् शू २रे वर्ष) यन् थाइ (chefoo) में हुई चीनी-ब्रिटिश संधि, सन् १८८० में (कुआङ् शू ६ठे वर्ष) की चीनी अमरीकी

(१) चीन में चुङ्गी वसूल करने की इकाई थी। चीनी भाषा में इसे हाई कुआन् लिआङ् कहते हैं जो २ शिलिंग ११$\frac{७}{१}$ पेंश के बराबर होती थी।

अतिरिक्त संधि और सन् १८८१ में (कुआङ् शू ७वें वर्ष) थिएन् चिङ् में हुई चीनी-ब्राजिलियन संधि। इन संधियों के कारण विदेशी राजों ने चीन के समुद्र तट तथा भीतर की नदियों के किनारे के कितने ही और बन्दरगाहों को खुलवा लिया तथा विभिन्न प्रकार के दूसरे दूसरे विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए जिनका सारांश नीचे है :—

(क) वहिर्देशीय अधिकार क्षेत्र —

उपरोक्त संधियों द्वारा विदेशियों के वहिर्देशीय अधिकारों को कायम रखा गया तथा और भी दो निम्न विशेष अधिकार उन्हें दिए गए :

(१) मुकदमे की सुनवाई पर निगरानी रखने का अधिकार—
नान् चिङ् की संधि के बाद जो संधियाँ हुईं उनके चीनी मजमून में "हुइ थुङ् शन् सिन्" (सम्मिलित रूप से मुकदमे की सुनवाई करना) वाक्य आता है जो मूलतः केवल दीवानी मुदकमों के लिये था। पर मांचू सरकार के अफसरों ने उस वाक्य का गलत अनुवाद किया जिससे फौजदारी मुकदमों पर भी वह लागू हो गया। इस गलत अनुवाद के आधार पर विदेशी शक्तियों ने फौजदारी मुकदमों की सुनवाई पर भी निगरानी रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इसका अर्थ यह था कि जिन फौजदारी या दीवानी मुकदमों में चीनी नागरिक प्रतिवादी और विदेशी नागरिक वादी के रूप में हों उन मुकदमों की सुनवाई पर निगरानी रखने के लिये विदेशी राजदूत को अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है।

(२) सम्मिलित रूप से मुकदमा सुनने का अधिकार —
सन् १८६८ (थुङ् च ७वें वर्ष) में शंघाइ के स्थानीय चीनी अधिकारियों और वहाँ के ब्रिटिश तथा अमरीकी कॉनसुलों ने तथाकथित "याङ् चिङ् पाङ्" नियम बनाया। इसके बाद से केवल ऐसे दीवानी या फौजदारी मुकदमों की ही नहीं जिनमें चीनी और विदेशी उलझे हों बल्कि शंघाइ निवास क्षेत्र में हुए उन मुकदमों की भी सुनवाई संयुक्त अदालत में होने लगी जिनमें वादी प्रतिवादी दोनों ही

चीनी नागरिक होते थे। एक के बाद दूसरी विदेशी शक्ति ने भी इसी प्रकार के अधिकार की माँग की और जिसके फलस्वरूप शंघाइ के फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र में "संयुक्त अदालत" (Joint Court) हान् खउ में 'संयुक्त अदालत," हा अर् पिन् (हारबीन Harbin) में" वैदेशिक और रेल विभाग" और कु लाङ् यू में "संयुक्त अदालत" स्थापित हुईं। ये सब के सब विचित्र संस्थान थे।

जब विदेशी शक्तियों के अधिकारियों ने मुकदमे की सुनवाई पर निगरानी रखने और मुकदमा फैसला करने के अधिकार प्राप्त कर लिए तो इसका फल यह हुआ कि एक तरफ तो विदेशी नागरिक चीनी कानून के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते थे और दूसरी तरफ वे चीन के न्याय प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकते थे। विदेशी नागरिक चीन की अदालत के अधिकार क्षेत्र के बाहर थे पर विदेशियों को चीनी नागरिकों के मुकदमों के सुनने का अधिकार था।

(ख) रियायती क्षेत्र—

इसी काल में विभिन्न "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" पर विदेशी रियायती क्षेत्रों की सीमा निर्धारित हुई। इससे पहले केवल शंघाइ के 'अन्तर्राष्ट्रीय निवास क्षेत्र' की सीमा सन् १८४५ ई० (ताव् कुआङ् २५ वें वर्ष) में और "फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र" की सीमा सन् १८४६ ई० (ताव् कुआङ् २६ वें वर्ष) में निर्धारित हुई थी। सन् १८६१ ई० में (शिएन् फङ् ११ वें वर्ष) थिएन् चिङ् के ब्रिटिश रियायती क्षेत्र और फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र की सीमा निर्धारित हुई और इसी वर्ष हान् खउ, चिउ चिआङ, चेन् चिआङ् और शिआ मन् (अमोय) के ब्रिटिश रियायती क्षेत्रों की सीमा तथा क्वाङ् चउ (केन्टन) स्थित शा मिएन् (Shameen) के ब्रिटिश रियायती क्षेत्र और फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र की सीमा निर्धारित हुई।

बहिर्देशीय अधिकार का मूल अर्थ यह था कि वह

व्यक्तियों पर लागू होगा, भूभाग पर नहीं। पर जब विदेशी रियायती क्षेत्रों की सीमा निर्धारित हो गई तो यह अधिकार हर रियायती क्षेत्र के सम्पूर्ण भूभाग पर भी लागू हो गया। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि चीनी भूभाग के भीतर अनेकों राज बने।

(ग) विदेशी जंगी जहाजों को चीन के पानी में चलने तथा ठहरने का अधिकार—

हु मन् की संधि, वाङ् शिआ की चीनी-अमरीकी संधि और हुआङ् पु की चीनी-फ्रांसीसी संधि में यह अधिकार दिया गया कि विदेशी जंगी जहाज चीन के समुद्र के किनारे किनारे तथा देश की नदियों में चल सकते हैं तथा लंगर डाल सकते हैं। थिएन् चिङ् की संधि में तो इस प्रकार के अधिकार और भी अधिक ब्योरेवार रूप से दिए गए।

विदेशी जंगी जहाजों को चीन के समुद्र तट तथा देश की नदियों में स्वतंत्ररूप से आने-जाने तथा ठहरने का अधिकार मिल जाने से चीन के पास नाम मात्र भी सामुद्रिक सुरक्षा नहीं रही। साम्राज्यवादियों की "पोतास्त्र नीति" (Gunboat Policy) के उत्पात के लिये चीन के सभी प्रधान नगरों के द्वार खुले रहे।

(घ) चुङ्गी प्रबन्ध का नियंत्रण—

थिएन् चिङ् की संधि के पूर्व ही विदेशी लोग शंघाइ के चुङ्गी घर के प्रबंध में भाग लेते थे। सन् १८५६ ई० (शिएन् फङ् ६ठे वर्ष) के "व्यापारिक नियम संबंधी चीनी-ब्रिटिश एकरारनामा" में एक शर्त यह भी थी कि चीन के चुङ्गी प्रबन्ध में सहायता करने के लिये एक ब्रिटिश अधिकारी की नियुक्ति होगी। तब से चीन की चुङ्गी का इन्सपेक्टर जनरल बराबर ब्रिटिश नागरिक ही होने लगा। सन् १८६४ ई० (थुङ् च ३ रे वर्ष) में "चुङ्-लि-क-क्वो-शिआङ्-थुङ् श-वु-या-मन्" (वैदेशिक विभाग) ने "चुङ्गी प्रबंध में सहायता के लिये विदेशियों की नियुक्ति के नियम" लागू किया। इसमें इन्सपेक्टर जनरल को अधिकार दिया गया कि वह चुङ्गी विभाग में

विदेशियों को नियुक्त कर सकता है। तब से विभिन्न 'संधि से खोले गए बन्दरगाहों' के सभी चुङ्गी घरों के चुङ्गी कमिश्नर के पदों पर विदेशी नागरिक ही नियुक्त किए जाने लगे।

ऊपर कहा गया है कि विदेशियों के साथ चीन की जो संधियाँ हुईं उसके अनुसार महसूल की दर निश्चित कर दी गई थी। अब चीन की चुङ्गी पर विदेशियों का प्रत्यक्ष नियंत्रण हो जाने से चुङ्गी की आय पर भी उनका नियंत्रण हो गया।

(ङ) एकतरफा स्थापित व्यापार कर—

थिएन् चिङ् तथा दूसरी संधियों द्वारा चीन के चुङ्गी के दर में संशोधन किया गया। उसकी प्रधान प्रधान बातें यों हैं :—

(१) व्यापार-कर की दर में संशोधन किया गया और वह मूल्यानुसार पाँच फीसदी निर्धारित हुई।

(२) देश के भीतर में लगने वाले कर की दर नियमित चुङ्गी कर से आधी निर्धारित हुई यानी मूल्यानुसार ढाई फीसदी।

(३) जहाजी-महसूल घटा कर ०'४ टेल प्रति टन कर दिया गया।

(४) यह बात तय हुई कि हर दशवें वर्ष चुङ्गी के एकरारनामे में संशोधन होगा।

इस प्रकार के संशोधन का प्रयोजन आयात पर लगने वाले कर को निर्धारित कर देने से विदेशी माल बिना अन्य प्रकार का कर दिए देश के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बे रोक टोक भेजा जाने लगा। वस्तुतः चुङ्गी के एकरारनामे में हर बार संशोधन करने का अर्थ विदेशी माल को अधिक संरक्षण देना था।

(च) समुद्र तट पर व्यापार करने तथा देश की नदियों में जहाज चलाने का अधिकार—

नान् चिङ् की संधि तथा उसके बाद हुई संधियों के द्वारा जो विभिन्न बन्दरगाह विदेशियों के लिये खोल दिए गए

थे वे सब के सब समुद्री तट के बन्दरगाह थे। इसलिये विदेशी शक्तियों को समुद्र तट पर जहाज चलाने का अधिकार प्राप्त था। थिएन् चिङ् की संधि में इस प्रकार का अधिकार व्योरेवार दिया गया। थिएन् चिङ् की संधि तथा उसके बाद हुई संधियों में विदेशी व्यापार के लिये छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) के किनारे के बन्दरगाह भी खोल दिए। इस प्रकार विदेशी शक्तियों को देश के भीतर जहाज चलाने का अतिरिक्त अधिकार दिया गया।

जब विदेशियो को चीन के समुद्र तट पर व्यापार करने तथा देश की नदियों में जहाज़ चलाने का अधिकार प्राप्त हो गया तो केवल विदेशी माल से चीन के सभी भागों के बाजार ही नहीं भर गए बल्कि चीन का जहाजी रोजगार-धंधा भी विदेशियों के हाथ चला गया। विदेशी माल तो नाना स्थानों पर विदेशी जहाजों द्वारा भेजा ही जाता था, यहाँ तक कि चीनी माल भी विदेशी जहाजों द्वारा ही भेजना पड़ता था।

सन् १८६४ (कुआङ् शू २० वें वर्ष) के चीन-जापान युद्ध से आठ विदेशी शक्तियों के संयुक्त आक्रमण (सन् १६००) तक का समय चीन के वैदेशिक संबंध का "दूसरा काल" है। चीन-जापान युद्ध के बाद चीन की कमजोरी का लाभ उठाकर विभिन्न विदेशी शक्तियों ने चीन से पट्टे पर भूभाग लेने की प्रतियोगिता लगा दी और वे चीन में अपना प्रभाव क्षेत्र कायम करने लगे। उन्होंने चीन में सेना रखने के बैरक, नौसेना तथा सैनिकों के अड्डे बनाने प्रारम्भ किए और रेल बिछाने और खान खोदने के अधिकार प्राप्त करने लगे। लिउ चिउ द्वीप, हाङ्काङ् द्वीप, थाइवान् द्वीप (फारमूसा), फङ् हु द्वीप (पेसकाडोर), आन्-नान् (इंडोचाइना), और मिएन् तिएन् (बर्मा) आदि चीन के हाथ से निकलते देख यह जान पड़ने लगा कि सम्पूर्ण देश के शीघ्र विभाजन का खतरा आ उपस्थित हुआ है। इससे चीनी जनता में इस बात का प्रबल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ कि चीन का अपमान मिटाकर उसे शक्तिशाली राष्ट्र बनाना होगा। इस काल में चीनी अफसरों और विद्वानों ने धीरे धीरे इस बात को समझा कि चीन की कमजोरी का एकमात्र कारण यह नहीं है कि वह पश्चिम के

राइफल, तोप और जहाज का मुकाबला नहीं कर सकता। बल्कि उसकी कमजोरी का तो सबसे प्रधान कारण उसके राजनीतिक जीवन का अधःपतन है जो निरंकुश राजतंत्र का परिणाम है। फिर राजनीतिक सुधार कैसे किया जाय? यह प्रश्न जिन जिन दूरदर्शी लोगों के मन में उठा उन्होंने इसका भिन्न भिन्न समाधान बताया। पर हमारे राष्ट्रपिता डा० सुन यात सन् ने समय तथा जनता की मांग के अनुसार क्रान्ति का मार्ग बताया। उन्होंने थान् शिआङ् शान् (होनोलुलु) में शिङ् चुङ् हुइ की स्थापना की तथा उन सब लोगों को संगठित किया जो क्रांति के पक्ष में थे। उनका नारा था कि "मांचू बर्बरों को निकाल बाहर करो और चीनी राज की पुनः प्रतिष्ठा करो।" "जनता के तीन सिद्धान्त" का प्रतिपादन कर वे बड़े जोर से क्रांतिकारी आन्दोलन में लग गए। चीन के अन्य दलों और फिरकों को उनके कार्य का महत्त्व एकदम नहीं सूझा। जैसे खाङ् यु-वइ ने तो सम्राट् के अधिकार का समर्थन किया और राजनीतिक सुधार की वकालत की। इन सबसे सन् १८९८ (कुआङ् शू २४ वें वर्ष) में प्रतिक्रियावादियों द्वारा "अवैध रूप से शासन परिवर्त्तन" हुआ। इस अवैध शासन परिवर्त्तन के बाद छिङ् राजदरबार में प्रबल प्रतिक्रियावादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। मांचू राजघराना इस प्रतिक्रियावादी आन्दोलन का केन्द्र था। सरकारी अफसरों तथा विद्वान् लोगों ने सभी विदेशी बातों पर चर्चा करना छोड़ दिया और सभी प्रकार के राजनीतिक सुधारों का विरोध किया। अज्ञानी और हठी लोग इतनी हद तक गए कि उन्होंने विदेशी शक्तियों के प्रबल अस्त्र-शस्त्र का विरोध जादू-टोने से करना चाहा। उन लोगों ने तथाकथित "इ ह. थुआन्" (न्यायनिष्ठ घूँसाबाज धार्मिक संघ—बॉक्सर) का संगठन किया और विदेशियों के ऊपर आक्रमण करने के लिये लोगों को भड़काया तथा गुमराह किया। इसके फलस्वरूप सन् १९०० में (कुआङ् शू २६ वें वर्ष) आठ शक्तियों का संयुक्त आक्रमण चीन पर हुआ। इसके कारण चीन को सन् १९०१ (कुआङ् शू २७ वें वर्ष) में शांति संधि (ह यो) करनी पड़ी जो उसके लिये एक और अपमान हुआ।

इस काल में हुई असम संधियों में मा कुआन् (शीमोनोसेकी) की संधि के कारण चीन-जापान के पारस्परिक संबंध की धारा ही बदल गई। चीन-जापान का संबंध जो अब तक समान स्तर पर था इस परिवर्त्तन से असमानता के स्तर पर हो गया। इस काल में चीन के वैदेशिक संबंध की

मुख्य विशेषताएँ ये हैं—विभिन्न संधियों और एकरारनामों का होना, जिनके कारण मांचू सरकार ने विदेशी शक्तियों को चीन के विभिन्न भू भाग पट्टे पर दे दिए; रेल बिछाने के लिये कर्ज लेने का शर्तनामा; विभिन्न विदेशी शक्तियों द्वारा चीन में अपने अपने प्रभाव क्षेत्र कायम करने की अपनी ओर से एक तरफा घोषणा और विभिन्न शक्तियों के बीच "प्रभाव क्षेत्र" (श लि फ़ान् वइ) को लेकर आपस में हुई संधियाँ। इन सब की प्रमुख बातें यों हैं :—

(क) "प्रभाव क्षेत्र", पट्टे से प्राप्त भूभाग, रेल बिछाने का अधिकार, रेलवे क्षेत्र, खान खोदने का अधिकार—

(१) ग्रेट ब्रिटेन

सन् १८९४ ई० के चीन-जापान युद्ध के पहले से ही विदेशी शक्तियाँ चीन में अपना अपना "प्रभाव क्षेत्र" कायम कर रही थीं। सन् १८४६ (ताव् कुआङ् २६ वें वर्ष) में "चु शान् द्वीप चीन को लौटा देने के संबंध की चीनी-ब्रिटिश संधि" में एक शर्त यह रख दी गई थी कि "चु शान् द्वीप और इसके आसपास के दूसरे द्वीप किसी दूसरी विदेशी शक्ति को नहीं दिए जाएँगे।" युन् नान् और बर्मा के बीच की सरहद ठीक करने और उस सरहद पर चलने वाले व्यापार के नियमन के लिए सन् १८९४ (कुआङ् शू २० वें वर्ष) में चीन और ब्रिटेन के बीच जो विशेष संधि हुई उसमें स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख है कि छिङ् सरकार "न तो मङ् लिएन् को और न चिआङ् हुङ् को और न दोनों के किसी भाग को किसी अन्य विदेशी राज को देगी।" इसके बाद सन् १८९८ (कुआङ् शू २४ वें वर्ष) में "वइ हाइ वइ को पट्टे पर देने के संबंध की चीनी-ब्रिटिश संधि" और "चिउ लुङ् (कौलुन) को पट्टे पर देने के संबंध की चीनी-ब्रिटिश संधि" हुईं जिनके अनुसार क्रमशः वइ हाइ वइ और चिउ लुङ् ब्रिटेन को पट्टे पर मिले। सन् १८९९ (कुआङ् शू २५ वें वर्ष) में ब्रिटेन और रूस के बीच यह तय हुआ कि छाङ् चिआङ् का कांठा ब्रिटेन का क्षेत्र होगा जिसमें एकमात्र उसे ही

रेल बिछाने का अधिकार होगा। इसी काल में पेकिङ् स्थित ब्रिटिश व्यापारिक फु कुङ् श (ब्रिटिश प्रतिनिधि परिषद्) ने शान् सि और ह-नान् प्रान्तों में खान खोदने का अधिकार प्राप्त किया।

(२) फ्रांस

यूए-नान् (इंडोचाइना) पर अधिकार जमा लेने के बाद सन् १८६७ ई० (कुआङ् शू २३वें वर्ष) में फ्रांस ने माँचू सरकार से यह बात पक्की कर ली कि "हाइ नान् द्वीप अन्य किसी राष्ट्र को नहीं दिया जायगा।" इसके दूसरे वर्ष सन् १८६८ में (कुआङ् शू २४ वें वर्ष) उसने यह बात भी पक्की कर ली कि कुआङ् तुङ्, कुआङ् सि और युन् नान् ये तीन प्रान्त अन्य किसी राष्ट्र को नहीं दिए जाएँगे। इसी काल में उसने लुङ् चउ रेल बढ़ाने तथा युन् नान् इंडोचाइना रेल बिछाने और कुआङ् तुङ् कुआङ् सि और युन् नान् में खान खोदने के अधिकार प्राप्त कर लिए। सन् १८६६ (कुआङ् शू २५वें वर्ष) में उसने माँचू सरकार से एक संधि की जिससे कुआङ् चउ वान् का भू भाग उसे पट्टे पर मिला।

(३) जर्मनी

सन् १८६८ (कुआङ् शू २४वें वर्ष) में जर्मनी ने माँचू सरकार से एक संधि की जो "चिआव् आव् (macao) की संधि" कहलाती है। इसके अनुसार चिआव् चउ वान् उसे पट्टे पर मिला तथा उसने चिआव् चउ-चि निङ् रेल बिछाने की और रेल लाइन के तीस लि (पाँच कोस) के अन्दर स्थित खानों के खोदने की अनुमति प्राप्त कर ली।

(४) जारकालीन रूस

सन् १८६३ ई० (कुआङ् शू २२ वें वर्ष) में जारकालीन रूस ने माँचू सरकार के साथ "चीनी-रूसी ताव् शङ् बैंक एकरारनामा" और "चीनी पूर्वी रेल संबंधी एकरारनामा" किया; जिनके अनुसार चीन के "तीन पूर्वी प्रान्त"

(मंचूरिया) रूस का 'प्रभाव क्षेत्र' माना गया। सन् १८६८ (कुआङ् शू २४वें वर्ष) में उसने माँचू सरकार से लू शुन् (पोर्ट अर्थर) और ता लिएन् (डाइरन) को पट्टे पर लेने की संधि की और उसे लू शुन् तथा ता लिएन् पट्टे पर मिल गए। एक अतिरिक्त संधि के द्वारा उसे लू शुन् तथा ता लिएन् क्षेत्र के आस पास रेल बिछाने, खान खोदने, उद्योग धंधे और वाणिज्य-व्यापार चालू करने का विशेष अधिकार प्राप्त हुआ। सन् १८६६ (कुआँङ् शू २५वें वर्ष) में ब्रिटेन और जारकालीन रूस में एक एक एकरारनामा हुआ जिसके अनुसार चीन की महान दीवार के उत्तर का भू भाग रेल बिछाने के लिये रूसी क्षेत्र माना गया।

(५) जापान

चीन से फङ् हु (पेसकाडोर) और थाइ वान् (फारमूसा) का अपहरण कर सन् १८६८ (कुआङ् शू २४वें वर्ष) में जापान ने माँचू सरकार से यह शर्त पक्की कर ली कि "फु चिएन् (फु किएन् प्रान्त) प्रान्त और उसके समुद्र तट के द्वीप किसी अन्य शक्ति को नहीं दिए जाएँगे।"

विदेशी शक्तियों द्वारा चीन में अपना अपना प्रभाव क्षेत्र कायम करना चीन को विभाजित करने की ओर कदम बढ़ाना था। *यद्यपि चीन को तरबूज की तरह काट कर बांट देने वाली दुखद घटना न घटी पर रेल, खान, उद्योग धंधे और वाणिज्य-व्यापार आदि सम्बन्धी हमारे अधिकार व्यवहार रूप से विदेशियों के हाथों में चले गये।*

(ख) रियायती क्षेत्र—

इस काल में निम्न रियायती क्षेत्र विदेशियों को दिए गए :—

सन् १८६५ (कुआङ् शू २१ वें वर्ष) में हान् खउ जर्मन रियायती क्षेत्र और थिएन् चिङ् जर्मन रियायती क्षेत्र; सन् १८६६ (कुआङ् शू २२ वें वर्ष) में हान् खउ रूसी रियायती क्षेत्र, हान् खउ फ्रांसीसी रियायती क्षेत्र और हाङ् चउ जापानी रियायती क्षेत्र; सन् १८६७ (कुआङ् शू २३ वें

वर्ष) में सु चउ जापानी रियायती क्षेत्र; सन् १८६८ (कुआङ् शू २४ वें वर्ष) में थिएन् चिङ् जापानी रियायती क्षेत्र, शा-श जापानी रियायती क्षेत्र और हान खउ जापानी रियायती क्षेत्र; और सन् १८६६ (कुआङ् शू २५ वें वर्ष) में शिआ मन् (अमोय) जापानी रियायती क्षेत्र और फु चउ जापानी रियायती क्षेत्र।

(ग) चीन में विदेशी सैनिक रखने का अधिकार—
इसी काल में जारकालीन रूस ने जबरदस्ती चीनी पूर्वी रेलवे के किनारे किनारे तथाकथित "चीनी पूर्वी रेल रक्षक" (चुङ् तुङ् थिए लु हु लु तुइ) नियुक्त किए। *तब से विदेशी शक्तियों ने चीन में अपने अपने सैनिक रखने का अधिकार पा लिया।*

(घ) चीन के डाक विभाग में विदेशी कर्मचारियों की नियुक्ति और विदेशी डाक घरों की स्थापना--
सन् १८६८ (कुआङ् शू २४ वें वर्ष) में फ्रांस ने मांचू सरकार पर दबाव डाला कि चीन के डाक विभाग में विदेशी कर्मचारी भी नियुक्त किए जायँ और उसी काल में विदेशियों ने चीन में अपने अपने डाकघरों की भी स्थापना की। *तब से चीन का डाक विभाग विदेशी शक्तियों के नियंत्रण में चला गया।*

(ङ) चीन में कल-कारखाने स्थापित करने का अधिकार—
मा कुआन् (शीमोन सेकी) की संधि में जापान ने एक शर्त्त यह करा ली कि चीन के सब "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" में जापानी नागरिक "सभी प्रकार के उद्योग-धन्धे तथा कल-कारखाने स्वतंत्रतापूर्वक खोल सकते हैं और सभी प्रकार की मशीनें बाहर से मंगा सकते हैं—शर्त्त यह कि आयात पर उसे निर्धारित व्यापार-कर देना होगा।" साथ साथ "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" में स्थित जापानी कारखानों में जो माल तैयार होगा उसे आयात ही समझा जायगा जहाँ तक कि उसका संबंध कर न लगने या कर में कमी होने से है। अपने को "चीन का परम हितू" राष्ट्र कह कर दूसरी शक्तियों ने भी समान

व्यवहार की मांग की और इसी प्रकार के अधिकार का उपभोग वे भी करने लगे।

सन् १६०१ की शांति संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद से चीन के वैदेशिक संबंध का "तीसरा काल" प्रारम्भ होता है। "प्रथम काल" में विदेशी साम्राज्यवादी चीन में एक तरह से समकक्ष प्रतियोगिता में लगे हुए थे। "दूसरे काल" में उनकी प्रतियोगिता तीव्र अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दिता में परिणत हुई। जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी जापानी संधि और फ्रांसीसी-रूसी संधि हुई। आठ शक्तियों के संयुक्त आक्रमण के समय वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दिता "सर्व प्रवेश नीति" (open door policy) *और विभाजन नीति के बीच झूल रही थी।* संयुक्त राष्ट्र ने सब से पहले "सर्व प्रवेश नीति" की वकालत की और बाद में ग्रेटब्रिटेन ने भी इसका समर्थन किया। जापान तो असंतुष्ट था ही क्योंकि यद्यपि चीन पर उसकी विजय हुई थी पर लिआव् तुङ् प्रायद्वीप चीन को लौटा देने के लिये वह दूसरी शक्तियों द्वारा बाध्य किया गया था। इसी काल में जारकालीन रूस मंचूरिया में अपना मुख्य स्थान बना लेने की चेष्टा में था। *सन् १६०४ (कुआङ् शू ३० वें वर्ष) में चीन को अपमान के साथ देखना पड़ा कि उसी के भूभाग के ऊपर मंचूरिया में रूसियों और जापानियों ने अपना अपना प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने के प्रश्न को लेकर भयंकर युद्ध किया इसी काल में जापान ने अपने महाद्वीपीय नीति की नींव डाली और इस प्रकार उसने केवल एशिया के विरुद्ध ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण संसार के विरुद्ध अपने इस मौजूदे आक्रमण का रास्ता साफ किया।*

इस काल की असम संधियाँ हैं सन् १६०१ की शांति संधि, सन् १६०२ (कुआङ् शू २८ वें वर्ष) की मा खाइ चीनी-ब्रिटिश संधि, सन् १६०३ (कुआङ् शू २६ वें वर्ष) की चीनी-अमरीकी व्यापारिक संधि और चीनी-जापानी अतिरिक्त जहाजी संधि, सन् १६०५ (कुआङ् शू ३१ वें वर्ष) की "मंचूरिया के प्रश्न को लेकर हुई चीनी-जापानी संधि" और सन् १६०८ (कुआङ् शू ३४ वें वर्ष) की चीनी-स्वेडिश संधि। इन संधियों द्वारा विदेशी शक्तियों ने और भी विशेष अधिकार प्राप्त किए जिनकी प्रमुख बातें यों हैं :—

(क) राजदूतावास क्षेत्र—

सन् १९०१ की शांति संधि के अनुसार उस काल की चीन की राजधानी पइ चिङ् (पिकिङ्) का एक विशेष भाग विदेशी राजदूतावास के लिये अलग कर दिया गया, जिनके शासन-प्रबन्ध तथा सुरक्षा का भार उन्हीं (विदेशी राजदूतों) पर रहा। यह "तुङ्चिआव् मिन्शिआङ् श कुआन् चिए" (यानी तुङ् चिआप् मिन् शिआङ् राजदूतावास क्षेत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जहां विदेशी सैनिक और विशेष पुलिस स्थायी रूप से रखी गई। *यह विशेष क्षेत्र सब तरह से और सब कामों के लिये "राज के भीतर राज" सा था।*

(ख) चीन में विदेशी सैनिक रखने का अधिकार—

सन् १९०१ की शांति संधि के अनुसार विदेशी शक्तियाँ केवल दूतावास क्षेत्र के भीतर ही सैनिक नहीं रख सकती थीं बल्कि पइ चिङ् से थिएन् चिङ् होते हुए शान् हाइ कुआन् तक गई रेल लाइन के किनारे किनारे भी रख सकती थीं ताकि पइ चिङ् से समुद्र तक के उनके यातायात का साधन सुरक्षित रहे। इसके अलावे ता-कु के किले को तथा पइ चिङ् से समुद्र तक के बीच स्थित सभी किलों को एकदक धराशायी कर देना पड़ा। *इस प्रकार चीन अपने समुद्र तट की सुरक्षा करने के अधिकार से भी वंचित हुआ।*

(ग) जापान का 'प्रभाव क्षेत्र'

जापानी रूसी युद्ध के बाद जापान ने लू शुन् (पोर्ट अर्थर) और ता लिएन् (डाइरन) के साथ साथ चीनी पूर्वी रेलवे का दक्षिणी भाग तथा उसकी शाखा लाइनों पर भी अधिकार जमा लिया। इस कार्य को मांचू सरकार ने तथा-कथित "मंचूरिया के प्रश्न को लेकर हुई चीनी-जापानी संधि" में मान लिया। इस प्रकार इस संधि से तीन पूर्वी प्रान्तों (मंचूरिया) का दक्षिणी भाग जो "लिआव् तुङ् प्रायद्वीप" के नाम से प्रसिद्ध है, जापान के 'प्रभाव क्षेत्र' में आ गया और लू शुन् तथा ता लिएन् उसे पट्टे पर मिल गए।

(घ) रियायती क्षेत्र—

इस काल में पुनः निम्न रियायती क्षेत्र विदेशियों को दिए गए:—सन् १६०१ (कुआङ् शू २७ वें वर्ष) में थिएन् चिङ् रूसी रियायती क्षेत्र, थिएन् चिङ् बेलजियन रियायती क्षेत्र, चुङ् छिङ् (चुकिंग) जापानी रियायती क्षेत्र; सन् १६०२ (कुआङ् शू २८वें वर्ष) में थिएन् चिङ् इटालियन रियायती क्षेत्र, कु लाङ् यू अन्तर्राष्ट्रीय निवास क्षेत्र; सन् १६०३ (कुआङ् शू २६वें वर्ष) में थिएन् चिङ् आष्ट्रियन रियायती क्षेत्र।

(ङ) चीन के चुङ्गी-प्रबन्ध पर नियंत्रण—

सन् १६०७ (कुआङ् शू ३३ वें वर्ष) में जापान ने तालियन् (डाइरन) के चीन के चुङ्गी-प्रबन्ध पर नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त किया।

(च) एकतरफा स्थापित व्यापार-कर—

सन् १६०१ की शान्ति-संधि और मा खाइ संधि के अनुसार महसूल की दर में परिवर्तन हुआ जिसकी प्रधान बातें यों हैं :—

(१) आयात कर माल के मूल्यानुसार पाँच फीसदी निर्धारित हुआ। कुछ चीजों के लिये निश्चित कर बाँध दिया गया।

(२) विभिन्न बन्दरगाहों पर देशी चुङ्गी घरों से जो आय होती थी वह चीन के चुङ्गी-प्रबन्ध विभाग के अधीन कर दी गई।

(३) लिकिन (देश के भीतर माल इधर-उधर भेजने पर लगने वाला कर) उठा देने की तथा महसूल की दर बढ़ाने की बात तय हुई। अगर लिकिन उठता है तो आयात कर माल के मूल्यानुसार साढ़े बारह फीसदी और निर्यात कर मूल्यानुसार साढे सात फीसदी तक बढ़ाया जा सकता था।

इन सब शर्तों के तय करने में विदेशी शक्तियों का चरम उद्देश्य यह था कि उन्हें अपने माल पर चीन सरकार को जितना कर देना चाहिए उससे कम देना पड़े। सन् १६०१

की शांति-संधि के अनुसार चीन से बहुत बड़ी रकम हर्जाने के रूप में लेने की बात थी। इसकी पूर्ति के लिये चीन को आवश्यक आय चाहिए था और इसके लिये वह स्वभावतः अपने करों को बढ़ाता। *पर चूंकि विदेशी माल को यह सुविधा थी कि उस पर चीनी माल की अपेक्षा कम कर लगता था इसलिये हर्जाना चुकाने का बोझ निश्चित रूप से चीनी माल पर पड़ा। तब से चीन के भूभाग में भी चीनी माल को विदेशी माल की प्रतियोगिता करने में और भी अधिक कठिनाई पड़ने लगी।*

(छ) चुङ्गी-आय का नियंत्रण और चुङ्गी आय की बचत की हिफाजत—

बॉक्सर हर्जाने को चुकाने के लिये चीन ने अपनी चुङ्गी की आय बंधक रूप में विदेशियों को दे दी। इस प्रकार चुङ्गी-आय चुङ्गी के इन्सपेक्टर जेनरल के नियंत्रण में रही जो बराबर विदेशी ही होता था। जुर्माना चुकाने के बाद चुङ्गी आय की जो रकम बच रहती थी वह विदेशी बैंकों में जमा कर दी जाती थी और इन्सपेक्टर जेनरल के नियंत्रण में रहती थी।

तब से चीन की अर्थ-व्यवस्था का सर्वोत्तम साधन-चुङ्गी आय—तो विदेशी साम्राज्यवादियों ने हस्तगत कर ही लिया, साथ साथ उससे जो रकम बच रहती थी वह भी उन्हीं के नियंत्रण में रही।

(ज) देश के जलमार्ग में सुधार, विदेशी उड़ाकुओं की नियुक्ति, प्रकाश स्तम्भ, विपद सूचक सांकेतिक ज्योति और मार्ग-प्रदर्शक लंगर बद्ध पीपे की स्थापना :—

सन् १९०१ की शांति संधि के अनुसार विदेशी शक्तियों ने पइ ह (उत्तरी नदी—जो ता कु के पास समुद्र में गिरती है) और हुआङ् पु (जो वु सुङ् के पास समुद्र में गिरती है) नदियों को साफ करने का अधिकार प्राप्त किया तथा संधि से खोले गए सभी बन्दरगाहों पर अपने देश के लोगों को पथप्रदर्शक नियुक्त करने तथा मार्ग प्रदर्शक लंगर बद्ध पीपे, सांकेतिक जहाज, विपद सूचक सांकेतिक ज्योति, प्रकाश स्तम्भ और

प्रहरी स्तम्भ कायम करने के अधिकार प्राप्त किए। तब से चूंकि साम्राज्यवादी शक्तियों ने प्रधान प्रधान चीनी बन्दरगाहों और देश के जलमार्ग के नाकों का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा उन्हें अपने नियंत्रण में रखा इसलिये चीन के पास नाम लेने को भी समुद्र-तट संबंधी सुरक्षा नहीं रही।

सन् १९०१ की शांति संधि के अनुसार चीन को एक बहुत बड़ी रकम हर्जाने के रूप में देनी पड़ी और विदेशी शक्तियों की मनमानी शर्तों पर उनसे संधि करनी पड़ी। इस कारण इस काल में मांचू सरकार का बचा खुचा सम्मान भी धुल गया और चीनी जनता के लिये जीवन निर्वाह करना कठिन से कठिन होता गया। ऐसी परिस्थिति में यद्यपि चीन के विभाजन का संभावित मनसूबा कार्यान्वित न हो सका और विदेशी शक्तियों की अन्तर्राष्ट्रीय नीति में परिवर्तन हो जाने से चीन कहने भर को स्वतंत्र बना ही रहा पर इस बीच मांचू सरकार के दिल में विदेशियों का डर पूरी हद तक समा गया और वह सचमुच में विदेशियों की दया दृष्टि के लिये सतत प्रयत्न शील रहने लगी। उसी समय जापान ने रूस के ऊपर असंभावित विजय प्राप्त की जिसका चीन के अधिकारियों और जनता पर बड़ा ही गहरा असर पड़ा। सुधार आन्दोलन को दबाने में असमर्थ हो मांचू सरकार ने बाध्य हो नई नीति अपनाई। तद्नुसार राजकीय प्रतियोगिता परीक्षा की पुरानी प्रणाली उठा दी गई, नये स्कूल खोले गए, नई सेना तैयार की जाने लगी, अस्त्रागार की स्थापना हुई, टकसाल खोले गए, जहाज मरम्मत करने के कारखाने कायम हुए और एक विधान लागू करने तथा पार्लियामेंट स्थापित करने की तैयारी की गई। ये सभी चीजें मांचू सरकार की राजनीतिक गंदगी और विदेशी शक्तियों के हाथों हुए चीन के अपमान को ढकने के लिये तथा चीनी जनता को ठगने के लिये की गई थीं। जनता भी इस बात को समझ गई कि चीन के सामने बहुत बड़ा बाहरी खतरा आ उपस्थित हुआ है और इसके साथ साथ वह यह भी जान गई कि मांचू सरकार एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ़ और अयोग्य है। इसलिए तथाकथित वैधानिक आन्दोलन का फल इतना ही हुआ कि कुछ राजकीय फरमान देश भर में जारी कर दिए गए जिनका उद्देश्य चीन की जनता को भ्रम में रखने का था। इसी कारण राष्ट्रपिता डा० सुन् यात-सन् के क्रान्तिकारी सिद्धान्त चीनी समाज में घर कर सके, जहाँ लोगों की दबी हुई राष्ट्रीय

चेतना छिपे-छिपे बढ़ रही थी। राजतंत्री विधान वादी तथा राजपक्षीय दल (पाव् हुआङ् ताङ्) अपना आत्मविश्वास प्रतिदिन खो रहे थे और माँचू विरोधी भावनाओं का क्रान्तिकारी प्रवाह दृढ़तापूर्वक बढ़ता हुआ अत्यधिक शक्ति संचय कर रहा था। माँचू सरकार के सुधार के कारण जो नये नये स्कूल खोले गए थे तथा नई सेना तैयार की गई थी वे ही क्रान्तिकारी भावनाओं के प्रसार तथा गुप्त रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन करने के उपजाऊ क्षेत्र बने। इसका फल यह हुआ कि डा० सुन् यात्-सन् के नेतृत्व में चलने वाले क्रान्तिकारी कामों में चीनी जनता का विश्वास और भी दृढ़ हो गया। क्रान्तिकारी आन्दोलन को बढ़ाने में चीन के अन्दर वहाँ की गुप्त समितियों और दलों ने सहायता पहुँचाई और देश के बाहर इसे प्रवासी चीनियों का मुख्य रूप से समर्थन प्राप्त हुआ। इन भीतरी और बाहरी शक्तियों के पारस्परिक योग से क्रान्तिकारी आन्दोलन दुर्दमनीय हो गया। पर क्रान्तिकारी आन्दोलन के फैलने के साथ साथ माँचू सरकार ने और भी प्रतिक्रियावादी रुख अख्तियार किया और उनके दमन करने के तरीके और भी भयंकर होते गए। उसकी कुत्सित नीति इस कथन से मेल खाती है कि "मैं अपने घर के नौकरों को देने की अपेक्षा बाहर के अपने मित्र को देना पसन्द करूँगा।" इस नीति के कारण चीनी जनता समझ गई कि साम्राज्य-वादियों का दबाव और राजनीतिक निरंकुशता दोनों की साँठ-गाँठ हो गई है और यह माँग कि 'जनता का शासन हो तथा जनता द्वारा हो' दोनों ही अभिभाज्य हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रबल करने का उद्देश्य देश को शक्तिशाली बनाना था और माँचू शासन को उलटने का उद्देश्य चीन को उसके राष्ट्रीय अपमान से छुटकारा दिलाना था। राष्ट्रपिता द्वारा स्थापित थुङ् मङ् हुइ के सदस्यों ने कितनी ही बार क्रान्ति की सफलता के लिये असफल प्रयत्न किए और बहुत बड़ी संख्या ने अपनी बलि चढ़ा दी पर इससे क्राँतिकारियों की हिम्मत नहीं टूटी उल्टे उन्होंने प्रबल वेग से संघर्ष जारी ही रखा। तब से जनता ने क्राँति के उद्देश्य को और भी साफ साफ समझा और क्रान्ति की सफलता के लिये वह अधिक से अधिक संगठित हुई। १० अक्टूबर, सन् १६११ को जब वु छाङ् में क्रांति का झंडा उड़ा तो सम्पूर्ण देश उसके नीचे आ गया और तब मांचू सम्राट् ने बाध्य होकर गद्दी त्याग दी तथा चीन में प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना हुई। विदेशी आक्रमण और आंतरिक संघर्ष इन दोनों के कारण क्रांति से पहले के वर्षों में चीन में बहुत उथल-पुथल हुई

पर इतिहास से उसे एक शिक्षा मिली कि चीनी जनता अपने देश को तब तक नहीं मजबूत बना सकती और अपने राष्ट्रीय अपमान को तब तक नहीं धो सकती जब तक कि वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपनी शक्ति भर संघर्ष न करे। और यह लक्ष्य केवल राष्ट्रीय क्रान्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है जिससे जनता की इच्छा का एकीकरण और उसकी आकांक्षा की पूर्ति होगी। थाइ फिङ् क्रान्ति के बाद के ६३ वर्षों के इतिहास से यह स्पष्ट पता चलता है कि राष्ट्रीय क्रान्ति और राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् द्वारा प्रतिपादित 'जनता के तीन सिद्धान्त' ही एकमात्र सही रास्ते हैं, जिन पर चलकर चीनी जनता अपने राष्ट्र को पुनर्जीवित कर सकती है। सन् १९११ की क्रांति और आज का 'प्रतिरोध तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण' का हमारा दोहरा कार्यक्रम ये सभी उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए बढ़ाए हमारे कदम हैं। हमें न तो डिगना है और न पीछे लौटना है—हमें वीरतापूर्वक आगे बढ़ना है और जब तक हमारे अंतिम लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक हमें अपने संघर्ष को जारी रखना है।

२

सन् १९११ की क्रांति की सफलता और असफलता से मिलने वाली शिक्षाएँ

यद्यपि जनता क्रांति के पक्ष का दिल से समर्थन करती थी पर उसे क्रांति की आधारभूत विशेषताओं का स्पष्ट ज्ञान नहीं था। उसने यह तो समझ लिया था कि पश्चिमी ढङ्ग के राइफल, तोप, जहाज आदि बनाने की योग्यता प्राप्त करने से ही चीन मजबूत नहीं हो सकता। उसने यह भी समझ लिया कि अगर राजतंत्रात्मक निरंकुशता तथा सामंतवादी प्रान्तीयता बनी रही तो चीनी राष्ट्र सबल और आत्मविश्वासी नहीं बन सकता। राजतंत्रात्मक निरंकुशता समाप्त हो जाने और "पांच कुलों की प्रजासत्तात्मक सरकार" गठित हो जाने पर उसने बेसमझी से विश्वास कर लिया की क्रांति सफल हो गई और प्रजासत्तात्मक शासन का स्वप्न सत्य हो गया। वह तो पश्चिमी प्रजातंत्र के केवल बाहरी रूप की ही नकल करना जानती थी और वह इसीसे संतुष्ट थी कि केन्द्रीय सरकार की स्थापना हो गई है और उसमें अध्यक्ष, मंत्रिमंडल और पार्लियामेंट हैं। उसने यह कतई नहीं

समझा कि राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य असम संधियों के बंधन से छुटकारा पाना तथा विशेषकर उच्छृङ्खल स्वभाव और नैतिक शैथिल्य के साथ साथ असम संधियों के दूषित प्रभाव के कारण स्वदेशी शक्तियों पर भरोसा रखने तथा उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त करने का अनुचित मानसिक प्रवृत्ति से मुक्त होना है। लोग प्रजातंत्र के तत्त्व को नहीं समझ सके। वे तो इस बात से भी अनभिज्ञ थे कि राष्ट्रीय क्रांति का मुख्य उद्देश्य जनता की जीविका के सिद्धान्त को कार्यान्वित करना है। उन्होंने राजतंत्रात्मक निरंकुशता को तो मिटा डाला पर उसके दूषित प्रभाव से पैदा हुई आदतों को वे न छोड़ सके—गैर जिम्मेवारी, लोभ, आलस्य, ज्ञान प्राप्ति तथा व्यक्तिगत और सामाजिक कामों की व्यवस्था के प्रति उनकी छिछोरी प्रवृत्ति और व्यावहारिकता का ख्याल किये बिना ही अपने मत प्रतिपादन करने के तरीके उनमें बने ही रहे। इस प्रकार की मनोवृत्ति और आदतों के बने रहने से अगर पश्चिमी ढङ्ग के राइफल और तोप बनाने में बारूद की जगह कीचड़ और बालू का व्यवहार होता रहे या पार्लियामेंटरी प्रणाली को लागू करने में स्वेच्छापूर्वक अस्थायी विधान में संशोधन होता रहे और अपने मनोनुकूल चुनाव के लिये घूसबाजी चलती रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तक कि क्रांतिकारी दल के सदस्य भी बहुत करके इन गंदी आदतों से छुटकारा न पा सके थे तथा अपने ध्येय पर वे दृढ़ नहीं थे। एक बार के प्रतिरोध से ही उनका विश्वास डगमगाने लगता था और वे हतोत्साह हो जाते थे। वे कम से कम विरोध का पथ अनुसरण करते थे और उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं था कि उनके कार्य उनके कथन से सामंजस्य रखते हैं या नहीं। इसलिये यद्यपि प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना सन् १९१२ ई० में ही हुई पर उसके बाद के तेरह वर्षों तक जब तक कि क्वोमिन् ताङ् का पुनः संगठन नहीं किया गया, क्रान्तिकारी आन्दोलन को कठिनाइयों और असफलताओं से गुजरना पड़ा। इस बीच के समय पर जब मैं दृष्टि डालता हूँ तो मुझे बड़ी निराशा होती है। इन तेरह वर्षों की घटनाएँ दो कालों में विभक्त की जा सकती हैं।

प्रथम काल सन् १९११ की क्रांति से सन् १९१६ (चीनी प्रजा-सत्तात्मक संवत् ५) में हुई यूआन् श-खाइ के मृत्यु-समय तक का है। सन् १९११ ई० की क्रांति के समय राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् का उद्देश्य यह था कि तीन हजार वर्षों से चीन में चली आती हुई राजतंत्र प्रणाली को एकदम मिटा दिया जाय। प्रजासत्तात्मक राज स्थापित करने के संबंध में

उनका मत था कि केवल अध्यक्ष, पार्लियामेंट, अस्थायी विधान और मंत्रि-मंडल के बन जाने से ही सच्चा प्रजातंत्र लागू नहीं होता। इसलिये उन्होंने स्वेच्छा से यूआन् श खाइ के लिये अध्यक्षपद का त्याग कर दिया और इस बात की राय दी कि क्रांतिकारी दल शासन प्राप्त दल की तरह काम न करे बल्कि शिक्षा प्रचार और औद्योगिक उन्नति के कामों में अपनी शक्ति लगाए ताकि जनता के सोचने और रहने के तरीकों में सुधार हो और तब इसी के सहारे तीन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने की नींव डाली जाय। क्वोमिन्ताङ् के सदस्यों में बहुत थोड़े ही डा० सुन् यात्-सन् के इस विचार को समझ सके। अधिकांश तो विधान के शब्दों के साथ माथापच्ची करने में लग गए क्योंकि वे समझते थे कि अगर उत्तरदायी मंत्रिमंडल की प्रणाली लागू की गई तो वे यूआन् श-खाइ को अपने अध्यक्षपद का दुरुपयोग नहीं करने देंगे। उनका यह भी ख्याल था कि पार्लियामेंट को ठीक से चलाने के लिये जब तक उनका दल मजबूत है वे उत्तरदायी मंत्रिमंडल की सक्रिय सहायता कर सकेंगे और मंत्रिमंडल अध्यक्ष के अधिकार पर नियंत्रण रख सकेगा। उन्होंने ब्रिटेन और अमेरिका की राजनीति के बाहरी रूप की नकल कर सोचा कि पार्लियामेंट में दो बड़े बड़े प्रतिद्वंदी दलों के होने से ही उन्हें प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली का आदर्श प्राप्त हो जायगा। वे नहीं जानते थे कि एक समय वास्तव में दो बड़े दल संगठित हुए भी पर उनके होने से पार्लियामेंट का कार्य कुछ अच्छा चला हो सो बात नहीं। अगर राजनीतिक दलों के अधिकांश सदस्य अपने अधिकार के भीतर पार्लियामेंट में हर काम कानून के साथ करते तो भी उत्तरदायी मंत्रिमंडल का गठन नहीं कर पाते क्योंकि यूआन् श-खाइ जैसे अधिकार का दुरुपयोग करने में अभ्यस्त अध्यक्ष के विरोध में कृतकार्य होना संभव नहीं था। यूआन् श-खाइ को पार्लियामेंट का डर नहीं था, डर तो उसे था छाङ्, चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) कांठे और दक्षिणी प्रान्तों में फैले हुए क्रान्तिकारी दल के प्रभाव का। इसलिये सन् १६१३ (चीनी प्रजातंत्र संवत् २) में जब चिआङ् सि, नान् चिङ् अन् हुइ, कुआङ् तुङ् और फु चिएन् में दूसरी क्रान्ति असफल हो गई तो अध्यक्ष (चुङ् थुङ्) ने उसी पार्लियामेंट को भंग कर दिया जिस पार्लियामेंट ने उसे नियुक्त किया था और उसी मंत्रिमंडल के प्रधान मंत्री ने पार्लियामेंट भंग करने के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किया जो उस पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी समझा जाता था। जैसे ही पार्लियामेंट भंग हुई वह मंत्रिमंडल

जिसने भंग करने के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किया था, बरखास्त कर दिया गया उसके बाद से तथाकथित पार्लियामेंट, तथाकथित मंत्रिमंडल और यहाँ तक कि अस्थायी विधान भी यूआन् श-खाइ के हाथ की कठपुतली हो गए जिनका उपयोग वह स्वयं अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये करता था। पर हमारे राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने बहुत पहले ही यूआन् श-खाइ की महत्त्वाकांक्षा को भांप लिया था कि वह अस्थायी विधान को रद्द कर स्वयं सम्राट् बनना चाहता है। सुङ् चिआव् रन् की हत्या के बाद उन्होंने तुरत यह राय दी कि यूआन् श-खाइ को दंड देने के लिये सैनिक आक्रमण किया जाय। अभाग्यवश उस समय क्वोमिन्ताङ् के मुख्य-मुख्य सदस्यों में से बहुत कम ने राष्ट्रपिता डा० सन् यात्-सन् की इस नीति को समझा। वे हतोत्साह हो गए तथा उनमें संकल्प का अभाव हो गया तथा कुछ न कर निकम्मे बैठ उन्होंने यूआन् श-खाइ को विदेशी कर्ज प्राप्त कर युद्ध की तैयारी करने का अवसर दिया। इस प्रकार उन लोगों ने अपना ही विनाश करवाने के लिये यूआन् श-खाइ को अपनी योजना पूरी करने दी। इसका फल यह हुआ कि क्रांति बुरी तरह असफल हुई। सन् १९१४ (चीनी प्रजातंत्र संवत् २) में जब कि अधिकांश क्रांतिकारी साथी हताश हो गए थे राष्ट्रपिता डा० सुन् यात-सन् ने कठिन अनुशासन बद्ध "चुङ् हुआ क मिङ् ताङ्" (चीनी क्रान्तिकारी दल) का संगठन कर राष्ट्रीय क्रांति को सफल बनाने का दृढ़ संकल्प किया। जब यूआन् श-खाइ स्वयं हुङ् शिएन् नाम से सम्राट् बन बैठा तब सम्पूर्ण देश के लोगों ने तुरत यह अनुभव किया कि राष्ट्रपिता ने उस समय जो क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था वह उन्हें भड़काने के लिये नहीं था। दूसरे शब्दों में कहें तो ऐतिहासिक तथ्यों ने एक बार पुनः यह सत्य सिद्ध कर दिया कि चुङ् हुवा (चीन) राष्ट्र के पुनर्जीवन के लिये राष्ट्रीय क्रान्ति ही सब से पक्का रास्ता है और यही एकमात्र सही सिद्धान्त है।

यूआन् श-खाइ की मृत्यु के बाद चीन की आंतरिक स्थिति का दूसरा-काल प्रारम्भ होता है। सैन्यवादियों के बीच फैले हुए फूट के कारण देश के हर भाग में अराजकता और गृह युद्ध फैल गया। पइ याङ् गुट (उत्तरी सैन्यवादियों का गुट) का यह स्वप्न कि वह सैनिक शक्ति से चीन को संगठित करेगा, चरितार्थ न हो सका। स्वायत्त शासित प्रान्तों के संघ कायम करने का आंदोलन, जोकि देश के सामंतवादी विभाजन का

दूसरा रूप था, भी असफल रहा। सैन्यवादियों और राजनीतिज्ञों के पारस्परिक कश-मकश से तो चीन की राजनीतिक स्थिति सचमुच में "बंद अंधेरी गली के छोर तक पहुँच गई"। पर इसी अन्धकार और दुःखपूर्ण समय में राष्ट्रीय क्रान्ति के लिये आशा की एक झलक दिखाई पड़ी। इसी काल में प्रथम महायुद्ध (१६१४-१८) छिड़ गया और वह चार वर्षों तक चला तथा उसका प्रधान घटनास्थल यूरोप रहा। ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस और टर्की अपनी सारी शक्ति के साथ उस यूरोपीय युद्ध में जुझे रहे। वहाँ उन सबों की जनशक्ति, भौतिक साधन और आर्थिक शक्ति खतम हो गई। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने युद्ध में लगे हुए राष्ट्रों को कर्ज दिया और यूरोप में सामान भेजा अन्त में अपनी सेना भी भेज वह युद्ध में स्वयं शामिल हो गया। इससे चीनी लोगों के मन में बहुत बड़ी आशा और आत्मविश्वास का उदय हुआ उन्होंने सोचा कि अब चीन अपने को साम्राज्यवादी शोषण से मुक्त कर सकेगा तथा अपने पावों पर खड़ा होकर तथा अपने को शक्तिशाली बनाकर पूर्ण स्वतंत्र और स्वाधीन होगा। साथ साथ आर्थिक दृष्टि से चीन के उद्योग-धंधे एकाएक उन्नति कर गए; खासकर कपड़े के कारखानों ने तो बहुत ही उन्नति की। लोगों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति से उनमें आशा और आत्मविश्वास का उदय हुआ। सैन्यवादियों और राजनीतिज्ञों के कारण जिन्हें आधुनिक राजनीति या अर्थशास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं था और जो न जनता की मांग और न उनकी आकांक्षा की पूर्ति कर सकते थे, चीन को और भी बड़ा अपमान सहन करना पड़ा। जापानी साम्राज्यवादियों ने विश्वमत की न परवाह करते हुए पहले तो छिङ्_ताव् पर अधिकार जमाकर चीन की तटस्थता भंग की और यूआन् शृ-खाइ के सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा का लाभ उठा कर चीन के सामने तथाकथित "इक्कीस मांगें" पेश कीं। बाद में उसने पइ याङ् गुट को अपनी सैन्यवादी नीति चालू रखने के लिये राजनीतिक कर्ज दिया तथा तथाकथित "चीन-जापान सैनिक एकरारनामा" किया और अपने सैनिक चीन भेजे। यह राष्ट्रीय अपमान हम चीनी लोगों की आकांक्षाओं के सर्वथा विपरीत पड़ता था और हमारे आत्मविश्वास के लिये अपमानजनक धमकी था। इससे चीनी लोगों में क्रान्ति की प्रबल मांग उठी और उसकी अभिव्यक्ति हुई "४ मई के विद्यार्थी आन्दोलन" के रूप में। क्रान्ति के लिये जनता की प्रबल मांग के सामने सैन्यवादियों और राजनीतिज्ञों की राजनीतिक प्रणाली (शासन) के ठहरने की कतई आशा न

रही। विभिन्न कागजी विधानों के समर्थन में जो आन्दोलन हुए उनसे भी जनता आकृष्ट नहीं हुई। आन् हुनइ गुट के हाथों से शक्ति छीन ली गई पर च लि गुट और फङ् थिएन् (मुकदन) गुट भी जनता का समर्थन नहीं प्राप्त कर सके। च लि, सैनिक गुट के लोगों द्वारा चुनाव कार्य में घूसबाजी का काम तो उनके लिये स्वयं अपना कब्र खोदने के समान हुआ। जब स्थिति यहां तक पहुँच गई तो चुङ् क्वो क्वो मिन् ताङ् द्वारा राष्ट्रीय क्रान्ति करने को छोड़ जनता की आकांक्षा पूरी करने, उनकी मांग को प्रकट करने तथा उनके प्रयत्नों को संगठित करने का कोई दूसरा रास्ता नहीं रहा। जनता के तीन सिद्धान्त पर आधारित राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन स्वर्गीय वरदान के तुल्य था तथा सर्वसम्मत भी था। संसार की घटना के तरंगित प्रवाह के साथ आगे बढ़ता हुआ क्रान्तिकारी आन्दोलन सम्पूर्ण राष्ट्र को नीले आकाश में उज्ज्वल सूर्य वाले झंडे (क्वोमिन्ताङ् का झंडा) के नीचे संगठित कर सका तथा सम्पूर्ण चीनी जनता एकमत हो युद्ध अधिनायकों को उखाड़ फेंकने और असम संधियों को रद्द करने के लिये संघर्ष करने को उठ खड़ी हुई। इस प्रकार राष्ट्रीय पुनर्जीवन की नींव पड़ी और लोगों को स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता का साक्षात्कार हुआ।

इस काल में हुई असम संधियों में जापान की "इक्कीस मांगें" *सबसे अधिक घातक और घृणित थीं। इनसे तो यह पता चलता है कि चीन के प्रति जापान की आक्रमक साम्राज्यवादी नीति एक कदम आगे और बढ़ी है। यानी जापान की "चीन के विभाजन की नीति" अब "चीन पर अपनी एकाधिकार करने की नीति" के रूप में बदल गई।* इन मांगों की मुख्य मुख्य बातें यों हैं:—

प्रथम वर्गः—शानतुङ् संबंधी मांगें—

प्रथम वर्ग में चार धाराएँ थीं। इनके अनुसार पइ चिङ् (पिकिङ्) सरकार शानतुङ् प्रान्त स्थित जर्मनी के सभी विशेष अधिकार जापान को दे दें। ये विशेष अधिकार थे चिआव् चउ वान् तथा चिआव् चउ-चि निङ् रेलवे संबंधी अधिकार तथा रेल के किनारे किनारे खान खोदने का अधिकार। शानतुङ् प्रान्त तथा उसके समुद्र तट के जितने भूभाग तथा द्वीप हैं "किसी दूसरी

शक्ति को न तो सौंपे जाएँ और न पट्टे पर दिए जाएँ।" यह भी मांग की गई कि जापान को यन् थाइ या लुङ्खउ से चिआव् चउ-नि निङ् रेलवे तक रेल लाइन बिछाने का अधिकार हो और शान्-तुङ् के सभी प्रसिद्ध नगर व्यापारिक बंदरगाह की तरह खोल दिए जाएँ। संक्षेप में, जापान की यह मांग रही कि सम्पूर्ण शान्तुङ् प्रान्त उसका "प्रभाव क्षेत्र" माना जाय।

दूसरा वर्गः—तीन पूर्वी प्रान्तों (मंचूरिया) के दक्षिणी भाग और भीतरी मंगोलिया के पूर्वी भाग संबंधी मांगें—

दूसरे भाग में सात धाराएँ थीं। इनकी मुख्य बातें यों थीं :—लू शुन् (पोर्ट अर्थर) और ता लिएन् (डाइरन) के पट्टे तथा दक्षिणी मंचूरिया और आन् तुङ् फङ् थिएन् इन दोनों रेलवे के संबंध के पट्टे की अवधि और ९९ वर्ष बढ़ा दी जाए। "दक्षिणी मंचूरिया" और "पूर्वी मंगोलिया" में जापानी नागरिकों को जमीन रखने या पट्टे पर लेने, बसने, यात्रा करने और वाणिज्य-व्यापार चलाने का अधिकार हो तथा इन दोनों क्षेत्रों में जापानी लोग राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक परामर्शदाता तथा शिक्षक के रूप में नियुक्त किए जाएँ। चि लिन् (किरिन्)—छाङ् छुन् रेलवे की व्यवस्था तथा नियंत्रण का अधिकार जापान को रहे और दोनों क्षेत्रों (दक्षिणी मंचूरिया और पूर्वी मंगोलिया) में किसी दूसरी शक्ति को रेल बिछाने या आर्थिक पूँजी लगाने की आज्ञा न मिले। संक्षेप में जापान ने यह चाहा कि तीन पूर्वी प्रान्तों (मंचूरिया) का दक्षिणी भाग और भीतरी मंगोलिया का पूर्वी भाग उसका "प्रभाव-क्षेत्र" मान लिया जाय।

तीसरा वर्ग—'हान् ये फिङ्' कंपनी संबंधी मांगें—

तीसरे वर्ग में दो धाराएँ थीं। इनके द्वारा यह

मांग की गई थी कि हान् ये फिङ् कंपनी को चीन और जापान "संयुक्त रूप से चलाएँ" और हान् ये फिङ् कंपनी के अधिकार में जो जो खानें हैं उनके अड़ोस-पड़ोस की सभी खानों के खोदने का एकमात्र अधिकार जापान को हो।

चौथा और पांचवां वर्ग—सम्पूर्ण चीन से संबंध रखने वाली मांगें—

चौथे वर्ग में एक धारा थी। इसके द्वारा यह मांग की गई थी कि चीन अपने समुद्र तट के बन्दरगाह, खाड़ी और द्वीप किसी दूसरे देश को न दे। पांचवे वर्ग में सात धाराएँ थीं, जिनके द्वारा यह मांग की गई थी कि चीन जापान के लोगों को अपना राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक परामर्शदाता के रूप में नियुक्त करे, चीन के भीतरी भाग में जापान के लोगों को जमीन रखने का अधिकार हो, चीन के पुलिस विभाग को नियंत्रण चीन और जापान द्वारा संयुक्त रूप से किया जाय, जापान को चीन के लिये अस्त्र-शस्त्र की पूर्ति करने का अधिकार मिले तथा चीन के अस्त्रागार की व्यवस्था चीन और जापान मिलकर करें, जापान को वु छाङ् से चिउ चिआङ् और नान् छाङ् तक, नान् छाङ् से हाङ् चउ तक और नान् छाङ् से छाव् चउ तक रेल बिछाने का अधिकार हो, सम्पूर्ण फु चिएन् प्रान्त को जापान का 'प्रभाव क्षेत्र' करार दिया जाय और जापान के लोगों को चीन में धर्म प्रचार का अधिकार रहे। संक्षेप में, जापान ने सम्पूर्ण चीन पर अपना एकाधिकार स्थापित कर उसे अपना आश्रित या अधीनस्थ राज के रूप में रखना चाहा।

"इक्कीस मांगों" के पेश किए जाने पर चीनी जनता क्रोध से जल-भुन उठी और सारा संसार चकित हो गया। विदेशी शक्तियों के साथ समय समय पर चीन ने जो संधियाँ की थीं उनसे बहुत पहले ही चीन की

राजनीतिक एकता, उसके कानून, सैनिक कार्यकलाप, पुलिस व्यवस्था, करबंदी, यातायात की व्यवस्था, खान खोदने के उद्योग-धंधे, नमक संबंधी शासन-व्यवस्था, धर्म, शिक्षा वास्तव में उसकी संस्कृति, राष्ट्रीय सुरक्षा, और अर्थ-व्यवस्था संबंधी प्रत्येक चीज जो चीनी राज के अस्तित्व के लिये आवश्यक थी, सब दृष्टियों से खंडित हुई थी। पर "इक्कीस मांगें" तो एक कदम और आगे बढ़ीं, जिनका उद्देश्य तो यह था कि विभिन्न शक्तियों को अलग अलग जो जो विशेष अधिकार प्राप्त थे वे सब जापानी साम्राज्यवादियों के हाथों में उनके एकाधिकार के रूप में सौंप दिए जाएँ। इसलिये मैंने हमेशा कहा है कि "इक्कीस मांगों" का परिमाण तो विभिन्न प्रकार की सभी असम संधियों का बृहत पैमाने पर योगफल था। राष्ट्रपिता ने कहा है "राजनीतिक शक्ति का दबाव तो आसानी से देखा जाता है पर आर्थिक दबाव का अनुभव आसानी से नहीं होता।" हम लोग भी कह सकते हैं कि विदेशी शक्तियों ने मांचू और पइ चिङ् सरकार से एक-एक करके जो असम संधियां को उनकी भिन्न भिन्न बातों के परिणाम को साधारणतः चीनी जनता आसानी से अनुभव न कर सकी। पर "इक्कीस मांगों" की स्पष्ट और व्यापक शर्तें आसानी से उसकी समझ में आ गईं। चूंकि इन शर्तों का दबाव देखने में आता था अतः जनता में बड़ा ही रोष फैला और सम्पूर्ण देश ने सम्मिलित रूप से इसका विरोध किया। इस कारण जापानी साम्राज्यवादी अपनी महत्वाकांक्षा पूरी न कर सके। पर मांचू और पइ चिङ् सरकार ने दूसरे राजों को पहले एक-एक कर जो रियायतें दी थीं उनसे चीनी राज तथा चीनी नागरिकों पर होने वाले घातक परिणाम को चीन की जनता नहीं समझ सकी थी। पर वे तो चीनी राष्ट्र की स्वतंत्रता और अस्तित्व के लिये बड़ी ही घातक थीं। इसी कारण क्वोमिन्ताङ् द्वारा परिचालित और "जनता के तीन सिद्धान्त" पर आधारित राष्ट्रीय क्रान्ति एक तरफ जहां जापानी आक्रमणकारियों के चीन पर एकाधिकार करने के आक्रमण के विरुद्ध जीवन-मरण के संघर्ष में लगी हुई है, दूसरी तरफ वह उसी तरह असम संधियों को एकदम से रद्द कराने के निमित्त संकल्प और उत्साह से अपने प्रयत्न को जारी रखे हुए है।

तीसरा अध्याय

असम संधियों का व्यापक परिणाम

१

असम सन्धियों का राजनीति और कानून पर प्रभाव

देश को जो कष्ट और कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं तथा जनता को जो अत्यन्त दुःख भोगना पड़ा उन्हीं के कारण हमारी राष्ट्रीय क्रान्ति की मांग हुई अगर यह राष्ट्रीय क्रान्ति असफल हो जाती तो हमारी कठिनाइयाँ और भी बढ़ जातीं। चीन सन् १६११ की क्रान्ति के दौरान में अपने यहाँ हुए विध्वंस को निर्माण में नहीं बदल सका। प्रथम महायुद्ध के बीच वह न तो असम संधियों के बंधन को तोड़ सका और न स्वतंत्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीय समानता ही प्राप्त कर सका। प्रथम महायुद्ध के बाद सन् १६२१ (चीनी प्रजातंत्र संवत् १०) के वाशिंगटन सम्मेलन में जब पइ चिङ् (पिकिङ्) सरकार को प्रशान्त क्षेत्र के अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के पुनर्व्यवस्थापन के बारे में सक्रिय संघर्ष का एक सुयोग मिला तो वह उसका एकदम लाभ न उठा सकी। यद्यपि वहाँ जो "नौ राष्ट्रों की संधि" हुई उसके द्वारा चीन में "सर्व प्रवेश नीति" तथा चीन की भूमिगत एकता के सिद्धान्त को तो मान लिया गया पर असम संधियों से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं जैसे रियायती क्षेत्रों को लौटा देने, बहिर्देशीय अधिकारों को रद्द कर देने तथा चीन स्थित विदेशी सैनिकों को हटा लेने का या तो विरोध हुआ या उन पर विचार करना स्थगित कर दिया गया। विशेष कर चीन और जापान के बीच बहुत दिनों से चले आने वाले "शान् तुङ् प्रश्न" का एक के बाद दूसरी अनेक कठिनाइयों के बाद निपटारा तो हुआ पर वह बुनियादी तौर से नहीं हुआ। पर सर्व प्रवेश नीति और भूमिगत एकता के सिद्धान्त के मान लेने से चीनी जनता की मनोवृत्ति पुनः ढीलीढाली हो गई। उसने यह समझ लिया कि अब चीन पर विदेशी लोग अधिकार नहीं जमाएंगे, अतः विदेशियों पर निर्भर रहने की पुरानी आत्मतुष्टि वाली मनोवृत्ति उसमें (चीनी जनता) पुनः आ गई।

थिएन् चिङ् की संधि के बाद निरंकुश मांचू सरकार और साम्राज्य-

वादी विदेशी शक्तियों के बीच का संबन्ध एक दूसरे के विरोध करने से बदल कर मिलकर षड्यन्त्र करने का हो गया। यह एकदम स्पष्ट है कि सन् १६-११ की क्रान्ति के बाद भूमिगत प्रभुत्व के लोभी युद्ध अधिनायकों का विदेशी साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर षड्यंत्र करने की चाल एक पग और आगे बढ़ी। यूआन् श-खाइ द्वारा चीन में पुनः राजतंत्र स्थापित करने और जापान द्वारा चीन के सम्मुख "इक्कीस मांगें" प्रस्तुत करने इन दोनों के बीच मूलतः कोई आन्तरिक समझौता अवश्य था और इस बात को तो हम सभी जानते हैं कि ओकुमा शिगेनोबा के वक्तव्य से (चीन में राजतंत्र स्थापना के संबन्ध में दिया गया वक्तव्य), यूआन् श-खाइ की महत्वाकांक्षा को बड़ा ही प्रोत्साहन मिला था।

विदेशी साम्राज्यवादी युद्ध अधिनायकों को धमकी दे या घूस देकर विशेष अधिकार पाने के लिये उनके साथ तिकड़म ही नहीं रचते रहते थे बल्कि वे चीन के मामलों को खास कर उसके सरहदी प्रश्नों के संबंध में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करते थे। जारकालीन रूस के प्रभुत्व में फँसे बाहरी मंगोलिया ने सन् १६११ ई० में अपने को (चीन से) स्वतंत्र घोषित किया और इस प्रकार उसकी गृहनीति और वैदेशिक नीति का नियंत्रण रूसी लोगों के हाथों में चला गया। रूसी क्रांति (सोवियत क्रांति) के बाद मंगोलिया ने अपनी स्वतंत्र सत्ता छोड़ दी और वह पुनः चीन में मिल जाने को हुआ। ठीक उसी समय जापान ने मंगोलिया को हड़पने के लिये तथाकथित "चीन-जापान सैनिक एकरारनामा" का लाभ उठा मंगोल लुटेरों और श्वेत रूसियों को उकसाया। ठीक इसी प्रकार तिब्बत की समस्यायें भी विदेशी प्रभुत्व में आईं। सन् १६१२ (चीनी प्रजातंत्र संवत् १) में मैंने चून् शङ् चा-च (सैनिक आवाज) नामक पत्रिका में साफ साफ लिखा था कि "तिब्बत और मंगोलिया पर विजय करने और वहाँ शांति स्थापित करने के लिये तात्कालिक परिस्थिति की सरलता या जटिलता, भौगोलिक स्थिति की सुविधाओं या असुविधाओं और निश्चित सैन्य-कौशल पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। हम लोगों को ग्रेटब्रिटेन तथा रूस की वर्तमान परिस्थितियों पर तथा उनके तिब्बत और मंगोलिया के साथ के संबंध पर सावधानी से विचार कर तदनुसार निर्णय करना होगा।..................जब ग्रेटब्रिटेन और रूस ने इन क्षेत्रों में दखल दिया तो यद्यपि हममें सशस्त्र विरोध की क्षमता उस समय नहीं थी पर सिद्धान्त के नाम पर प्रबल आन्दोलन करना चाहिए था

तथा अपनी सार्वभौमिकता की पुनः स्थापना की मांग करनी चाहिए थी।... पर इस तरह नहीं कर हमारी सरकार उल्टे उनके दवाव को सहती रही और स्वेच्छापूर्वक उन क्षेत्रों से पीछे हटती गई। इससे वढ़ कर हमारे स्वत्व का और क्या अपहरण हो सकता था तथा इससे वढ़ कर हमारे देश का क्या अपमान था।" ये शब्द उस काल के चीन के सीमाप्रान्त की पेचीदा समस्याओं को साफ साफ बताते हैं।

पर क्या देश की आन्तरिक स्थिति भी इसी तरह की नहीं थी? सन् १८९८ के अवैध शासन परिवर्त्तन के बाद विधवा राजमाता छु शि को बराबर यह भय बना रहता था कि कहीं चीन स्थित विदेशी कूटनीतिज्ञ हस्तक्षेप करके सम्राट कुआङ् शू को पदच्युत न कर दें और इसी डर से "*बॉक्सर विद्रोह*"[१] की आग भड़काई गई थी। जब यूआन् श-खाइ अपने को सम्राट् घोषित करने की चेष्टा में था तो उस समय जापान भीतर ही भीतर उसे प्रोत्साहन देता रहा; पर प्रत्यक्ष में वह उसे सम्राट् नहीं होने देने की धमकी देता तथा उसकी भर्त्सना करता। आप देखते हैं कि साम्राज्यवादियों के तिकड़म तथा जाल कैसे भयानक तथा कुत्सित होते हैं! यद्यपि उस समय चीनी जनता ने छु शि की मूर्खता और यूआन् श-खाइ के षड्यंत्र की भर्त्सना की पर चीन में विदेशियों के हस्तक्षेप से अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में बुरा उदाहरण उपस्थित हुआ। पइ चिङ् का राजदूतावास क्षेत्र, उत्तर-पूर्व (मंचूरिया) का रेलवे क्षेत्र, थिएन् चिङ् और शंघाइ के रियायती क्षेत्र तो वास्तव में ऐसे अड्डे थे जहाँ से विदेशी लोग चीन के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते थे और वहाना यह था कि वे विदेशी नागरिकों और विदेशी व्यापार की रक्षा करते हैं। स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप करने का सबसे कुत्सित उदाहरण है सन् १९२५ (चीनी प्रजातंत्र संवत् १४) की कुओ सुङ् लिङ् घटना, जब जापानी साम्राज्यवादियों ने दक्षिण मंचूरिया के रेलवे-क्षेत्र से अपनी सेना भेजकर कुओ सुङ् लिङ् की सेना का रास्ता रोक दिया। यह घटना जापानी युद्ध अधिनायकों का उत्तर-पूर्व क्षेत्र (मंचूरिया) में अपना

(१) बॉक्सर विद्रोह चीन से सब प्रकार के पश्चिमी प्रभावों को हटा देने का जन-विद्रोह था जिसे मांचू अधिकारियों और मांचू राजवंश की विधवा राजमाता छु-शि का नेतृत्व प्राप्त था। जिस संस्था द्वारा यह विद्रोह किया गया था चीनी भाषा में उसका नाम था—"सार्वजनिक शांति रक्षा के लिये घूँसे का प्रयोग।" अतः अंग्रेजी में वह "बॉक्सर" कहलाने लगा।

नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ना था।

प्रजासत्तात्मक राज स्थापित होने के बाद युद्ध अधिनायकों के बीच जो उलझा हुआ युद्ध छिड़ा हुआ था उसका एक प्रधान कारण यह था कि विदेशी साम्राज्यवादी चीन के हर भाग में गुप्त कामों में लगे हुए थे। वहिर्देशीय अधिकार के कारण विदेशी खुफियां तथा उनके गुप्त काम करने वाले आदमियों को आवश्यक संरक्षण मिल जाता था। विदेशियों को चीन में जो विशेष क्षेत्र जैसे रियायती क्षेत्र, पट्टे पर दिए गए भू भाग और रेलवे क्षेत्र, प्राप्त थे तथा चीन के रेल तथा जल मार्ग में उन्हें जो विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं, वे ही उपयुक्त स्थान थे जहां अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किए जाते और लुटेरों के हाथों बेचे जाते थे। इस प्रकार आन्तरिक संघर्ष को अधिक दिनों तक जारी रखने का अवसर दिया जाता था। हम लोगों को अभी भी याद है कि पइ चिङ् सरकार के शासन काल में पइ फिङ् राजदूतावास क्षेत्र, पइ फिङ्—मुकदन रेल लाइन के ऊपर चलने वाली अन्तर्राष्ट्रीय डाकगाड़ी तथा थिएन् चिङ् के रियायती क्षेत्र तिकड़मों के केन्द्र थे, जहां युद्ध अधिनायकों तथा राजनीतिज्ञों के राजनीतिक घात-प्रतिघात चलते थे। इन केन्द्रों में ही उनकी सफलता या असफलता का निर्णय होता था और यहाँ ही वे अधिकारारूढ या पदच्युत होते थे। ता लिएन् (डाइरन) में रहने वाले मंगोल और मांचू राजकुमार तथा अधिकारी और थिएन् चिङ् तथा शंघाइ में रहने वाले पराजित युद्ध अधिनायक और नौकरशाह सबके सब विदेशियों के सामने शिर झुकाते थे और उनके पिट्ठू हो गए थे। वे साम्राज्यवाद के साधन बन गए थे तथा उन्हें इसके लिये जरा भी लाज न थी। सबसे दिल दुखाने वाली बात तो यह थी कि जो भूभाग स्पष्टरूप से चीन का था उस पर भी न तो चीन का कानून लागू हो सकता था और न चीनी सेना उस ओर होकर आ जा सकती थी। मैं आपसे पूछता हूँ जब तक ऐसी असम संधियाँ बनी हुई हैं कैसे चीन की राजनीति सही रास्ते पर जा सकती है? कैसे चीन की अर्थ-व्यवस्था ठोस हो सकती है?

असम संधियों से केवल इतनी ही हानि नहीं हुई बल्कि उनसे तो हमारे चीन की राष्ट्रीय सुरक्षा का और भी विनाश हुआ। कुआङ् शू शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में लि हुङ् चाङ् ने एक तरफ तो समुद्र तट की सुरक्षा के निर्माण में हाथ लगाया तथा एक नौ सेना को तैयार किया तथा दूसरी तरफ कितने ही नाके के बन्दरगाहों की किलेबंदी की। सन् १८९४ के

चीन-जापान युद्ध में चीनी नौ सेना के उत्तरी बेड़े को हार खानी पड़ी। सन् १६०१ की शांति-संधि में "समुद्र से राजधानी (पइ चिङ्) तक के यातायात में वाधा न हो इसके लिये ता कु तथा दूसरे किलों को एकदम से मिट्टी में मिला देने की शर्त्त ठीक हुई।" इस प्रकार राजधानी की सुरक्षा वस्तुतः खतम हो गई और चीन राष्ट्रीय आत्मरक्षा के अधिकार से एकदम रहित हो गया।

चीन और ग्रेटब्रिटेन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, फ्रांस तथा रूस के बीच हुई थिएन् चिङ् की संधि के अनुसार विदेशी जहाज चीन के किसी भी बन्दरगाह में प्रवेश कर सकते थे और किसी भी संधि से खोले गए बन्दरगाह में लंगर डाल सकते थे। अपने को "चीन का परम हितू" राज कह कर दूसरे राजों ने भी यही सुविधा प्राप्त कर ली। इस प्रकार चीन के अधिकृत समुद्र तथा उसकी नदियों में कोई भी विदेशी जंगी जहाज चल सकता था और लंगर डाल सकता था। इससे चीन की स्थिति तथा कथित "दरवाजा खुले घर" की तरह हो गई जहाँ विदेशी शक्तियाँ मनमाना कर सकती थीं। वे बन्दरगाह जहाँ विदेशी लोग जम गए थे साधारणतः आर्थिक दृष्टि से अधिक विकसित नगर थे या राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र थे। जब किसी मामले पर समझौते की बात आती तो अपनी मांग को मनवाने के लिये विदेशी अपनी नौ सेना के मशीनगनों पर चढ़े खोल को हटा लेते, चीनी अफसरों और सौदागरों को धमकाते तथा चीन की सरकार और स्थानीय अफसरों को तंग करते। इस "पोताशस्त्र नीति" के दबाव में पड़कर चीन वही देता जो विदेशी लोग उससे माँगते।

चीन में दो प्रकार के विदेशी सैनिक रहते थे—कुछ तो संधि के अनुसार थे और कुछ बिना संधि के ही। राजदूतावास क्षेत्रों तथा पइ फिङ्-मुकदन रेल लाइन के किनारे किनारे जो सैनिक रहते थे वे संधि से रखे गए सैनिकों की कोटि में आते थे और वे सन् १६०१ की शांति संधि के अनुसार रखे गए थे। अन्य सभी विदेशी सैनिक बिना किसी संधि या समझौते के ही चीन में थे। जैसे चीनी पूर्वी रेलवे के किनारे-किनारे रहने वाले रूसी सैनिकों और दक्षिण मंचूरिया रेलवे के किनारे किनारे रहनेवाले जापानी सैनिकों के रहने की बात तो किसी भी संधि में थी ही नहीं। यहाँ तक कि जिसका "रेलवे क्षेत्र" नाम पड़ा उसकी तो वस्तु सत्ता संधि की गलत व्याख्या के कारण हो गई। रियायती क्षेत्रों में विदेशी सैनिक रखने

की शर्त तो किसी भी संधि में नहीं थी, पर वहाँ वास्तव में विदेशी सैनिक रखे जाने लगे और वही चलन हो गया।

किसी भी संधि में यह स्पष्ट नहीं था कि चीन स्थित विदेशी राजदूत अपनी पुलिस रख सकते हैं और रियायती क्षेत्रों में पुलिस रखी जा सकती है। हर देश के राजदूत (कौंसल) ने इस बहाने से अपनी अपनी पुलिस रख ली कि वहिर्देशीय अधिकार के अनुसार उन्हें अपने आदेशों को लागू कराने के लिये अवश्य ही अपनी पुलिस चाहिए और शंघाइ रियायती क्षेत्र के "संयुक्त अदालत" की पुलिस के अलावे "सार्वजनिक कार्य विभाग" के "पहरे की चौकी" भी होनी चाहिए।

इस तरह विदेशी सैनिकों और पुलिस के रहने का अर्थ यह था कि "कूटनीतिज्ञ क्षेत्र" और "रियायती क्षेत्र" चीन में "एक राज के भीतर दूसरे राज थे।" चीनी राज के भीतर बहुत से राज तथा राजनीतिक अधिकारी हो गए और साथ साथ विदेशी सैनिकों और पुलिस का कार्य केवल इन विशेष क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा। कौंसलों की अदालतों के निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये जितने सैनिकों की आवश्यकता थी तथा उन्हें जो जो कार्य करना चाहिए था उससे कहीं अधिक संख्या में वे थे तथा अपने निश्चित कार्य के अलावे और भी कितने कामों में दखल देते थे। उत्तर-पूर्व (मंचूरिया) स्थित जापानी सैनिक और पुलिस तो वास्तव में स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित थीं। सन् १६१६ में (प्रजातंत्र संवत् ५) चङ् चिआ थुन् की घटना, सन् १६१६ में छाङ् छुन् और फु चउ की घटनायें तथा सन् १६२० ई० में युङ् छुन् की घटना सभी इसलिये हुईं कि चीन स्थित जापानी सैनिक और पुलिस बौरा गए और बुरी तरह उन्होंने चीनी नागरिकों की खून-खराबी की तथा चीनी सैनिकों पर धावा किया। ये हैं जापानी सैनिकों के निरंकुश व्यवहार के जीते-जागते उदाहरण। इनके अलावे ऐसी अनगिनत घटनाओं की चर्चा की जा सकती है जिनमें रियायती क्षेत्रों में रहने वाली पुलिस और विदेशी सैनिकों ने चीनी सैनिकों पर चोट की और चीनी नागरिकों को मौत के घाट उतारा। उदाहरण के लिये सन् १६१५ के लाव् सि खाइ की घटना, सन् १६२५ (प्रजातंत्र संवत् १४) में शंघाइ अन्तर्राष्ट्रीय निवास क्षेत्र की ३० मई की घटना और सन् १६२५ के हान् खउ रियायती क्षेत्र और कुआङ् चउ (केन्टन्) के शा-चि की दुःखद घटनायें ऐसी घटनायें हैं जिन्हें हम अच्छी तरह जानते हैं और

दुःख से याद करते हैं।

चीन के भूभाग पर साम्राज्यवादियों की पुलिस और सैनिक चीनी पुलिस और सैनिकों, व्यापारियों तथा नागरिकों पर निरंकुशतापूर्वक गोली दाग सकते थे और चीनी पुलिस तथा सैनिक इसके बदले हाथ उठाए, टकटकी बांधे खड़े रहते थे। अगर चीनी सैनिक और पुलिस कुछ भी आगे बढ़ती तो साम्राज्यवादी तुरत चीन को युद्ध की धमकी देते। उनकी सेना तैयार होने लगती और नौसेना के इंजिन में कोयला झोंका जाने लगता। उनके कूटनीतिज्ञ कड़ी कड़ी चिट्ठियाँ भेजने का तांता बाँध देते—यहाँ तक कि चुनौती तक दे देते थे। चीन की सरकार तथा जनता तो विदेशियों से भय खाने की आदी हो गई थीं तथा दगाबाज अफ़सर और मूर्ख लोग ऐसे अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकते थे। धनी लोग अपनी सम्पत्ति रियायती क्षेत्रों में हटा ले गए तथा वहाँ विदेशी सैनिक तथा पुलिस की छत्रछाया में अपने को सुरक्षित मानने लगे। चीनी बैंकों, खजानों, लोभी अफसरों तथा धनी सौदागरों के लिये यह पक्का रिवाज हो गया कि वे अपने जीवन तथा सम्पत्ति के लिये रियायती क्षेत्रों को आश्रय स्थान मानने लगे। इस तरह मुट्ठी भर विदेशी पुलिस और सैनिक जो मूलतः साम्राज्यवादी प्रभुत्व के प्रतीक मात्र थे बहुत ही शक्तिशाली हो गए और उन्होंने चीन के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का गला धर दबाया। जिसके फलस्वरूप देश की दुर्दशा यहाँ तक हुई कि साम्राज्यवादियों द्वारा धमकाए जाने पर चीनी सैनिकों और अफसरों में केवल बदला लेने के साहस का अभाव ही नहीं हो गया बल्कि उनके दिल से बदला लेने का ख्याल भी चला गया। चीनी राष्ट्र के भाग्य की यह दयनीय दुर्दशा हुई। असम संधियों के दबाव के कारण चीनी सैनिकों की भावना इस तरह कुचल गई कि उनके दिल से राष्ट्रीय भावना एकदम मिट गई।

चीन ने जब अपने सभी क्षेत्रगत अधिकार को लौटा देने की माँग की तो विदेशी शक्तियों ने इस बहाने से या तो इसका विरोध किया या इसे स्थगित रखने की कोशिश की कि चीन की न्याय प्रणाली और जेल की व्यवस्था असंतोषजनक हैं। पर असल बात तो यह है कि गत सौ वर्षों से विदेशी रियायती क्षेत्रों में चीन ने अपना न्याय संबन्धी अधिकार नहीं बरता है इसलिये वे बदमाशों के अड्डे बन गए हैं, जिनसे चीन के अपने कानून का गौरव और मान मिट गए हैं, तथा चीनी जनता की कानून के अनुसार

चलने की आदतें बिगड़ गई हैं। जहाँ तक मानवीय जीवन और कानून की उपेक्षा तथा मुकदमों के फैसला करने के खिलवाड़ से संबन्ध है रियायती क्षेत्रों की अदालतों तथा जेलों की चीन की अदालतों तथा जेलों से तुलना की जाएँ तो उनकी बुराइयों की गिनती नहीं की जा सकती। खास कर रियायती क्षेत्र की पुलिस चीनी नागरिकों के साथ जिस प्रकार का अन्याय तथा गैरकानूनी बरताव करती थी उसका वर्णन करना बहुत ही पीड़ाजनक है। किसी चीनी नागरिक के गिरफ्तार कर लिए जाने पर अगर उस पर खुली अदालत में भी मुकदमा चलता तो भी उसके लिये निष्पक्ष निर्णय प्राप्त करना कठिन था। अमीर लोग लंबी लंबी जमानत पर छूट जाते थे और न्याय का गला घोंटते थे; पर गरीब लोगों को सजा मिलती थी और उन्हें बुरा बरताव सहना पड़ता था और उन्हें अपने को निर्दोष सिद्ध करने का कोई अवसर भी नहीं मिलता था। न्याय संबंधी सुधार के पहले भी चीन की प्राचीन न्याय प्रणाली तथा जेल व्यवस्था में इस प्रकार की काली करतूतें नहीं होती थीं। जिन मुकदमों में विदेशी नागरिक उलझे होते थे उनकी जांच-पड़ताल का अधिकार तो चीनी अफसरों को था ही नहीं; यहाँ तक कि रियायती क्षेत्रों के थानों की खराब तथा अँधेरी कोठरी में चीनी नागरिकों को जो कष्ट और अत्याचार सहना पड़ता था उसकी भी पूछ-ताछ वे नहीं कर सकते थे। कोई ऐसा साधन भी नहीं था जिनके द्वारा ऐसे चीनी नागरिक चीन के कानून के संरक्षण में लाए जाते। इससे यह स्पष्ट है कि चीन के कानून की व्यवस्था के ऊपर असम संधियों का परिणाम ऐसा पड़ा कि उससे केवल चीनी जनता के गुणों का ही सत्यानाश नहीं हुआ तथा उनके मानवीय अधिकारों का ही उल्लंघन नहीं हुआ बल्कि न्याय और मानवता के विश्वजनीन नियम भी तोड़े गए। इसलिये असम संधियों को रद्द करने के आन्दोलन की दो आधारभूत बातें हो गई थीं—चीन के क्षेत्रगत अधिकार को पुनः प्राप्त करने की माँग और चुङ्गी संबंधी स्वतंत्रता प्राप्ति की माँग। ये दो बातें चीनी जनता की सर्वसम्मत माँग का प्रतिनिधित्व करती थीं और चीन की राष्ट्रीय क्रान्ति के सर्व प्रमुख उद्देश्यों में से थीं।

२

असम संधियों का आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव

विदेशी रियायती क्षेत्रों और सैनिक निवास क्षेत्रों के कारण ही असम संधियों का प्रभाव चीन की अर्थ व्यवस्था पर पड़ा। चुङ्गी संबंधी एकरार-

नामा और वहिर्देशीय अधिकार ही विदेशी आर्थिक आक्रमण के दो पंख कहे जा सकते हैं। देश के भीतर नदियों में जहाज चलाना, समुद्र किनारे-किनारे व्यापार करना, "संधि से खोले गए बन्दरगाहों" में कल-कारखाने स्थापित करना, रेल बिछाना, खान खोदना तथा बैंक नोट जारी करना—ये सभी उनके आर्थिक आक्रमण के प्रभाव को बढ़ाने वाले थे और इनसे चीन की अर्थ-व्यवस्था को बड़ी हानि पहुँची। हालत यहाँ तक आ पहुँची कि चीनी जनता के आर्थिक विकास में अव्यवस्था आ गई।

राष्ट्रपिता ने हम लोगों को बताया है कि "आर्थिक दबाव राजनीतिक दबाव से कहीं भयंकर होता है।" राष्ट्रपिता ने ही पहले पहल बताया कि सामुद्रिक चुङ्गी विदेशियों के नियंत्रण में होने से तथा विदेशी शक्तियों से एकरारनामा करके चुङ्गी-आय निर्धारित कर देने से चीन को कितनी हानि उठानी पड़ी है। सन् १६०१ की शांति संधि में चीन द्वारा विदेशी शक्तियों को हरजाने की रकम देने की शर्त थी इसलिये चीन की सामुद्रिक चुङ्गी की आय उन्हें बंधक रूप में दे दी गई। चुङ्गी की व्यवस्था विदेशियों के हाथों में चली गई और तथाकथित "चुङ्गी की अतिरिक्त रकम" जो हरजाना चुका कर बच रहती थी वह भी विदेशियों के पूर्ण नियंत्रण में रही। फिर, विदेशी शक्तियों के साथ हुए एकरारनामों में आयात पर लगने वाली चुङ्गी की दर कम निश्चित की गई थी और इस कारण चीन के उत्पादक उद्योग-धंधों को अपने अस्तित्व रक्षा तथा विकास के लिये महसूल संबंधी संरक्षण नहीं मिला। इसके फलस्वरूप हमारे बाजार विदेशी माल से पट गए और देशी माल का वितरण न हो सका। तब हमारी परम्परागत दस्तकारी के उद्योग-धंधों का ह्रास हुआ पर नव स्थापित मशीन वाले उद्योग-धंधे भी उन्नति नहीं कर सके। इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वर्ष प्रति वर्ष निर्यात से आयात बढ़ने लगा और चीन की अर्थ व्यवस्था दिन-प्रति दिन कमजोर होती गई। चुङ्गी के अलावा नमक से होने वाली आय भी विदेशियों द्वारा जांच कर कूती जाती थी और यह आय भी विदेशियों के प्रबन्ध में थी। मुख्य मुख्य रेल-पथ का नियंत्रण भी विदेशी ही करते थे तथा मुख्य मुख्य जहाज लाइन भी वे ही चलाते थे। यहां तक कि सम्पूर्ण देश में फैला डाक-तार विभाग भी विदेशियों की देख-रेख में था। जो कुछ भी हो, चीन के मुख्य मुख्य सभी आर्थिक और यातायात संबंधी कारबार विदेशियों के हाथों में चले गए। इसका फल यह हुआ कि

जनता की जीविका खराब से खराब होती गई और विदेशी साम्राज्यवादियों ने हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था को हथिया लिया। फिर हमारे राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने बताया है कि चीन स्थित विदेशी बैंकों द्वारा नोट जारी करने से चीन को काफी हानि उठानी पड़ी है। विदेशी आर्थिक दबाव के विषैले प्रभाव में आकर चीनी जनता विदेशी बैंक नोटों पर विश्वास करने लगी और विदेशी बैंक अपने नोट देकर चीन का माल खरीदने लगे। इनके अलावे हमारे राष्ट्रपिता ने बताया है कि विदेशी बैंकों में चीनी जनता ने जो धन जमा किया उससे भी चीन को भारी नुकसान उठाना पड़ा। चीन के लोगों ने रियायती क्षेत्रों के विदेशी बैंकों में अपना धन जमा किया और विदेशी बैंकों ने उस जमा किए धन को चीन में ही लगाया और इस तरह सूद तथा मुनाफा दोनों ही कमाया। इनके अलावा, रियायती क्षेत्रों के कर, मालगुजारी, जमीन की कीमत और सट्टेबाजी का कारबार तथा चीन स्थित विदेशियों द्वारा चलाए जाने वाले अन्य धंधे—ये सब असम संधियों द्वारा प्राप्त विशेष अधिकार के कारण ही होते थे और यही चीन के स्वार्थ का विदेशियों द्वारा अनाधिकार अपहरण था। इन तरह तरह की सम्मिलित हानियों से हमारा सामाजिक ढाँचा स्थिर न रह सका और हमारी जनता का जीवन-श्रोत दिन प्रति दिन सूखता गया। बेकार लोगों और लुटेरों की संख्या दिन-दिन बढ़ती गई और राष्ट्र अधिक से अधिक कष्ट भोगने लगा।

चीन की अर्थ-व्यवस्था के प्रधान क्षेत्र तीन बार बदले हैं। छिन् और हान् राजवंशों के समय आर्थिक दृष्टि से सब से अधिक विकसित क्षेत्र पीली नदी का कांठा था। त्रिक राजकाल से सुइ और थाङ् राजवंशों तक पीली नदी के कांठे की आर्थिक समृद्धि घटने लगी और छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) का कांठा आर्थिक दृष्टि से विकसित होने लगा। सुङ् राजवंश से मांचू राजवंश तक के समय में राष्ट्र क्रमशः दक्षिण-पूर्व की समृद्धि पर निर्भर रहने लगा। युआन् राजवंश के पतन होने के बाद यूरोप और एशिया इन दोनों महादेशों के बीच का स्थल मार्ग भी उजड़ गया। जिसके फल-स्वरूप चीन के पश्चिम भाग के नगरों की प्रधानता दिन दिन घटने लगी। स्पेन, पुर्तगाल, हॉलेण्ड और इंगलेण्ड जैसे सामुद्रिक शक्ति सम्पन्न देशों का आगमन वाणिज्य-व्यापार संबन्धी काम लेकर हमारे समुद्र तट के हर भाग में होने लगा और दक्षिण-पूर्व के हमारे नगर तुरत ही बढ़ने लगे। इसलिये

खासकर रियायती क्षेत्रों के बाजार—में सिमिट आई। वहां जो उत्पादक कारबार थे उनमें यह सारी पूँजी नहीं खप सकी इसलिये बड़े जोरों की सट्टेबाजी शुरू हुई। चूंकि इस तरह के कामों का (सट्टेबाजी आदि कामों का) आधार कोई उत्पादक कारबार नहीं था इसलिये एकाएक उन्नति कर उनका गिरना अवश्यंभावी था। जिससे सराफे, स्टॉकएक्सचेंज, ट्रस्ट कंपनी, बैंक, सोना-बाजार—एक के बाद एक में तहलका मचा और इसका अंत हुआ एक दुःखद व्यापक दिवाले के रूप में।

देश का आर्थिक पुनर्निर्माण राष्ट्र की सुरक्षा संबंधी पुनर्निर्माण का एक मुख्य अंग है और उसे जनता की आर्थिक अवस्था पर आधारित होना चाहिए। असम संधियों के प्रभाव के रहते राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये आर्थिक पुनर्निर्माण के काम को बढ़ाने का सचमुच में कोई रास्ता नहीं था और जनता का अनियमित आर्थिक विकास राष्ट्र की आत्मरक्षा की आवश्यकता के अनुकूल नहीं था। हमारे औद्योगिक और व्यापारिक कारबार के केन्द्र तो विदेशी रियायती क्षेत्रों और सैनिक निवास क्षेत्रों में बने और सबके समृद्धिशाली रियायती क्षेत्र और सैनिक निवास क्षेत्र साधारणतः समुद्र किनारे के बन्दगाहों में थे। ता लिएन् (डाइरन) थिएन् चिङ्, चिआव् चउ, शंघाइ शिआ मन् (अमोय), कुआङ् चउ (केन्टन)—ये सभी नगर साम्राज्यवादी शक्तियों की "पोताशस्त्र नीति" के अधीन थे और खास कर वे जापानी साम्राज्यवादियों द्वारा सरलता से घिर सकते थे। फिर चीन के यातायात के मुख्य मार्गों के प्रधान केन्द्र तो इन्हीं सहज घिर जाने वाले नगरों में थे जहाँ से देश के हर भीतरी भाग को रास्ते गए थे। फिर देश के भीतर एक जगह से दूसरी जगह जाने-आने के लिये आधुनिक यातायात के साधनों का अभाव था। यहाँ तक कि भीतरी भागों में जाने-आने के लिये हम लोगों को अपने भूभाग के बाहर से विदेशी रेल-पथ और जहाजी लाइन से यात्रा करनी पड़ती थी। इस तरह चीन की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था कई क्षेत्रगत आर्थिक इकाइयों में बट गई। हर इकाई एक या दो रियायती क्षेत्रों या सैनिक निवास क्षेत्रों के इर्द-गिर्द केन्द्रित हुई और उनके नियंत्रण में रही तथा बाहरी सम्पर्क के लिये उन पर निर्भर रही। अतः हम लोग समझ सकते हैं कि ऐसी आर्थिक अवस्था में अगर चीन साम्राज्यवादियों से लोहा लेने की चेष्टा करता तो वे हमारे गिने-चुने बन्दरगाहों को घेर लेते और यह हमारे सम्पूर्ण देश की अर्थ-व्यवस्था की जीवन-शक्ति को तथा देश

के भीतरी यातायात की धमनियों को बन्द करने के लिये पर्याप्त होता। इस आर्थिक अवस्था में स्पष्ट ही राष्ट्रीय सुरक्षा की बात उठाना व्यर्थ है।

हमारे चीन की अर्थ व्यवस्था पर असम संधियों के इन प्रभाव के कारण देश अपनी सुरक्षा नहीं कर सका और जनता को अपना अस्तित्व बनाए रखना दूभर हो गया।

२

असम संधियों का समाज पर प्रभाव

चीन के समाज पर असम संधियों का जो प्रभाव पड़ा वह हमारे सामाजिक ढाँचे और सामाजिक प्रवृत्तियों में देखा जा सकता है। पहले हम सामाजिक ढाँचे पर पड़े प्रभाव पर ही विचार करें।

चीनी समाज के मूल ढाँचे में एक ओर रक्त का संबंध व्यक्ति से प्रारम्भ हो परिवार और फिर गोत्र तक जाता है और दूसरी ओर प्रादेशिक संबंध परिवार या गोत्र से पाव्-चिआ[1] और फिर ग्राम तथा समाज तक जाता है। ये दोनों प्रणालियाँ परस्पर सर्वथा भिन्न और स्पष्ट हैं तथा प्राचीन काल से महात्माओं और विद्वानों ने इन दोनों के अनुशासन तथा शिक्षा पर बहुत ही ध्यान दिया है। परिवार पर लागू किए गए दैनिक जीवन के निर्धारित सिद्धान्त पारिवारिक शिष्टाचार और पारिवारिक परम्परायें हैं और गोत्र पर लागू किए गए वही सिद्धान्त वंशानुचरित और गोत्र के विधान हैं। पाव्-चिआ में पाव् के एकरारनामे होते हैं तथा गाँव और समाज में गाँव तथा समाज के विधान होते हैं।

इस व्यवस्था में स्वशासन की जो भावनायें थी उनसे बिना कानून का आसरा ताके आत्म निर्माण तथा पारिवारिक ऐक्य की दिशा में ठोस कार्य होता था और पारस्परिक सहायता करने के जो गुण थे उनसे बिना सरकार के प्रोत्साहन के जनसाधारण की भलाई का कार्य किया जाता था। शिक्षा के लिये हमारे यहां गांवों और कसबों में पाठशालाएँ थीं और सहायता कार्य के लिये पारिवारिक खेत और सार्वजनिक अन्नागार थे। अकाल से बचने के लिये अन्न इकट्ठा करके रखने को सामाजिक गोदाम थे। डाकुओं से

१ दश परिवार की इकाई चिआ और दश चिआ की इकाई पाव् कहलाती है।

रक्षा करने और बदमाशों को पकड़ने के लिये पाव्-चिश्रा की सम्मिलित जिम्मेवारी निभाने वाली प्रणाली थी। बांध-पोखरों, छोटी-बड़ी नहरों, रास्ते-सड़कों, तथा छोटी-बड़ी नदियों के बनाने, मरम्मत करने, खोदने और साफ करने के कामों में ऐसा एक काम भी नहीं था जो ग्राम और समाज के सम्मिलित प्रयत्न से न होता हो। मेंनसियस (मङ्‌ च) ने जैसा कहा है— "आने-जाने (=प्रतिदिन के व्यवहार में) पारस्परिक मैत्री की भावना हो, रखवाली करने में पारस्परिक सहयोग हो और बीमारी में पारस्परिक सहायता की जाय" और "पाठशालाओं की शिक्षा पर सावधानी से ध्यान रखा जाय और उनमें विशेषकर मातृपितृ भक्ति तथा भाईचारे की भावना की शिक्षा दी जाय।" लि युन् (अनुष्ठान ग्रंथ) में भी बताया गया है कि "वृद्धों के लिये आश्रय हो, युवकों का ठीक उपयोग हो, बच्चों को विकास का पूर्ण अवसर मिले, विधुरों, विधवाओं, अनाथों, संतानहीनों और अपंगों के जीवन निर्वाह की व्यवस्था हो।" ये आदर्श चीन के परम्परागत व्यावहारिक समाज में जीवित रहे हैं और इनका ठोस तथा शुभ परिणाम हुआ है। पर पिछले सौ वर्षों में असम संधियों के दबाव के कारण कृषि प्रधान गांवों का जीवन दिन प्रतिदिन ह्रास की ओर बढ़ता गया और शहरों का जीवन दिन प्रतिदिन विलासितापूर्ण और उच्छृङ्खल होता गया। विदेशी रियायती क्षेत्रों के प्रभाव के कारण परिवार, गोत्र, गांव और समाज के संगठन क्षत-विक्षत होते गए। स्वायत्त शासन की भावना मिट गई और उसकी जगह स्वार्थपरता और आत्म स्वार्थ ने घर जमाया। पारस्परिक सहायता का गुण तो मिट गया और उसकी जगह कलह तथा ईर्षा-द्वेष ने ले ली। सार्वजनिक संस्थाओं की उपेक्षा होने लगी और सार्वजनिक मामलों का कोई पूछने वाला भी नहीं रहा। इस तरह हमारे समाज से अच्छी चीजों को बढ़ाने तथा बुरी चीजों को मिटाने वाली प्रवर्त्तक शक्ति ही नहीं मिट गई बल्कि देश से कड़े तथा समान शासन-व्यवस्था का और शिक्षा संबंधी कामों का आधार भी नष्ट हो गया।

पिछले पांच हजार वर्षों से हमारे देश के ऋषि-महात्माओं ने सामाजिक परम्परा को बढ़ाने के महान् कार्य में अपने सम्पूर्ण जीवन को लगाया है। वे इस बात को जानते थे कि देश की शांति या अराजकता पर और राष्ट्र के उत्थान या पतन पर सामाजिक परम्परा के परिवर्तन का काफी प्रभाव पड़ता है। इसलिये उन लोगों ने "मनुष्यों को शिक्षित करने"

तथा "सुन्दर बीज बोने" में अपनी सारी शक्ति लगाई ताकि मनुष्य योग्य, आस्थावान और विश्वासी हों। इसलिये यद्यपि हमारे देश के इतिहास में शांति और अराजकता तथा राजवंशों का उत्थान और पतन एक के बाद एक होता रहा पर हमारी सामाजिक परम्परा में ईमानदारी, निष्ठा, उद्यम, मितव्ययिता, औचित्य, न्यायनिष्ठता, चारित्र्य और प्रतिष्ठा की भावना बनी रही। अतः ये ही आधारभूत कारण हैं कि हमारा राष्ट्र संसार में अपना अस्तित्व बनाए रख सका। पर गत सौ वर्षों से असम संधियों के दबाव के कारण दिन प्रतिदिन हमारी सामाजिक परम्परा दूषित होती जा रही है। अगर हम अपने सामाजिक गुण-दोषों का विश्लेषण करें तो हमें उन पर रियायती क्षेत्रों में प्रचलित नैतिक अवस्था का प्रभाव मालूम होगा कि किस प्रकार उच्छृङ्खल अभ्यासों से मनुष्यों के जीवन में लम्पटता और इन्द्रिय लोलुपता का विकास हुआ है और किस प्रकार अव्यवस्थित ढङ्ग से काम करते रहने से उनका मस्तिष्क अस्त व्यस्त हो गया है। कोई भी मनुष्य आस्थावान और व्यावहारिक नहीं रहा और कोई काम जल्दी तथा तत्परता से नहीं होने लगा। हर जगह छिछोरेपन, धूर्त्तता, ग़ैरजिम्मेवारी और आलस्य की मनोवृत्ति दिखाई पड़ने लगी। लोगों के सामने निश्चित कार्यक्रम नहीं रहा और वे अस्त-व्यस्त ढङ्ग से कार्य करने लगे। उनमें हिचकिचाहट तथा असावधानी की भावना पैदा हो गई और संकल्प का अभाव हो गया। वे दूसरों के शिर अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे और अपने निजी काम पर ध्यान देने लगे तथा सार्वजनिक कामों की उपेक्षा करने लगे। वे एकदम नहीं जानते थे कि वास्तव में समाज और राज क्या हैं। उन्होंने औचित्य से मुँह मोड़ लिया था, न्यायनिष्ठा का त्याग कर दिया था और उनमें चारित्र्य तथा प्रतिष्ठा की भावना एकदम नहीं रह गई थी। राष्ट्र का नैतिक पतन इससे अधिक और क्या हो सकता था।

प्राचीन लोगों ने कहा है—"कितनी ही कम क्यों न हो भलाई करने से मत चूको; कितना ही छोटा क्यों न दीखता हो कोई बुरा काम मत करो।" हर नागरिक को अपने *दैनिक जीवन में अपने विचारों और कामों की जांच करनी चाहिए*, अपने स्वार्थ को छोड़ना चाहिए, सार्वजनिक लाभ के कामों में अपने को लगाना चाहिए *और अपनी शक्ति भर दूसरों की भलाई करनी चाहिए*। उसे अपने देश को सबसे ऊपर रखना चाहिए तथा *सब कामों के करने में प्रथम जनता का ध्यान रखना चाहिए*। उसे सरल

होना चाहिए उच्छृङ्खल नहीं, तथा ईमानदार होना चाहिए धूर्त नहीं। इस तरह वह समाज और राज की भलाई के लिये जीवन देने और काम करने की उपयोगिता समझ सकता है। उसे यह जानना चाहिए कि ऋषियों और वीर पुरुषों में से ऐसा एक भी नहीं हुआ जिसे बिना समाज तथा देश की सेवा किए जनता द्वारा यों ही सम्मान मिल गया हो। उनके विचार और कार्य ही समाज का मापदंड हैं जिससे सही या गलत, अच्छे या बुरे की परख होती है। इसलिये हम लोगों को अपने ऋषियों के पद चिह्नों का अनुसरण करना चाहिए, अपने वीर पुरुषों की अभ्यर्थना करनी चाहिए तथा "प्राचीन लोगों से मित्रता जोड़नी चाहिए" (=पूर्वजों के उपदेश का पालन करना) ताकि हम अपने नैतिक गुणों का विकास कर सकें और अपने चरित्र को दृढ़ बना सकें। गत सौ वर्षों से असम संधियों के दबाव के कारण चीन की जनता के जीवन में क्रमशः बुरी आदतें और खराब अभ्यास घर करते गए हैं। हर आदमी आत्म स्वार्थ को सही और गलत की तथा व्यक्तिगत आकांक्षाओं को अच्छे या बुरे की कसौटी मानने लगा है। अगर कोई चीज उनके स्वार्थ की होती है तो वह सही और अगर उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति करती है तो अच्छी मानी जाती है। इसके फलस्वरूप गाँवों में बदमाश शक्तिशाली हो गए और शहरों में लुच्चे लुहाड़ों ने गैरकानूनी रास्ता अपनाया। इस तरह वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये सार्वजनिक शांति और दूसरों की सुख सुविधा का सत्यानाश करने लगे। इनके अलावे दूषित, अनुचित और उत्तरदायित्वहीन आदर्शों और राजनीतिक सिद्धान्तों को साहित्यिक रचनाओं द्वारा परमार्जित कर उनका दुरुपयोग किया गया। जिन लोगों ने साहित्यिक रचनाओं द्वारा परिमार्जित कर उन सिद्धान्तों और आदर्शों की प्रशंसा की, ऐसा करने में उनका निजी स्वार्थ था और जिन लोगों ने उनका दुरुपयोग किया उन्होंने समाज में फैले हुए ईर्षा द्वेष का लाभ उठा तथा उन्हें और उत्तेजित किया। इससे अवस्था ऐसी आ गई कि ऋषियों के पद चिह्नों का अनुसरण करने, वीरों की अभ्यर्थना करने और "प्राचीन लोगों से मित्रता जोड़ने" की परम्परा टूटने ही नहीं लगी बल्कि लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगे। यहाँ तक कि लोग विदेशियों की प्रशंसा करने लगे और अपने देश के इतिहास को हेय मानने लगे। विश्वास की सामूहिक भावना खो गई और आत्म विश्वास मिट गया। जनता तो बिखरे बालू के ढेर-तुल्य

हो गई और देश टुकड़े-टुकड़े में बटने को हो गया। लोग इस बात को नहीं समझ सके कि अगर राष्ट्र और राज का पतन होता है तो उसके व्यक्तिगत अस्तित्व का आधार कहाँ रहेगा? प्राचीन लोगों ने कहा है—"औचित्य, न्यायनिष्ठता, चारित्र्य और प्रतिष्ठा की भावना ही राष्ट्र के चार स्तम्भ हैं।" अगर ये चार स्तम्भ दृढ़ नहीं हैं तो राष्ट्र का पतन अवश्य होगा। जब हम भविष्य पर विचार करते हैं तो काँप उठते हैं और लाज तथा डर से भर जाते हैं।

४
असम संधियों का नैतिकता पर प्रभाव

रियायती क्षेत्रों और बहिर्देशीय अधिकार का चीन के नैतिक जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। यह सभी जानते हैं कि नान् चिङ् की संधि अफीम युद्ध के समाप्त होने पर हुई। अफीम युद्ध का कारण यह था कि हु-कुआङ् (हु नान् और कुआङ् तुङ् प्रान्त) के गवर्नर लिन् चे-शू ने कुआङ् चउ (केन्टन्) में अफीम आने पर प्रतिबंध लगा दिया था। उस समय चीन में प्रति वर्ष दो से तीन करोड़ टेल[1] मूल्य की अफीम बाहर से आती थी। इसके संबंध में हुआङ् चुए-चु ने यों कहा है—"चीन के धन का उपयोग विदेशियों के अगाध समुद्र को भरने में किया जाता था और उसके बदले मनुष्यों के लिये विष तुल्य चीज ली जाती थी; जिसने क्रमशः देश को रोगी बना दिया।" फिर लिन् चे-शू ने भी इस संबंध में बड़ा कडुआ कहा है—"अगर अफीम का निषेध न हुआ तो देश दिन प्रति दिन दरिद्र से दरिद्र होता जायगा और जनता दिन प्रति दिन कमजोर से कमजोर होती जायगी। कुछ दशाब्दियों के बाद न तो हमारी सरकार को राजस्व ही मिलेगा और न सबल सैनिक ही प्राप्त होंगे।" अफीम युद्ध में जब चीन हार गया तो उसके पास सामुद्रिक चुङ्गी लगाकर अन्य विषैले मादक द्रव्यों को चीन में आने से रोकने का भी साधन नहीं रहा। विदेशियों को चीन में रियायती क्षेत्र और बहिर्देशीय अधिकार मिल जाने से उन्हें बाहर से इन

(१) १ टेल—१$\frac{१}{३}$ औंस चांदी के। चूंगी को छोड़ अन्य प्रकार के कर आदि के निर्धारण की इकाई खु फिङ् लिआङ् (टेल) कहलाती थी जो २ शिलिंग ११$\frac{११}{२५}$ पैंस के बराबर थी। चूंगी के टेल का मूल्य २ शिलिंग ११$\frac{७}{१०}$ पैंस था।

विषैले पदार्थों को मंगाने तथा इकट्ठा करने की सुविधा हो गई। चीन में अफीम का पीना कड़े कानून द्वारा एकदम निषेध कर दिया गया है पर ये कानून रियायती क्षेत्रों पर लागू नहीं हो सकते, इसलिये वहाँ खुले आम इसका व्यवहार होता है। इसके अलावे रूसी-जापानी युद्ध के बाद जापानी साम्राज्यवादियों ने हमारे भूभाग को हड़पने के लिये "जनता को दूषित करने" वाली व्यावहारिक प्रणाली अपनाई। विदेशी शक्तियों को जो जो सुविधाएँ चीन में प्राप्त थीं उनके कारण इस प्रकार की दूषित प्रणाली को लागू नहीं होने देने के लिये न तो चीन सरकार के पास कोई साधन थाऔर लागू हो जाने पर न उसमें यह क्षमता थी कि वह उसे रोक सकती। धीरे धीरे हमारी जनता को दूषित करने का यह ढंग खुल कर चलने लगा और उससे होने वाली हानि की मात्रा अधिक से अधिक बढ़ती गई। अफीम से हुई हानि 'लाल गोलियों'[1] की अपेक्षा कम थी और 'लाल गोलियों' से हुई हानि "उजली बुकनी"[2] की अपेक्षा कम थी। हमारे उत्तर-पूर्व (मंचूरिया), ह-पइ और शान् तुङ् प्रान्तों के कितने क्षेत्रों की पूरी आबादी में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं था जिसे "उजली बुकनी" खाने की लत न लग गई हो। जापान के मादक द्रव्य का व्यापार समुद्र तट के किनारे किनारे और ह्वाङ् चिआङ् (याङ् हि सि किआङ्) के कांठे में फैलता हुआ देश के भीतर हु-पइ और स चुआन् प्रान्तों तक पहुँच गया। जापान ने पइ फिङ् और थिएन् चिङ् के कोरियाव सियों को और फु चिएन् के फरमूसावासियों को गैरकानूनी कार्य करने को प्रोत्साहित किया और इन सबों ने मादक द्रव्यों का फेरी करना अपना खास रोजगार बना लिया। ऐसा करने का उद्देश्य था हमारी जनता को दूषित करना ताकि हमारे देश का पतन हो जाय और हमारी जाति लुप्त हो जाय।

रियायती क्षेत्र केवल मादक द्रव्य संबंधी व्यापार के केन्द्र ही नहीं बल्कि वेश्यावृत्ति, जुए और चोरी-डकैती के अड्डे भी थे। वेश्यावृत्ति की बात लें तो गावों में गरीबी फैलने और देश के भीतरी भागों का आर्थिक ह्रास होने से वहाँ के लोग शहरों में चले आए। पर शहरों में भी काम मिलना कठिन था। इसलिये वे बेघरबार के लोग अपने लड़के लड़कियों को बेचने को बाध्य हो गए और जो काम के शिकार बने। बलात्कार तथा नारी अपहरण साधारण बात हो गई। इस प्रकार गत सौ वर्षों के बीच वास्तव

(१) और (२) अफीम से ही बनाई जाती थीं;

में सुन्दर और समृद्धिशाली नगर क्लेश और पाप के नरक कुंड हो गए। जुए की बात लें तो इसके शिकार केवल अमीर ही नहीं हुए बल्कि गरीब भी हुए। इससे धनी लोगों के धन का नाश हुआ और वे दिवालिये हो गए तथा गरीबों की तो जीविका गई और वे अपना सब कुछ खो बैठे। जहाँ जहाँ जुए की लत फैली सामाजिक व्यवस्था एकदम डाँवाँडोल हो गई। लोगों में मानसिक दुर्बलता आ गई और उनका सब नैतिक ज्ञान जाता रहा। यह जुए की लत केवल जुआ खेलने के अड्डों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि लॉटरी से लेकर बाजार में चलने वाले सभी प्रकार के सट्टेबाजी के कारबार जिन पर उत्पादन और विनियम के नियम लागू नहीं होते और जिनमें अनायास ही लाभ का अवसर रहता है, सब के सब जुएबाजी के ही रूप हैं। रियायती क्षेत्र तो वैसी जगह हो गए थे जहाँ बेकार पूँजी आकर जमा हो गई थी; पर वहाँ उत्पादन संबंधी कारबार यथेष्ट नहीं थे जिनमें वह बेकार पूँजी लगाई जाती। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि अमीर और गरीब समान रूप से जुए में फँस गए, वेश्यावृत्ति में अपना धन उड़ाने लगे तथा मादक पदार्थ खाने के आदी हो गए। इस प्रकार धन तथा परिवार सब गवाँ कर बहुत लोग डाकू और लुटेरे हो गए तथा उन्होंने रियायती क्षेत्रों को अपने छिपने तथा सभी प्रकार के बुरे कामों के करने का कार्यस्थल बनाया। पाँच हजार वर्ष पुरानी चीन की परम्परा जिसमें ईमानदारी से काम करने, सरलता से रहने, अपने कपड़े और भोजन में सादगी रखने, स्त्रियों का कपड़ा बुनने और पुरुषों का खेती करने आदि के अच्छे गुण थे, वह रियायती क्षेत्रों में प्रचलित अफीम खाने, जुआ खेलने, वेश्यावृत्ति और लूटपाट के कारण टूट गई।

चीन की प्राचीन नैतिक शिक्षा और दर्शन में मनुष्य के सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रखने के लिये ब्योरेवार तथा सावधानी पूर्वक बनाए गए सिद्धान्त और नियम हैं। हमारे सामाजिक ढाँचे में कितने ही परिवर्तन हुए हैं जिनसे पिता और पुत्र का, पति और पत्नी का, भाई-भाई का, मित्र मित्र का, बड़े-छोटे का, पुरुष-स्त्री का तथा बूढ़े-बच्चे का संबंध नियंत्रित होता है और जिनसे पड़ोसियों में पारस्परिक सहायता करने और बीमारों तथा कमजोरों की सेवा करने की भावना पैदा होती है। गत सौ वर्षों से जहाँ जहाँ भी रियायती क्षेत्रों का प्रभाव पड़ा इन सिद्धान्तों की उपेक्षा ही नहीं की गई बल्कि वे हेय भी समझे गए। पिता-पुत्र के बीच,

पति-पत्नी के बीच, भाई-भाई और मित्र-मित्र के बीच, बड़े-छोटे के बीच, बूढ़े-बच्चे के बीच और पड़ोसियों के बीच से आदर और प्रेम की तथा पारस्परिक सहायता और सहयोग की पुरानी भावना मिट रही है। केवल भौतिक स्वार्थ पर ध्यान दिया जा रहा है और सब जगह अपने आपको नैतिक कसौटी से परखने का अभाव हो गया है। जहाँ कर्त्तव्य पालन की बात आती है लोग दिल चुराते हैं, जहाँ भौतिक लाभ की बात होती है वे पिल पड़ते हैं। बड़े-छोटों में सच्ची बात छिपाई जाती है और मित्रों में कपट व्यवहार चलता है। बूढ़े और असमर्थ लोगों की सेवा का कोई प्रबन्ध नहीं है और गरीबों तथा बीमारों को कोई सहायता नहीं मिलती। एक ही परिवार के सदस्यों में अजनबी जैसा व्यवहार होता है और देशवासी तो दुश्मन की तरह देखे जाते हैं। कुछ तो ऐसे परले शिरे के उदाहरण हैं जिनमें लोग इतनी दूर पहुँच गए कि "बदमाशों और पाजियों को अपना बाप मान बैठे" और लज्जा को ताक पर रख दुश्मनों की सहायता की और इस प्रकार उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक संबंध के नियम को तोड़ा। उन्हें इस बात का कतई ध्यान नहीं था कि नैतिक दृष्टि से उनका कितना पतन हो रहा है। वह देश जिसने आज तक औचित्य और न्यायनिष्ठता पर सबसे अधिक ध्यान दिया उसके ही सामने उसकी अपनी चारित्र्य और प्रतिष्ठा गँवाने का खतरा आ उपस्थित हुआ। इन असम संधियों से हमारा कितना विनाश हुआ !

राष्ट्र के नैतिक ह्रास का प्रभाव हमारी जनता के शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ा। नगर के अनगिनत बेकार लोगों की शारीरिक शक्ति आसानी से क्षीण हो गई। उन सौदागरों का स्वास्थ्य भी एकदम गिर गया जिन्होंने उच्छृङ्खल और कामुक जीवन व्यतीत किया। सबके भयंकर बात यह हुई कि हमारे स्कूल के बच्चों के स्वास्थ्य पर इसका असर पड़ा। अधिकांश स्कूलों में शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था और अध्यापक नैतिक शिक्षा पर ध्यान नहीं देते थे। इसके साथ साथ स्कूल के बाहर के उच्छृङ्खल और कामुक जीवन की ओर विद्यार्थी भी आकर्षित होते थे और वे भी उन बुरी आदतों के शिकार बने। इसके कारण उनके नैतिक चरित्र का पतन हुआ। शहरों में बुरी तरह से फैली हुई संक्रामक और यौन व्याधियों से उनका शरीर और भी जर्जर हो गया। कैसे ये विद्यार्थी स्नातक होने के बाद शिक्षा प्रसार, सामाजिक सुधार, राज

की सेवा और कारबार की वृद्धि करते जब उनके शरीर और मन दोनों ही खोखले हो गये थे? ऐसी स्थिति का ही अवश्यंभावी परिणाम था कि हमारा देश धीरे धीरे छिन्न भिन्न हो रहा था और चीनी राष्ट्र अधिक से अधिक नैतिक पतन के गढ़े में गिर रहा था।

५

असम संधियों का मन पर प्रभाव

असम संधियों का प्रभाव हमारी जनता की मनोभावना पर उतना ही गहरा और हानिकर हुआ जितना कि हमारे राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि चीन के विभिन्न भागों में विदेशी लोग जो धर्म प्रचार और शिक्षा के कामों में लगे हैं वह हमारे ऊपर उनका सांस्कृतिक आक्रमण है। कितने लोग ऐसे हैं जो विदेशियों द्वारा चीन में स्थापित कुछ स्कूल और कालेजों के कार्य को चीनी जनता के लिये लाभदायक समझते हैं। मेरा खयाल है कि इन दोनों प्रकार के विचार करने वालों ने गत शताब्दी के चीन के मनन-चिंतन को और सांस्कृतिक समस्याओं के मर्म को साफ साफ नहीं समझा है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हम देखते हैं कि हमारे राष्ट्र के आत्मगौरव और नम्रता रूपी नैतिक गुण में आत्मश्लाघा और आत्म-हीनता नहीं है। "गौरवपूर्ण पर अभिमान रहित; विनयी पर हीन नहीं" वाली कहावत से सचमुच में हमारी जनता की नैतिक भावना प्रकट होती है। इन्हीं सहज चारित्रिक गुणों की छाया में हम विदेशी धर्म और दर्शन को देखते हैं। धर्म के संबंध में चर्चा करें तो चीन के पास बहुत अरसे से उसके जीवन का अपना दर्शन है जिसे कनफ्युशस ने प्रतिपादित किया है और मेनसियस ने बढ़ाया है और जिसकी हान् राजवंश के विद्वानों ने व्याख्या की है। यह अपने आप में एक महान् पद्धति है। दूसरी दार्शनिक पद्धतियों से तुलना करने पर यह उनसे विशिष्ट नहीं तो समकक्ष अवश्य है। पर कुछ लोग नम्रतापूर्वक विदेशी धार्मिक भावों को अपनाने को तैयार रहते हैं और विदेशी धर्मों में जो सबसे अच्छी बातें होती हैं उन्हें आत्मसात कर लेते हैं ताकि तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा नवीन सत्य का उद्घाटन हो सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत (इन्-तु) से शिन् चिआङ् (चीनी तुर्किस्तान) होकर जो बौद्ध धर्म चीन आया वह पूर्वी

हान् राजवंश के बाद यहाँ जम गया। इस्लाम का प्रवेश थाङ् और सुङ् राजवंशों के समय हुआ। मिङ् राजवंश के अंतिम और छिङ् राजवंश के प्रारम्भिक दिनों में ईसाई धर्म का प्रवेश चीन में होने से चीन के दार्शनिक विचार और भी समृद्ध हुए। वास्तव में चुङ् हा राष्ट्र में आत्मसात करने की महान् शक्ति है। चुङ् हा राष्ट्र ने विदेशी धर्मों और संस्कृतियों के प्रति कभी भी असहिष्णुता और दरवाजा वंद कर लेने की नीति का अवलंबन नहीं किया। यही कारण है कि चीन में मध्ययुगीन यूरोप की तरह कभी भी धर्म के नाम पर युद्ध नहीं हुआ। गत शताब्दी से ईसाई धर्म का चीन के वैज्ञानिक ज्ञान के विकास तथा सामाजिक जीवन के सुधार पर हितकर प्रभाव पड़ा है। थाइ फिङ् क्रांति का आदर्श ईसाई धर्म की शिक्षाओं पर आधारित था। ईसाई धर्म के सिद्धान्त वहुत दूर तक राष्ट्रीय क्रान्ति के "बीज बोने" में सहायक हुए। अभाग्यवश गत सौ वर्षों में चीन के ईसाई चर्च जो असम संधियों के कारण विशेष सुविधाओं का उपभोग करते थे, हमारी राष्ट्रीय भावनाओं को नहीं समझ सके। इससे लोगों के एक वर्ग में विदेशी धर्म-प्रचारकों के कामों को सांस्कृतिक आक्रमण समझने की शंका पैदा हो गई तथा सबसे बुरी वात तो यह हुई कि विदेशी धर्मप्रचारकों के प्रति लोगों में असहिष्णुता तथा विरोध का भाव भर गया। इस तरह असम संधियों के साथ जुड़े रहने के कारण ईसाई धर्म के प्रचार में भी बाधा पहुँची। इसलिये ही तो मैं बराबर कहता रहा हूँ कि असम संधियों से ईसाई चर्च को कुछ भलाई तो हुई नहीं उल्टे उसे हानि ही उठानी पड़ी।

चुङ् हा लोगों की परम्परागत बौद्धिक योग्यता तथा उससे प्राप्त महान् सफलता तथा उसकी देन के वर्णन से इतिहास भरा पड़ा है। ह्वाङ् हो (पीली नदी), छाङ् चिआङ्, ह्वाइ हो और हान् सुइ से होनेवाले जलप्लावन से देश को बचाने के लिये सम्राट् ता यू के जल निर्गम का कार्य, छिन् राजवंश (ई० पू० २४६-२०६) के समय महान् चीनी दीवार का निर्माण तथा सुइ राजवंश (सन् ५८१-६१८ ई०) के समय महान् नहर का तैयार होना इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। कुतुवनुमा, बारूद, मुद्रांक और छापाखाने के साथ साथ गणित, संगीत, भैषज विज्ञान और इंजिनियरिंग के क्षेत्र में किए गए आविष्कारों और अन्वेषणों की भी चर्चा की जा सकती है। हमें सिर्फ अपना इतिहास पढ़ने से पता लग जायगा कि हमारी कला और विज्ञान की जो लंबी परम्परा है उसकी टक्कर की किसी भी पश्चिमी राष्ट्र के

इतिहास में नहीं है। इन सब के रहते हुए भी चीनी जनता अपनी संस्कृति, कला और विज्ञान में सुधार करने तथा उन्नत करने के लिये दूसरे लोगों की संस्कृति कला और विज्ञान को अपनाने तथा उन्हें आत्मसात करने को तैयार रहती है। दूसरी संस्कृतियों को आत्मसात कर लेने की हमारी योग्यता के ही कारण हजारों वर्षों से हमारी संस्कृति बराबर बढ़ती और समृद्धिशाली होती रही है और चूँकि हममें दूसरे लोगों की कला और विज्ञान को अपनाने की क्षमता है इसलिये हमारी अपनी कला और विज्ञान में निरन्तर नवीनता आती गई है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि चीनी संस्कृति और चीनी कला तथा विज्ञान की अपनी भी पद्धति है जो चीन के आत्मसात करने की योग्यता का बहुत ही बड़ा आधार है। चूँकि चीन अपनी इस मूल पद्धति को मर्मस्थान की तरह बचाने में समर्थ रहा है इसलिये दूसरी संस्कृतियों ने जब चीन में अपना पैर जमाया तो वे भी उसके राष्ट्रीय जीवन का अविछिन्न अंग बन गईं। दूसरे ढंग से कहा जाय तो दूसरी संस्कृतियाँ चीनी संस्कृति के ढाँचे में तभी बनी रह सकती हैं जब उनका सार भाग चीनी जनता के राष्ट्रीय जीवन का अविछिन्न अंग हो जाता है। गत सौ वर्षों में पश्चिमी विज्ञान से चीनी संस्कृति को बड़ा लाभ हुआ है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अफीम युद्ध के बाद चीनी लोगों ने समझा कि पश्चिमी राष्ट्रों के धन तथा पराक्रम का श्रेय उनके बन्दूक और जहाज को है। इसलिये वे तुरन्त बन्दूक और जहाज बनाने के टेकनिक के अध्ययन में लग गए। चीन जापान युद्ध (सन् १८९४ ई०) समाप्त होने पर हमारे लोग एक कदम और आगे बढ़े और विदेशी सामाजिक और राजनीतिक पद्धतियों की छानबीन में लगे। उन्होंने समाज विज्ञान पर लिखी विदेशी भाषाओं की प्रामाणिक पुस्तकों का चीनी में अनुवाद कर डाला। समाचारपत्र और पत्रिकाओं के सम्पादक चीन की साक्षर जनता से पश्चिमी सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्तों की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार कुछ दशाब्दियों के भीतर ही पश्चिमी कला और विज्ञान की प्रशंसा होने तथा उनके अध्ययन, तुलना और निरीक्षण द्वारा चीन के व्यावहारिक, प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान में बड़ी उन्नति हुई। कुछ क्षेत्रों में तो चीनी लोगों ने उल्लेखनीय आविष्कार किये और इस प्रकार संसार के वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि में हाथ बटाया। इस प्रकार हमारे लोगों ने सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में विज्ञान के महत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया।

पर तसवीर का एक दूसरा पहलू भी है। गत सौ वर्षों में असम संधियों के कारण चीनी संस्कृति को बड़ा धक्का लगा है। इन संधियों के दबाव के कारण पश्चिमी संस्कृति के प्रति चीनी लोगों के रुख में परिवर्तन हुआ पर यह परिवर्तन हुआ भय से आत्म समर्पण के रूप में। इसके साथ साथ अपनी संस्कृति के प्रति उनके रुख में परिवर्तन हुआ आत्मगौरव से आत्म हीनता के रूप में। आत्म समर्पण से जिसे समर्पित किया गया उसके प्रति श्रद्धा की भावना पैदा हुई जिससे आगे चलकर हमारे कछ लोग दूसरे देशों के एक न एक सिद्धान्त के अनुयायी बन बैठे। आत्महीनता से आत्म भर्त्सना की भावना पैदा हुई जिससे आगे चलकर हमारे कुछ लोगों ने निर्लज्ज हो अपनी परम्परागत संस्कृति की खिल्ली उड़ाई। हम सभी जानते हैं कि अफीम युद्ध से प्रारम्भ कर चीन जापान युद्ध (सन् १८९४ ई०), आठ शक्तियों के सम्मिलित आक्रमण (सन् १९०० ई०) तथा सन् १९११ की जनक्रांति तक चीनी लोगों की यह मांग रही कि चीन के साथ जो अन्याय हुआ है उसका प्रतिकार हो और चीन को शक्तिशाली बनाया जाय। इसलिये देश को समृद्ध बनाने तथा एक सबल सेना तैयार करने की ओर सारी शक्ति लगाई गई। हम लोगों ने पहले पश्चिमी संस्कृति के अध्ययन पर इसलिये ध्यान दिया कि हम लोग गुलाम बनना नहीं चाहते थे। हम लोगों ने सोचा कि चीन को स्वतंत्र और शक्तिशाली बनाने के लिये पश्चिमी संस्कृति का अध्ययन करना चाहिए और उसे आत्मसात करना चाहिए। लेकिन अभाग्यवश हम लोगों ने क्रांति की असफलता के बाद नवीन चीन निर्माण करने के अपने संकल्प को पीछे डाल दिया और इसका फल यह हुआ कि असम संधियों का परिणाम और भी भयंकर हो उठा। अलक्षित रूप से हमारी मानसिक स्थिति ऐसी हो गई कि हम "अपने बगीचे की देखभाल न कर दूसरे के बगीचे को आबाद करने लगे", अपना जो कुछ भी है उसको खराब समझने लगे और दूसरों की सभी चीजों को उत्तम मानने लगे तथा पश्चिम का अंधानुकरण करना ही सही मान बैठे। चीनी लोगों ने पश्चिमी संस्कृति का जो अध्ययन प्रारम्भ किया था उसका मूल उद्देश्य था कि वे दूसरों का गुलाम बनना नहीं चाहते थे। पर परिणाम तो आशा के विपरीत हुआ। पश्चिमी संस्कृति को सीख कर वे अलक्षित रूप से उसके गुलाम हो गए।

चार मई सन् १९१९ के विद्यार्थी आन्दोलन के बाद चीन के शिक्षा जगत में दो विचार धाराओं का प्रवेश हुआ—एक तो चरम वैयक्तिक

उदारवाद (प्रजातंत्र) का और दूसरा वर्ग संघर्ष युक्त समाजवाद का और ये विचारवाद में पूरे देश में फैल गए। सब मिला जुलाकर कहा जाय तो चीन का शिक्षित समाज अपनी संस्कृति में परिवर्तन लाना चाहता था पर उसे ध्यान नहीं था कि चीनी संस्कृति के कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो अपरिवर्तनीय हैं। लोग तो विभिन्न पश्चिमी सिद्धान्तों की केवल ऊपरी बातों की नकल करते थे पर वे चीन के राष्ट्रीय जीवन में सुधार करने के लिये उन सिद्धान्तों की वास्तविक खूबियों का मनन नहीं करते थे। इसका फल यह हुआ कि हमारे विद्वानों और विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या ने पश्चिमी संस्कृति की ऊपरी और अनावश्यक बातों को अपना लिया और अपनी संस्कृति के प्रति न तो उनमें सम्मान रहा और न तो उस पर आस्था ही। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि अधिकांश लोग पश्चिम की हर चीज को अच्छी और चीन की हर चीज को बुरी समझने लगे। यद्यपि इस तरह के लोग विदेशी चीजों की प्रशंसा एक स्वर से करते थे पर वे आपस में विभिन्न दलों में बंटे हुए थे। चूँकि बहुत से विदेशी राज भी हैं और बहुत विदेशी सिद्धान्त भी प्रचलित हैं इसलिये लोग विभिन्न समूहों में बँट गए और हर समूह अपने मत की ढोल पीटने लगा। जैसे ही विदेशी सिद्धान्तों में परिवर्तन होता ये विभिन्न दल भी आँख मूंद अपने मतों में परिवर्तन कर लेते। कुछ समय के लिये भले ही उनके मत के लोगों का एक समूह प्रभावित हुआ हो पर वास्तविक दृष्टि से देखें तो वे हमारी जनता की मनोभावना और प्रकृति के विपरीत पड़ते थे। उन लोगों की अपनी बात लें तो उन्हें किसी चीज पर दृढ़ आस्था नहीं थी—वे केवल दूसरों की कही बात दुहराते थे। इसी से पता चल जाता है कि क्यों वे अपना मत परिवर्तन करने को उत्सुक रहते थे और क्यों वे उस परिवर्तन का संतोषजनक समाधान नहीं बतला सकते थे। इसलिये उन लोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त और परिचालित आन्दोलन कुछ ही समय तक टिक सके। सच कहें तो उन्होंने अपने को तथा दूसरों को गुमराह किया और इसका फल यह हुआ उनका उपयोगी जीवन जो दूसरे कामों में लगता, व्यर्थ ही खराब हुआ। सन् १९११ की जनक्रांति के बाद विभिन्न समय में जो जो सिद्धान्त और राजनीतिक मत चीन में प्रकट हुए उनमें एक भी सिद्धान्त या मत ऐसा नहीं था जो दूसरे देशों का अंधानुकरण न हो। केन्द्रीय सरकार के लिये पार्लियामेंटरी, या मंत्रिमंडल वाली या अध्यक्षपद वाली कौन सी शासन पद्धति अपनाई जाय इसको लेकर सन् १९१३ में जो मतमतान्तर था वह तो केवल इसलिये था कि

ब्रिटिश पद्धति या फ्रांसीसी पद्धति या अमरिकी पद्धति इनमें से किसको आदर्श माना जाय। सन् १९२० में जो मतमतान्तर था कि केन्द्रीयभूत शासन पद्धति (Unitary System) और संघीय शासन पद्धति (Federal System) इन दोनों में किस पद्धति से सरकार गठित हो वह तो केवल इस बात का था कि फ्रांसीसी और अमरिकी पद्धतियों में से कौन सी अपनाई जाय। यूआन् श-खाइ ने जब राजतंत्र स्थापित करने की चेष्टा की तो उसके सैद्धान्तिक समर्थन में प्रो० गुडनाव के मेमोरेन्डम का उपयोग किया गया। छाव् खुन् विधान तो घूस देकर बना था पर क्या वह वाइमर विधान (Weimar Constitution of Germany) के नमूने पर बना नहीं ज्ञात होता था? तथाकथित उदारवाद और समाजवाद के बीच जो मतमतान्तर चलता था वह तो वास्तव में नकल किए और तोड़े-मरोड़े अंग्रेजी-अमरिकी और सोवियत सिद्धान्तों के बीच का मतभेद था। इन सभी नकल किए हुए और तोड़े-मरोड़े सिद्धान्त और राजनीतिक मतों से चीन के राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तो नहीं ही हो सकी। वे तो चीनी संस्कृति की परम्परागत भावनाओं के विपरीत पड़ते थे। हममें से किसी के लिये भी बिना विचार किए इन सिद्धान्तों और मतों के समर्थन करने का मतलब था कि हम भूल जाएँ कि हम चीनी हैं और पूरे तौर पर हम अपनी शिक्षा के इस उद्देश्य को भी भुला दें कि "चीन की भलाई के लिये हमने जो कुछ सीखा है उसका हमें उपभोग करना है।" इसका फल यह होता कि चीनी संस्कृति ह्रास के गर्त्त में गिरती और नष्ट-भ्रष्ट हो जाती। इस परिस्थिति में उदारवाद की गलत व्याख्या करने वाले और समाजवाद को दूषित करनेवाले चीनी विद्वान और राजनीतिज्ञ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, जानकर या अनजाने विदेशी शक्तियों के पक्ष को अपना पक्ष समझने लगे और उनके स्वार्थ को अपना स्वार्थ मान बैठे। इतना ही नहीं, वे तो साम्राज्यवाद के पक्षपाती हो गए। वे एकदम भूल गए कि वे कौन हैं, उनके अध्ययन का उद्देश्य क्या है और वे कर क्या रहे हैं। ऐसी मनःस्थिति में जन साधारण के बीच वे प्रचार और शिक्षा संबंधी काम करते थे जिससे हमारी जनता समझने लगी कि हमारे राज की सार्वभौमिकता का ह्रास होना और राष्ट्रीय जीवन का खतरे में पड़ना समय की गति का फल है। सबसे भयंकर बात तो यह थी कि वे एकदम नहीं जानते थे कि इस प्रकार का ह्रास और खतरा विदेशी "वादों" के अंधानुकरण से और भी

भी बढ़ता जाता था। इससे सचमुच में हमारी संस्कृति के इतिहास में सबसे बड़ा संकट और हमारी जनता की भावनाओं के लिये सबसे बड़ा खतरा आ उपस्थित हुआ। अतः यही हमारे लिये उपयुक्त समय है कि हमें उठ खड़ा होना चाहिए और अपना पूरा पूरा सुधार करना चाहिए। एकमात्र इस तरीके से ही हम अपने राष्ट्र को और अपने को बचा सकते हैं—एकमात्र इसी रीति से हम आत्म शक्ति सम्पन्न मनुष्य हो सकते है और स्वाधीन तथा स्वतंत्र चीन का निर्माण कर सकते हैं।

(६)

आत्म अन्वेषण और अनुशोचन

दूसरे अध्याय में मैंने असम संधियों के कारण का जो विश्लेषण किया है और इस अध्याय में जो उनसे हुई भयंकर हानियों का वर्णन है—उनका उद्देश्य यह है कि मैं ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा इस कथन को सिद्ध करना चाहता हूँ कि "अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे द्वारा अपमानित होता है तो इसका कारण यह है कि उसने दूसरे की नजरों में अपनी प्रतिष्ठा गँवा दी है, और जब एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र का आक्रमण होता है तो इसका कारण यह है कि उसने अपने व्यवहार से दूसरे राष्ट्रों को आक्रमण करने का अवसर दिया है।" मैं आशा करता हूँ कि हमारे लोग अपना हृदय स्वयं टटोलेंगे और दूसरों के शिर दोष मढ़ने की अपेक्षा स्वयं अनुशोचन करेंगे। उन्हें जानना चाहिए कि जो राष्ट्र अपने पाँव पर स्वयं खड़ा हो सकता है तथा अपनी शक्ति पर भरोसा करता है वही राष्ट्रों के परिवार में समानता और स्वतंत्रता का दर्जा पा सकता है। भूत काल में चीन को जो बराबर अपमान पर अपमान उठाना पड़ा है उसका एकमात्र कारण उसका अपना ही दोष है। गत सौ वर्षों में चीन को जितना अपमान सहना पड़ा है और उसके साथ जितनी असम संधियाँ हुई हैं उनमें से प्रत्येक अपमान और प्रत्येक संधि की एक-एक धारा हमारे सोचने-विचारने को यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत करती है। इसलिये मैंने इन बातों का ब्यौरेवार वर्णन किया है ताकि हमारी जनता भूतकाल के कष्ट और कठिनाइयों को समझे और भविष्य की जिम्मेवारी का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करे। ऐसा करके हमारी जनता जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ करेगी और सारी ताकत के साथ काम में जुट जाएगी ताकि वह आधुनिक युग की योग्य नागरिक हो सके और असम संधियों के रद्द होने से मिले नये सुयोगों से पूरा-पूरा लाभ उठा सके पर अगर

उसमें अभी तक भी आत्म अन्वेषण करने तथा भूत की गलतियों को सुधारने की योग्यता नहीं आई है और उल्टे वह आत्म संकीर्णता के ही पथ पर है तथा पुरानी ईर्षा और घृणा को पाले हुए है या अपने आडम्बर तथा आत्म तुष्टि की भावना से छुटकारा पाने का जबरदस्त विरोध करती है तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि ये सब हमारी राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से एकदम हेय हैं और जनता के तीन सिद्धान्त के आधारभूत तथ्यों से एकदम दूर पड़ते हैं। चूँकि अभी हाल में ही असम संधियाँ रद्द हुई हैं इसीलिये चीन के लोगों को सभी मामलों में और भी सतर्क और सजग होना चाहिए तथा अपना गौरव बनाए रखने के लिये अपनी शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए। भूत काल की बातों को भूल कर और पुरानी ईर्षा को मन से हटा कर अपने प्राचीन ऋषियों की भद्रोचित भावना की—जो एक महान् राष्ट्र के नागरिकों के लिये उपयुक्त है, रक्षा करनी चाहिए और मित्र राष्ट्रों के साथ हार्दिक सहयोग कर संसार के पुनर्निर्माण तथा विश्व शांति की रक्षा की जिम्मेवारी उठानी चाहिए।

हमारे मित्र राजों ने स्वेच्छा के चीन स्थित अपने विशेष अधिकारों और सुविधाओं को छोड़ दिया है जिनका उपभोग वे असम संधियों के कारण करते थे। उन्होंने चीन की स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये हम लोगों से नई संधि की है। इससे केवल यही सिद्ध नहीं होता है कि राष्ट्रीय क्रांति के पचास वर्षों में और जापानी आक्रमण के पूर्ण विरोध के साढ़े पांच वर्षों में चीनी जनता ने जो राष्ट्रीय जागरूकता प्रदर्शित की है उसे मित्र राष्ट्रों ने अच्छी तरह समझ लिया है बल्कि इससे यह प्रमाणित होता है कि धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों का यह युद्ध न्याय और ईमानदारी के लिये तथा मानव मात्र की समानता और स्वाधीनता के लिये है। यह चुङ् हा राष्ट्र के लंबे इतिहास में युगान्तरकारी घटना है। इतना ही नहीं, यह संसार के उज्ज्वल भविष्य को सम्मिलित रूप से निर्माण करने की दिशा में मित्र राष्ट्रों के क्रांतिकारी संघर्ष में नया और महत्वपूर्ण परिवर्तन है। वर्तमान हालत में जब कि आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ी जाने वाली लड़ाई का निर्णय समीप आता जा रहा है और जब मित्र राष्ट्रों और चीन के बीच समानता और स्वतंत्रता का संबंध स्थापित हो रहा है, हमारी जनता के लिये परम्परागत गुणों का विकास करना, चीन और मित्र राष्ट्रों के बीच के मैत्री बंधन को दृढ़ करना और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पारस्परिक सहायता

और सहयोग की भावना को बढ़ाने के लिये प्रयत्न करना विशेष आवश्यक हो गया है। वास्तव में चीनी जनता के लिये यह कर्तव्य और जिम्मेवारी निभाना आवश्यक है।

इस संबंध में मुझे जो कुछ कहना है उसका उल्लेख पहले ही ब्यौरेवार ढंग से उस संदेश में हो चुका है जिसे मैंने सैनिकों और सम्पूर्ण देश की जनता के नाम नई संधि के होने पर १२ जनवरी, सन् १९४३ को ब्राडकास्ट किया था। सुविधा के लिये मैं वह संदेश इस अध्याय के परिशिष्ट रूप में नीचे दे रहा हूँ।

मेरे देश भाइयो,

गत वर्ष १० अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन ने अपनी इच्छा से उन विशेष अधिकारों और सुविधाओं को छोड़ दिया जो उन्हें असम संधियों के कारण चीन में प्राप्त थीं। कल हमारी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र और ग्रेटब्रिटेन की सरकार के साथ चुङ् छिङ् (चुँकिंग) और वाशिंगटन में नई संधि की है जो समानता और पारस्परिक सहयोग पर आधारित है। मेरे देश भाइयो, छिङ् राज वंश के समय चीन और विदेशी राष्ट्रों के बीच हुई असम संधियों में जो प्रथम संधि हुई थी उसे पिछले वर्ष एक सौ वर्ष पूरा हो गया था पचास वर्षों की खूनी क्रांति और साढ़े पाँच वर्षों के आक्रमण विरोधी संघर्ष के बाद, जिसमें जनता ने महान बलिदान किया है, हम लोगों ने अन्त में असम संधियों को रद्द कर उसके एक सौ वर्षों के दुःखद इतिहास को शानदार कहानी में बदल दिया है। यह पुनरुत्थान चुङ् हा राष्ट्र के इतिहास का एक नया पृष्ठ ही नहीं है बल्कि संसार के मार्ग निर्देशन के लिये ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और अन्य देशों द्वारा समानता और स्वतंत्रता का प्रकाश स्तम्भ स्थापित करना भी है। ऐसा करके संयुक्त राजों (United nation) ने जो इस युद्ध में हमारे सहयोगी हैं, यह सिद्ध कर दिया है कि वे मानवता और न्याय के लिये लड़ रहे हैं। यह कार्य वास्तव में अमरिकी और अँग्रेजी सरकार तथा उनकी जनता के लिये बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और सम्मान का है। खास कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का व्यवहार तो इतना प्रशंसनीय है कि वह हमारी आशा-आकांक्षा के साथ मिलकर एक हो गया है और अपने लिये किसी तरह का संरक्षण नहीं रखा है।

ब्रिटिश और अमरिकी सरकार के इस कार्य से मित्र राष्ट्रों की युद्ध-शक्ति में जहाँ दृढ़ता आ गई है वहाँ इससे आक्रमक राष्ट्रों के साहस पर बड़ा ही भयंकर आघात पहुँचा है। जो कुछ हो, हमारे देश-वासियों को यह समझना चाहिए कि स्वाधीनता और स्वतंत्रता ऐसी वस्तु है जो "अपने प्रयत्नों से ही प्राप्त की जाती है। मैंने अपने देशवासियों से बराबर कहा है कि 'जब हम अपने पावों पर खड़े हो सकेंगे तभी हम स्वतंत्र हो सकते हैं और जब हम अपने राष्ट्र को शक्तिशाली बना सकेंगे तभी हम स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं।" चीनी प्रजासत्तात्मक राज तभी स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्र हो सकता है जब उसमें अपने पावों पर स्वयं खड़े होने की शक्ति हो और वह अपने को शक्तिशाली बनाए। हमारी जनता तथा हमारी सेना और नागरिक तभी स्वतंत्र और स्वाधीन हो सकते हैं जब उनमें भी अपने पावों पर स्वयं खड़े होने की शक्ति आए और वे अपने को शक्तिशाली बनाएँ। इसलिये असम संधियों के रद्द होने तथा स्वतंत्रता और स्वाधीनता के मिल जाने से हमारे राष्ट्र की जिम्मेवारी बढ़ जाती है और हमारी जनता में आत्मश्लाघा और आत्मतुष्टि के बदले अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति जागरूकता पैदा होती है। अब से अगर हमारी जनता चीन को पूर्ण स्वतंत्र और स्वाधीन बनाने तथा मानवता के प्रति अपने कार्य को पूरा करने के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य को नहीं निभाती है तो हमारी स्वाधीनता और स्वतंत्रता पुनः नष्ट हो जाएँगी और इस वर्तमान युद्ध के समाप्त होने के बाद सम्पूर्ण चीनी राष्ट्र को पूर्ववत बंधनों और उनसे पैदा होने वाले असीम दुःख और पीड़ा का शिकार होना पड़ेगा। अगर अभाग्यवश ऐसी बात हो जाय तो हम नहीं जानते कि हमें पुनः अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये कितने सौ वर्षों की प्रतीक्षा करनी होगी और हमारी भविष्य की संतानों को तो सदा ही गुलामों और भारवाही पशुओं की तरह दुःखद जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। एक शब्द में कहें तो चीन का भविष्य उसकी आज के संतानों के ऊपर निर्भर है। हमारे पूर्वजों ने जो विस्तृत भूभाग हमारे लिये छोड़ रखा है उसकी रक्षा के लिये तथा भविष्य की संतानों के अस्तित्व तथा सुख-सुविधा के लिये हम सब आज से—जब हमने अपनी

स्वाधीनता और स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है—अपने देश की सेवा करने का संकल्प कर लें और संगठित हो अपने राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के कर्त्तव्य को पूरा करें ताकि उसमें अपने पावों पर स्वयं खड़ा होने की शक्ति आ जाय।

आक्रमक राष्ट्रों के विरुद्ध लड़े जाने वाले इस विश्व युद्ध में हमारी विजय होगी यह तो अब नजरों के सामने है। निकट भविष्य में निर्दय जापानी आक्रमणकारियों का और उनके सहयोगी जर्मनी और इटली का निश्चय ही पतन होगा और अगला वर्ष हमारे आक्रमण विरोधी युद्ध का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्ष होगा। कुछ लोग ऐसे हैं जो सोचते हैं कि वर्तमान युद्ध के समाप्त होने के बाद जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होगा उसी में चीन के भविष्य का भी निर्णय होगा। फिर दूसरे प्रकार के लोग हैं जो यह सोचते हैं कि आक्रमण विरोधी युद्ध में सफलता पूर्वक विजय प्राप्त करने के बाद दूसरे राष्ट्रों के समान ही आज जो स्थान चीन ने प्राप्त कर लिया है, उसके कारण स्वतः चीन न्याय और शांति का उपभोग कर सकेगा; अतः हमारे लिये चिंता की कोई बात नहीं है। इस प्रकार की धारणाएँ आत्मश्लाघा, आत्मतुष्टि, और आत्म विश्वास के अभाव तथा दूसरों के अंधानुकरण करने के फलस्वरूप उत्पन्न मनोविकार के कारण हैं। हमारे लोगों को इस प्रकार की मूढ़ता से पूर्णतः सचेत रहना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि चीन के भाग्य निर्णय का समय अभी ही है जबकि हम अपने राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न में लगे हैं। हमें युद्ध की समाप्ति के बाद होने वाले शांति सम्मेलन की हाथ पर हाथ रखे बाट नहीं जोहनी है। चीन आज ऐसी स्थिति में है कि उसे आज ही निर्णय कर लेना है कि वह संसार में अपना अस्तित्व बनाए रखेगा या मिट जाएगा; वह अपना विधाता स्वयं रहेगा या दूसरों का गुलाम बनकर रहेगा। क्या हम जीवित रहना चाहते हैं या मिट जाना चाहते हैं? क्या हम अपना मालिक स्वयं बनेंगे या दूसरों का गुलाम बनकर रहेंगे? इनमें से कोई एक बात हमें आज ही चुन लेनी है। आज से हम में से किसी को भी असावधान न रहना चाहिए और न गड़बड़ करने की चेष्टा ही करनी चाहिए। हम दुविधा और हिचकिचाहट

में एकदम नहीं रहना चाहते। गत पाँच वर्षों से अपने शत्रु से लोहा लेने में जितनी कठिनाइयाँ और दुःख हमें उठाने पड़े हैं उनसे भी अधिक दुःख और कठिनाइयों को झेलने के लिये हमें आज से तैयार रहना चाहिए और तेजी से हमें आगे बढ़ना चाहिए क्योंकि वर्तमान स्थिति हमारे लिये सुस्त जीवन व्यतीत करने की एकदम नहीं है। मेरे देश भाइयो, आज तक तो हमारे इस कथन का अर्थ था कि असम संधियों के बने रहने से ही हमारी क्रांति और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य असफल होता है। गत शताब्दी में चीन को असम संधियों के तरह तरह के दबाव के कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा है और इससे राजनीतिक फूट और बुरी सामाजिक प्रवृत्तियाँ पैदा हुई हैं तथा हम आर्थिक विकास में पिछड़े रह गए हैं। इन सबों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ है कि हमारी जनता कायर हो गई है तथा यह भूल गयी है कि वह अपनी रक्षा स्वयं कैसे कर सकती है। नैतिक मापदंड के नीचा हो जाने से उसमें सम्मान की भी भावना नहीं रही है। इसलिये वर्तमान समय तक पहुँचते पहुँचते चीनी जनता का नैतिक पतन और आत्म विश्वास का अभाव अपनी चरमावस्था तक पहुँच गये हैं। ये सब प्रत्यक्षया अप्रत्यक्ष रूप से असम संधियों के ही परिणाम हैं। विदेशी रियायती क्षेत्र और सैनिक निवास क्षेत्र तो दूषित रीतिरिवाज तथा बुरी आदतों के घर थे। चूँकि अब असम संधियाँ रद्द हो गई हैं इसलिये उनसे उत्पन्न गंदी बातें भी नहीं रह सकेंगी और दूषित रीति-रिवाज तथा बुरी आदतों का अवश्य ही उन्मूलन होगा। साथ साथ जिन कारणों से इस तरह की बुरी बातें पैदा हुईं और जो लोग इन रीति-रिवाजों और आदतों के शिकार हुए अब दूसरों पर दोष नहीं मढ़ सकेंगे। गत सौ वर्षों के बीच जो बुराइयाँ उत्पन्न होकर जमा होती गई हैं वे अब भी हमारी जनता के जीवन में तथा हमारे रीति-रिवाज और आदतों में छिपे रूप से बनी रह सकती हैं। इतना ही नहीं उनके द्वारा अलक्षित रूप से स्वार्थपूर्ण आकांक्षाएँ और सामंतवादी विचार बने रह सकते हैं जो आकांक्षा और विचार वर्त्तमान समय की माँग के विरुद्ध पड़ते हैं, राष्ट्रीय क्रांति के लिये अड़चन हैं और हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के लिये खतरनाक हैं। इसलिये हमारी जनता एक चित्त और एक उद्देश्य से परस्पर एक दूसरे को उत्साहित करे, अपनी पिछली

गलतियों के लिये दिल से पश्चाताप करे और दूषित रीति-रिवाज और बुरी आदतों से एकदम अपना पिंड छुड़ाए ताकि जनता के तीन सिद्धान्तों में समान रूप से विश्वास कर उसकी प्रेरणा से प्रतिरोध युद्ध में सफलता प्राप्त करने के महान् कार्य में अपने को लगाए और इस प्रकार राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य को पूरा करे।

राष्ट्रीय क्रांति की सफलता के जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमें प्रयत्न करना है वह समूचे राष्ट्र के सामने बहुत पहले ही स्पष्ट तौर पर रख दिया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमारी जनता द्वारा किए महान् और श्रेष्ठ सामूहिक प्रयत्नों पर ही चीन का भविष्य निर्भर करता है। हम अपने राष्ट्रपिता डा० सुन् यात् सन् के आदेशों का ईमानदारी पूर्वक पालन करें, जनता के तीन सिद्धान्तों में विश्वास रखें, राष्ट्रीय क्रान्ति की योजना का अनुसरण करें, राष्ट्रीय सरकार के कानून का पालन करें और हम लोगों पर जो जिम्मेवारी आ पड़ी है उसे मन और हृदय से ईमानदारी और श्रद्धा के साथ निभाएँ, हममें से सब के सब युद्धकालीन जीवन व्यतीत करें, चीजों के दाम के नियंत्रण की योजना को सफल बनाएँ, क्रियाशील सामरिक संगठन के नियम का पालन करें, मितव्ययी बनें और उत्पादन बढ़ाएँ ताकि एक तरफ तो हमारे प्रतिरोध की शक्ति बढ़े और दूसरी ओर हमारे मानसिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्य पूरा हो ताकि हम थोड़े समय के भीतर ही अपनी संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा के सामंजस्य के लिये पुनर्निर्माण की सारी योजना कार्यान्वित कर लें।

मेरे देश भाइयो, आज जब चीन के भाग्य की धारा दूसरी ओर मुड़ रही है हमारे लोगों के लिये अपने देश की सेवा करने का सबसे सुन्दर अवसर है। साथ साथ हमें अपने को भाग्यशाली समझना चाहिए कि हम एक ऐसे असाधारण युग में रह रहे हैं जब कि भूत के हमारे सभी अपमान धुल गए और हमने अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर ली; अतः हमें अपने देश को शक्तिशाली बनाने का अवसर मिल गया। एक बात और—ऐसे अवसर पर जबकि चीन का भाग्य अनिश्चित है हमें सावधानी से

अपना काम करना चाहिए और अशिष्ट व्यवहार न होने पाए इसके लिये सतर्क रहना चाहिए। पर सबसे आवश्यक तो यह है कि हममें आत्म सम्मान की भावना होनी चाहिए। चूँकि अब हमारा राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ समानता के दर्जे पर है इसलिये मित्रराष्ट्रों के नागरिक जो चीन में हैं उनकी रक्षा का भार भी अब हमारी सरकार पर ही है। हमें उन सभी विदेशी नागरिकों के साथ, जिनका व्यवहार हमारे साथ समानता का होता है और जो चीनी कानून का पालन करते हैं चाहे वे पर्यटक हों, सौदागर हों या धर्मप्रचारक हों, चीन की परम्परागत भावना के अनुकूल नम्रतापूर्वक और मित्रवत व्यवहार करना चाहिए क्योंकि चीन नम्रता और न्याय को सबसे अधिक महत्व देता है। मैं आशा करता हूँ कि हमारे देशवासियों को गत सौ वर्षों के इतिहास से जो शिक्षा मिलती है उस पर मनन करेंगे और शक्ति भर अपनी वर्त्तमान जिम्मेवारी को निभाएंगे। उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वे स्वतंत्रता की कोरी प्रतीक्षा कर अपने राष्ट्र की स्वाधीनता नहीं प्राप्त कर सकते। हमारे सब प्रकार के लोगों को नम्रता तथा न्याय पर अधिक ध्यान देना चाहिए, उन्हें ईमानदारी का ज्ञान होना चाहिए, उन्हें आत्म सम्मान की भावना का विकास करना चाहिए और एक चित्त तथा एक उद्देश्य से अपने प्रयत्नों को दुगुना बढ़ाना चाहिए तभी सच्ची विजय, समानता और स्वतंत्रता वे प्राप्त कर सकेंगे। एकमात्र इसी रास्ते से हम अपने मित्रराष्ट्रों के साथ विश्व निर्माण की जिम्मेवारी निभाने, विश्व शान्ति स्थापित करने और मानव मात्र की मुक्ति दिलाने के कार्य में पग बढ़ा सकेंगे। मेरे देश भाइयो, आज मैं असीम विश्वास और आशा के साथ अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता के इस चिरस्मरणीय दिन का स्वागत करता हूँ जो चुङ् हा राष्ट्र के नवीन भाग्य का जन्म दिन है। इस प्रतिरोध युद्ध के प्रारम्भ से ही बलिदान करने और कष्ट उठाने के अतिरिक्त आपने जिस देशभक्ति की भावना से मेरे साथ मिलकर खतरों और कठिनाइयों का सामना किया है उनके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं हृदय से कामना करता हूँ कि हमारे उन शहीदों, सैनिकों और नागरिकों की आत्मा को शान्ति मिले जिन्होंने अपने देश के लिये जीवन की बलि चढ़ा दी। अन्त में हम

मिलकर अपने विजय की कामना करें।

चीनी प्रजातन्त्रात्मक राज की स्वाधीनता और समानता अमर हो!

राष्ट्रीय क्रांति की सफलता चिरंजीवी हो!

जनता के तीन सिद्धान्त जिन्दाबाद!

चौथा अध्याय

उत्तरी अभियान से प्रतिरोध युद्ध तक

१

चुङ् क्वो क्वोमिनताङ् का पुनर्गठन और 'जनता के तीन सिद्धान्तों' के कार्यान्वित करने की अवस्थायें

सन् १९१४ ई० (प्रजातन्त्र संवत् ३) में राष्ट्रपिता डा० सुन यात्-सन् ने क्वोमिन्ताङ् (जनता का दल) का नाम बदल कर चुङ् ह्वा-क-मिन्-ताङ् कर दिया। पर बारबार होने वाली असफलताओं के कारण वे इस नतीजे पर पहुँचे कि पार्टी का दृढ़ संगठन किए बिना उससे राष्ट्र की क्रांतिकारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। तदनुसार सन् १९१९ ई० (प्रजातंत्र संवत् ८) में उन्होंने चुङ् ह्वा-क-मिन्-ताङ् का पुनर्गठन किया और पुनः उसका नाम बदल कर चुङ् क्वो क्वो मिनताङ् रखा। जनवरी, सन् १९२३ ई० (प्रजातन्त्र संवत् १२) में चुङ् क्वो क्वोमिनताङ् का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ, इसी साल नवम्बर में पार्टी के पुनर्गठन की घोषणा की गई तथा जनवरी, १९२४ (प्रजातन्त्र संवत् १३) में कुआङ् चउ (केन्टन) में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस प्रकार पार्टी के पुनर्गठन का कार्य पूरा हुआ।

जनता के तीन सिद्धान्त हमारी राष्ट्रीय क्रांति के उच्चतम और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त हैं। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्घाटन सभा में राष्ट्रपिता डा० सुन यात्-सन् ने निम्न वक्तव्य दिया था—"जनता के जिन तीन सिद्धान्तों का समर्थन हम लोग करते हैं वे अपरिवर्तनीय हैं और उन्हें हमें पूरा पूरा कार्यान्वित करना है। शुङ् मङ् हुइ की स्थापना के पहले ही इन सिद्धान्तों का जन्म हुआ था और इन्हें कार्यान्वित करने के लिए ही शुङ् मङ् हुइ की स्थापना की गई थी। मांचू राजवंश को समाप्त कर प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना करने का भी यही उद्देश्य था।" पार्टी के पुनर्गठन काल में राष्ट्रपिता का ध्यान मुख्य रूप से जिस बात पर गया वह यह थी कि इन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने की पद्धति क्या होगी। उन्होंने कहा था—"किसी भी कार्य की सफलता कार्य करने की अच्छी पद्धति पर पूर्ण रूप

से निर्भर करती है। अच्छी कार्य पद्धति कैसे बनती है? इसका उत्तर यह है कि वह शिक्षा और ज्ञान से पैदा होती है। शिक्षा से ज्ञान होता है और ज्ञान से कार्य पद्धति बनती है। अगर पद्धति ठीक है तो क्रांति के प्रारम्भ होते ही सफलता अवश्य मिलती है।"

चुङ्क्वो क्वोमिनताङ् के पुनर्गठन के समय राष्ट्रपिता ने क्रांतिकारी कार्यपद्धति को खोज निकालने तथा ईमानदारी से कार्य करने और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने पर बड़ा जोर दिया। पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो कार्य पद्धति अपनाई जाय उसमें विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन होता रहे—ऐसा न हो कि वह सब समय के लिये निश्चित हो जाय। सन् १९२१ ई० (प्रजातंत्र संवत् १०) में राष्ट्रपिता ने हम लोगों से कहा था—"काम करने के पहले अगर उसे समझ लिया जाय तो उसका करना आसान हो जाता है। आवश्यक बातों को बिना समझे ही अगर कोई किसी कार्य में लग जाता है तो उसे बहुत चक्कर लगाना पड़ता है, उससे भयंकर भूलें होती हैं और काम करना उसके लिये बड़ा कठिन हो जाता है। तो फिर क्यों लोग इन भयंकर भूलों और कठिनाइयों से बचने की कोशिश नहीं करते? इसका उत्तर है कि किसी चीज का समझना बहुत ही कठिन है। पूर्णरूप से समझकर अगर कोई कार्य प्रारम्भ करना हो तब तो सौ या हजार वर्षों के बाद ही प्रारम्भ हो सकता है। इसलिये लोगों को आवश्यक बातें बिना समझे ही अक्सर कार्य प्रारम्भ करना पड़ता है।" क्वोमिनताङ् के पुनर्गठन के समय जब क्रांतिकारी कार्यपद्धति पर काफी वाद-विवाद हुआ और काफी समझबूझ कर क्रांतिकारी कार्यों को करना निश्चित हुआ तब राष्ट्रपिता ने हम लोगों से कहा—"अगर हम वास्तव में अपने देश को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने की बात सोचते हैं तो हम एक अच्छी कार्य पद्धति निकाल सकते हैं। अगर हम कुछ समय तक अच्छी कार्य-पद्धति निकालने में असफल भी रहें फिर भी अगर हम आगे बढ़ते जाएँ और अपने प्रयत्नों को बराबर जारी रखें तो हमें अवश्य सफलता मिल सकती है।" *इसका अर्थ यह है कि क्रांतिकारी कामों के लिए क्रांतिकारी पद्धति भी चाहिए और इसके साथ साथ क्रांतिकारी कामों के अनुभव द्वारा क्रांतिकारी पद्धति में सुधार भी होना चाहिए। इसलिये कहा जा सकता है कि जनता के तीन सिद्धान्त तो अपरिवर्तनीय हैं पर उनके कार्यान्वित करने की पद्धति में परिवर्तन हो सकता है।*

राष्ट्रपिता ने चुङ्ह्वा-क-मिन्-ताङ् के पुनर्गठन का भार अपने ऊपर लिया क्योंकि उन दिनों पार्टी के सदस्य तथा जन साधारण कोई भी उनके सिद्धांतों को अच्छी तरह नहीं समझ सका था और न उनके प्रति लोगों में विश्वास जम सका था। उस समय की अवस्था के बारे में राष्ट्रपिता ने कहा था—"हमारी क्रांति अनेकों सैनिक विजय कर सकती थी फिर भी वह क्रांतिकारी उद्देश्य की प्राप्ति नही कर सकती क्योंकि हमारी पार्टी पूर्णरूप से संगठित नहीं थी। हमारे क्रांतिकारी सदस्य भी पार्टी अनुशासन के विरुद्ध बराबर अपने मन की करते थे। *उसमें न तो अखंड विश्वास के साथ अंधानुकरण की शक्ति थी और न स्वतंत्रता के आधुनिक विचारों के प्रति कोई सक्रिय उच्च भावना ही।*......उस समय मेरे सामने इसको छोड़ कोई दूसरा उपाय नहीं था कि मैं अकेला ही क्रांति का भार वहन करूँ और नई पार्टी चुङ् ह्वा-क-मिन्-ताङ् का पुनर्गठन करूँ।" उन्होंने यह भी कहा—"इस पर ध्यान दीजिए कि हमारी पार्टी जो मजबूत न हो सकी इसका कारण यह नहीं था कि हमें अपने प्रतिपक्षियों का विरोध सहना पड़ता था बल्कि इसका कारण यह था कि *हमारी पार्टी के भीतर ही आपस में संघर्ष चल रहा था और हमारे सदस्यों के बीच गलतफहमी फैली हुई थी जो उनकी अपरिपक्व भावनाओं और विचारों के कारण पैदा हुई थी।* इसलिये पार्टी कमजोर पड़ती गई और क्रांति असफल हुई।" इसीलिये जब उन्होंने चुङ् क्वो क्वोमिनताङ् का पुनर्गठन किया तो इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय क्रांति के उद्देश्य और पद्धति के अनुरूप हम में समान समझदारी, दृढ़ संगठन, कड़ा अनुशासन और काम करने की निष्ठा तथा संकल्प होना चाहिए।

राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य तो प्रथम क्वोमिनताङ् राष्ट्रीय कांग्रेस के घोषणापत्र में साफ-साफ बता दिया गया है। घोषणापत्र में राजनीति के संबंध में बताया गया है कि "विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ सभी युद्धअधिनायकों ने एक न एक तरह से गठबन्धन कर रखा है। तथाकथित प्रजासत्तात्मक सरकार पर युद्धअधिनायकों का ही प्रभुत्व है जो अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिये उसका उपयोग विदेशी शक्तियों की कृपा प्राप्त करने में करते हैं। इसके बदले विदेशी शक्तियाँ युद्धअधिनायकों के युद्ध कोष को भारी कर्ज देकर भर देते हैं ताकि चीन में गृह-कलह बराबर चलता रहे और उन्हें अधिक से अधिक अधिकार, सुविधायें और 'प्रभाव

क्षेत्र' हाथ लगते रहें। इस तरह चीन के गृह-कलह से विदेशी शक्तियों को लाभ होता रहा है। चीन स्थित विदेशी स्वार्थों के संघर्ष से भी चीन के युद्धअधिनायकों को बराबर गृह-युद्ध चलाते रहने में प्रोत्साहन मिलता रहा है और इस प्रकार हमारी जनता के खून की नदी बही है।" घोषणा-पत्र में हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के संबंध में कहा गया है कि "गृह-युद्ध से चीन का औद्योगिक विकास रुक गया है और उसके बाजार विदेशी माल से पट गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे उद्योग-धंधे अपनी ही भूमि पर विदेशी पूंजी से चलाए जाने वाले उद्योग-धंधों की प्रतियोगिता में नहीं टिक सके हैं। इससे वास्तव में बहुत कड़ी हानि हुई है क्योंकि चीन के केवल राजनीतिक जीवन का ही नहीं बल्कि उसके आर्थिक जीवन का भी निर्दयता के साथ शोषण हुआ है।" इसलिये राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य साम्राज्यवाद और युद्धअधिनायक तंत्र को मिटा देना था। क्रांति का तात्कालिक कार्य था असम संधियों को रद्द करना और युद्धअधिनायकों का विनाश करना ताकि सैनिकवाद और साम्राज्यवाद की साझेदारी सदा के लिये समाप्त कर दी जाय।

थुङ् मङ्-हुइ के स्थापना-काल से ही राष्ट्रीय क्रांति विकास की कुछ निश्चित पद्धतियों और अवस्थाओं से गुजरी है। यह विकास हुआ है सैनिक शासन काल से राजनीतिक संरक्षण काल में और फिर वैधानिक शासन के रूप में। इस संबंध में मैं प्रसंगवश प्रथम क्वोमिनताङ् कांग्रेस के घोषणापत्र का एक उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ—"प्रथम अवस्था में यानी सैनिक शासन काल में पार्टी गठन होने के बाद उसके सदस्यों का ठोस संगठन कड़े अनुशासन द्वारा होना चाहिए। पार्टी के सदस्यों को सभी उचित तरीकों से *शिक्षित और सुयोग्य बनाना चाहिए ताकि वे पार्टी के सिद्धांतों का योग्यतापूर्वक प्रचार कर सकें, जन आन्दोलन का नेतृत्व कर सकें और राजनीतिक संगठन का भार उठा सकें।* साथ-साथ इस विचार से सब *जगह आन्दोलन चलाने की भरपूर चेष्टा होनी चाहिए कि जनता क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग ले ताकि पार्टी जनता के दुश्मनों को दबा सके और अपने हाथों में राजनीतिक प्रभुत्व ले सके।"* दूसरी अवस्था यानी राजनीतिक संरक्षण काल के संबंध में घोषणापत्र में कहा गया है कि "राजनीतिक प्रभुत्व हस्तगत करने और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के बाद भी पार्टी के ही हाथों में राजनीतिक नियंत्रण रहेगा ताकि देश के

प्रतिक्रियावादी आन्दोलनों और हमारी जनता के प्रयत्नों को असफल करने के विदेशी साम्राज्यवादियों के षड्यन्त्रों को सफलतापूर्वक रोका जा सके और पार्टी के सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने की सभी बाधाओं को दूर किया जा सके।"

चुङ् क्वो क्वोमिनताङ् के सब सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे जनता के मन में 'जनता के तीन सिद्धान्तों" को बैठा दें। क्योंकि जैसा कि राष्ट्रपिता ने कहा है—"*राज की नींव जनता की भावनाओं पर डाली जाती है।*" उन्होंने पुनः कहा है—"संसार में सब लोगों की मिली-जुली आकांक्षा जैसी वस्तु भी होती है। जब सब लोग एक ही उद्देश्य से काम करते हैं तो सफलता प्राप्त करना सरल हो जाता है, 'जन समूह की संगठित इच्छा दुर्ग के समान दृढ़ होती है।' राष्ट्रीय क्रांति का संकल्प मांचू राजवंश को उलट देना था और इसी कारण बाद में उससे (क्रांति से) प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना भी हो सकी। इससे इस सत्य का पता चलता है कि सफलता उसे ही मिलती है जिसके पास इच्छा-शक्ति है।" उन्होंने पुनः कहा है—"एक ही काम करने की सबों की इच्छा से जो शक्ति पैदा होती है वह लोकप्रिय शक्ति कहलाती है और वह बहुत ही प्रभावशाली होती है जैसी कि सन् १९११ के मांचू विरोधी आन्दोलन में थी।" सबों में समान आकांक्षा उत्पन्न हो और जनता की शक्ति केन्द्रित की जाय इनके लिये यह आवश्यक है कि *सब से पहले जनता को तीन सिद्धान्तों का सच्चा ज्ञान हो और राष्ट्रीय क्रांति का अर्थ समझा जाय।* इस *तरह के ज्ञान से लोगों के सोचने के ढंग में परिवर्तन होगा*, उनकी इच्छा शक्ति संगठित होगी और उनकी शक्ति एक वस्तु पर केन्द्रित होगी। इसलिये राष्ट्रपिता ने कहा है—"पहले हम लोग काम ही नहीं कर सकते थे क्योंकि हम में समझ का अभाव था।" उन्होंने पुनः कहा है—"पुराने लोगों का मत था कि समझना सरल है पर करना कठिन है। पर मेरा मत तो ठीक इसके विपरीत है कि समझना ही कठिन है, करना सरल है। *हमारे पहले के कामों में जो त्रुटियाँ और खराबियाँ थी वे भ्रमपूर्ण समझ के कारण थीं।* मेरे इस नये मत से चीनी लोगों के सोचने के ढंग में परिवर्तन होगा और उनके लिये किसी चीज को प्राप्त करना संभव हो जायगा।"

अपने इस मत के आधार पर ही कि 'समझना कठिन है पर करना सरल है' हमारे राष्ट्रपिता ने उस समय "राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना"

बनाईं "राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत बातें" लिखी और "जनता के तीन सिद्धान्त" पर व्याख्यान दिए। ये सभी हमारी राष्ट्रीय क्रान्ति के मार्ग प्रदर्शक हैं। यदि हमारे साथी राष्ट्रपिता की शिक्षाओं का पालन करें तथा उन्हें इस जिम्मेदारी की भावना से कार्यान्वित करें कि "दूसरे की भूख उनकी भूख है और कोई डूब रहा है तो वे स्वयं डूब रहे हैं" तथा "राष्ट्र के उत्थान या पतन की जिम्मेवारी हर व्यक्ति पर है" और यदि वे जनता का उनके एक दिल से मिलकर काम करने की सहयोगपूर्ण भावनाओं के विकास में पथ प्रदर्शन करें तो हम 'जनता के तीन सिद्धान्त' और 'पंच शक्ति विधान' के आधार पर अपने राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य को पूरा करने में अवश्य ही सफलीभूत होंगे।

डा० सुन यात्-सन ने क्रांति के सिद्धान्त और उद्देश्य को तथा उन्हें कार्यान्वित करने की अवस्थाओं और पद्धतियों को साफ साफ बता कर हम लोगों से एक बात की आशा की कि हम लोग संकल्प और अध्यवसाय के साथ व्यावहारिक कामों में जुट जाएँ। इसलिये उन्होंने बताया है—"अगर हम कभी संकल्प और अध्यवसाय से काम करते हुए आगे बढ़ते गए तो इस बार हमारी क्रांति निश्चय ही सफल होगी।" "संकल्प" से उनका अर्थ यह था *हम सभी दश वर्षों के अंदर चीन को संसार का सबसे समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र बना डालें* और "अध्यवसाय" से उनका मतलब था कि "यदि हम क्रांति के सच्चे अर्थ को समझते हैं तो हम में अध्यवसाय होगा ही। क्रांति के अपने निश्चित उद्देश्य होते हैं। अगर किसी को निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति करना है तो वह उसकी प्राप्ति के लिये आधे रास्ते में नहीं रुकेगा।"

इसी आधार पर चुङ् क्वो क्वोमिनताङ् का गठन हुआ है और इस की अपनी खास विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह अन्य देशों के राजनीतिक दलों से भिन्न है। 'जनता के तीन सिद्धान्त' का प्रारम्भ "कुङ्" यानी "लोकहित" से होता है और राष्ट्रीय क्रांति की सक्रिय भावना है "चङ्" यानी "सच्चाई"। "कुङ्" की बात लें तो 'जनता के तीन सिद्धांत' की महानता यह है कि जिसमें सभी विचारों को अपनाने तथा आत्मसात कर लेने की शक्ति है। "चङ्" (सच्चाई) का अर्थ है कि क्वोमिनताङ् के सदस्य 'जनता के तीन सिद्धान्त' पर गहरी आस्था रखें और "अच्छाई को दृढ़ता से पकड़ो" तथा "प्रारम्भ से अंत तक बिना हिचकिचाहट के प्रयत्न

में लगे रहो" वाले कथन का अनुसरण करें। वे राष्ट्रीय क्रांति की योजना को अपने कार्यों का पथप्रदर्शक समझें और पार्टी के नियमों पर दृढ़ रहें। संक्षेप में कहें, तो क्वोमिनताङ् के सदस्यों के लिये पार्टी अनुशासन और 'जनता के तीन सिद्धान्त' का पालन करना आवश्यक है। इन्हें छोड़ सदस्यों के व्यक्तिगत विचार स्वातंत्र्य पर कोई बंधन नहीं है। इसलिये क्वोमिनताङ् में राष्ट्रवादी, उदारवादी, समाजवादी तथा अराजकवादी सभी हैं। कल तक का क्वोमिनताङ् का दुश्मन भी अगर आज जनता के तीन सिद्धान्तों का पालन करना स्वीकार कर पार्टी का सदस्य हो जाता है तो उसके विरुद्ध किसी को कुछ भी शिकायत या शंका नहीं रहती है, चाहे भूत में वह कैसा भी क्यों न रहा हो और उसके विचार कितने भी भिन्न क्यों न रहे हों। उस पर पूरा विश्वास किया जाता है और पार्टी के अन्य सदस्यों के साथ साथ उसे भी पूरा सहयोग मिलता है। चूंकि क्योमिनताङ् का संगठन हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व को बचाए रखने तथा क्रांति द्वारा सभी लोगों की भलाई करने लिये हुआ है इसलिये उसकी भावना की अभिव्यक्ति इस प्राचीन कथन से होती है कि—"आकाश के नीचे सब कुछ लोकहित के लिये है।" हर चीनी नागरिक को अधिकार है तथा उसका कर्त्तव्य है कि वह क्वोमिनताङ् का सदस्य बने। क्वोमिनताङ् चीन की क्रांति और पुनर्निर्माण के कार्यों की देखभाल करने वाली केन्द्रीय संस्था है। इसलिये उसकी दृष्टि में उसके सदस्य तथा गैर सदस्य सब लोग समान हैं; वह उनके बीच कुछ भी भेद नहीं रखती। उसके ऊपर लोगों के मार्गप्रदर्शन और उन्हें योग्य बनाने की जिम्मेवारी है ताकि हर आदमी को विकास का अवसर मिले और उसमें यह योग्यता हो कि वह राष्ट्रीय क्रांति की सफलता के लिये कार्य करे, जनता के तीन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करे, अपने राज का पुनर्गठन करे तथा अपने राष्ट्र का पुनरुत्थान करे। किसी पेशे या वर्ग विशेष का न तो यह पक्ष करती है और न विरोध ही। इनके अलावा लिंग, धर्म, पेशा या वर्ग विशेष का भेद किए बिना क्वोमिनताङ् समान रूप से सब पर ध्यान देती है और उन्हें योग्य बनाती है तथा किसी भी योग्य व्यक्ति को सेवा करने के अवसर से वंचित नहीं रखती। यह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये समान संघर्ष में भाग लेने को हर देशभक्त नागरिक का स्वागत करती है। सारांश यह है कि 'जनता के तीन सिद्धान्त' का आधार है लोकहित और सच्चाई और इन्हें पूरा करने के लिये ही क्वोमिनताङ् की स्थापना हुई है। इसकी

नींव हमारे राष्ट्र के प्राचीन गुणों पर है और स्नेह, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता और उत्तरदायित्व की भावना से इसका संगठन किया गया है। इस माने में क्वोमिनताङ् भूतकाल की उन सभी राजनीतिक पार्टियों से भिन्न है जिनमें अनौचित्य या घृणित षड्यंत्र का बोलवाला रहता था और जिनमें लोग एक मात्र स्वार्थ पूर्ण इच्छायें लेकर प्रवेश करते थे। इसलिये यह अकारण ही नहीं है कि अपने जन्मकाल से आज तक के अड़तालीस वर्षों में क्वोमिनताङ् थाइ पर्वत[1] की तरह अडिग और ध्रुव तारे की तरह अचल रही है और अब नई शक्ति के साथ चीन की एकमात्र स्थायी क्रांतिकारी दल के रूप में प्रगति कर रही है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि क्वोमिनताङ् अन्य दूसरे राजनीतिक दलों की तरह काल गति में नष्ट नहीं हुई बल्कि यह तो उसके निःस्वार्थ और उदार नीति का फल है कि वह आज भी बनी हुई है।

२

उत्तरी अभियान की सफलता और क्रांति से प्राप्त शिक्षाएँ

सन् १९२४ (प्रजातंत्र संवत् १३) में क्वोमिनताङ् के पुनर्गठन के बाद सम्पूर्ण देश के सभी लोकप्रिय क्रांतिकारी आन्दोलन का जमघट "नीले आकाश में उज्ज्वल सूर्य" वाले झंडे (क्वोमिनताङ् का झंडा) के नीचे हुआ। यह सब ठीक प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ जब सम्पूर्ण संसार के सामने कितने ही प्रकार के आर्थिक संकट आ उपस्थित हुए थे तथा बहुत से देशों में क्रांतिकारी आन्दोलन उठ रहे थे। सोवियत रूस ने अपनी युद्धकालीन समाजवादी नीति में परिवर्तन कर नई आर्थिक नीति अपनाई और इस प्रकार उसने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दृढ़ नींव डाली, जब कि दूसरे राष्ट्र उत्सुकता से उसकी ओर दृष्टि लगाए रहे। तुर्की क्रान्ति को भी अपने राष्ट्र को स्वाधीन और स्वतंत्र करने में सफलता मिली। इससे एशिया के देशों में बड़े ही उत्साह और आशा का संचार हुआ। इन विश्वव्यापी घटनाओं के बीच हमारी राष्ट्रीय क्रांति से हमारे लोगों की भावनायें भी बढ़ीं, जनता की इच्छा शक्ति का एकीकरण हुआ, हमारे क्रान्तिकारी उद्देश्य स्पष्ट हुए, हमारे

(१) चीन के एक पर्वत का नाम। हम लोग जिस प्रकार जनता में "हिमालय पर्वत के समान अटल" कहते हैं उसी प्रकार चीनी लोग "थाइ पर्वत की तरह अडिग" का प्रयोग करते हैं।

क्रान्तिकारी प्रयत्नों में दृढ़ता आई और विदेशी साम्राज्यवादी तथा सामंत वादी युद्ध अधिनायकों के क्रान्ति विरोधी षड्यंत्र और तिकड़म विफल हुए। यद्यपि उन दिनों क्रान्ति का कार्य क्षेत्र क्वाङ् चउ (केन्टन) तक ही सीमित था पर क्रान्ति की भावनायें सम्पूर्ण देश में फैल चुकी थीं। उसी समय हमारे राष्ट्रपिता ने हुआङ् पु में क्रान्तिकारी सेना के अफसरों को शिक्षित करना प्रारम्भ किया और स्वयं छाव् खुन् के विरुद्ध हुए सैनिक अभियान का नेतृत्व किया। छाव् खुन् के पतन के बाद वे अस्वस्थ होते हुए भी उत्तर चीन गए और जनता की माँगों के अनुरूप उन्होंने सभी लोकप्रिय संस्थाओं से राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने की अपील की। उत्तर चीन को रवाना होने के ठीक पहले उन्होंने नवम्बर, सन् १९२४ ई० में जो घोषणापत्र प्रकाशित किया उसमें कहा—"*चीनी राष्ट्र का भाग्य हमारी जनता के आत्म संकल्प पर निर्भर है।" राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने की बात जो वे कहते थे उसका उद्देश्य यह था कि सम्पूर्ण देश की जनता को असम संधियों के रद्द करने तथा देश की राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने की बातों पर विचार करने का अवसर मिले।* उनकी यह भी हार्दिक कामना थी कि सेना में सुलझे विचार वाले लोग भर्ती हों जो अपनी सेवा जनता के लिये अर्पित कर सकें ताकि उन सबों की शक्ति से एक राष्ट्रीय सेना यानी जनता की सेना बने।

पर पइ चिङ् (पिकिङ्) सरकार को राष्ट्रपिता के राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने वाली बात एकदम मंजूर नहीं थी। चूँकि पइ चिङ् सरकार के अधिकारी विदेशी राष्ट्रों की दया दृष्टि पाने के आदी थे और वे विदेशी राजों के हस्तक्षेप से डरते थे इसलिये वे सब मन में विशेषतया राष्ट्रपिता के असम संधियों के रद्द करने के आन्दोलन को लेकर सशंकित हो उठे। पइ चिङ् के क्रांति विरोधी वातावरण के बीच भी राष्ट्रपिता ने निडर होकर दृढ़तापूर्वक अपने संघर्ष को जारी रखा। पर अपने प्रयत्नों में सफलता पाने के पूर्व ही वे अपनी अधूरी इच्छाओं के साथ १२ मार्च सन् १९२५ (प्रजातंत्र संवत् १४) को यह संसार छोड़ गए। पर अपने राजनीतिक वसीयतनामे में राष्ट्रपिता ने यह हार्दिक इच्छा प्रकट की है कि पार्टी के सभी सदस्य और सम्पूर्ण देश की जनता राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने तथा असम संधियों के रद्द करने की जिम्मेवारी उठाएँ। उनकी इच्छा थी कि ये बातें अविलम्ब की जाएँ। उस समय कुआङ् तुङ् के तुङ् चिआङ् (पूर्वी

नदी) के किनारे क्रांतिकारी सेना छुन् चुङ् मिङ् की विद्रोही सेना को दबाने में लगी हुई थी। अत्यन्त विषम परिस्थितियों के होते हुए भी क्रांतिकारी सेना को विद्रोही छुन् चुङ् मिङ् को दबाने में सफलता मिली। छुन् चुङ् मिङ् को दबाने के बाद कुआङ् तुङ् प्रान्त का संगठन किया गया और वहाँ ही 'सैनिक शासन काल' की दृढ़ नींव डाली गई। जुलाई, सन् १६२६ (प्रजातंत्रसंवत् १५) में क्रांतिकारी सेना ने अपने राष्ट्रपिता की अधूरी इच्छाओं को पूरी करने के लिये तुरत ही उत्तर चीन के युद्धअधिनायकों के विरुद्ध अभियान किया—यही उत्तरी अभियान कहलाता है। इस अभियान का उद्देश्य राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना द्वारा प्रचारित घोषणापत्र में यों कहा गया है—"क्रांतिकारी युद्ध का उद्देश्य जनता के तीन सिद्धान्तों के अनुसार एक स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित करना तथा देश और जनता की सुख-सुविधाओं को बढ़ाना है। इसलिये सभी क्रांतिकारी शक्तियों को जनता के तीन सिद्धान्तों के आधार पर संगठित होकर युद्ध अधिनायकों और साम्राज्य-वादियों को जिनकी सहायता पर युद्ध अधिनायक टिके हुए हैं उखाड़ फेंकना चाहिए।" इसलिये जहाँ कहीं भी राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना गई राष्ट्रीय आन्दोलन फैल गया और उसकी शक्ति बढ़ने लगी। उसी समय ३० मई १६२५ ई० की तथा हान् खउ और शा चि की दुःखान्त घटनायें घटीं जिनसे राष्ट्रीय आन्दोलन को और भी बल मिला। चीन की क्रान्तिकारी शक्ति का अंदाजा लगा कर ब्रिटिश सरकार ने "नौ शक्ति संधि" पर हस्ताक्षर करने वाले सभी देशों के सामने एक मेमोरेन्डम् रखा कि "सम्राट् की सरकार का यह प्रस्ताव है कि इन सभी देशों की सरकार चीन की वस्तुस्थिति की सभी आवश्यक बातों के संबंध में अपना अपना वक्तव्य प्रकाशित करें तथा यह घोषित करें कि जैसे ही चीन के लोग अपनी सरकार का संगठन कर उसे समझौता करने का अधिकार देंगे हम सब संधि में संशोधन करने तथा अन्य प्रकार के प्रश्नों पर समझौता करने के लिये तैयार मिलेंगे तथा अपनी यह इच्छा भी प्रकट करें कि जब तक ऐसी सरकार का गठन नहीं होता हम सब वाशिंगटन सम्मेलन की भावना से साम्राज्य रखती हुई पर वर्तमान काल की परिवर्तित स्थिति के अनुसार उपयोगी और विकसित रचनात्मक नीति का अनुसरण करेंगे।" अमरिकी सरकार के वैदेशिक विभाग के मंत्री श्री केलॉग (Mr. Kellogg) ने अपने एक सरकारी वक्तव्य में इस बात की इच्छा प्रकट की कि अमरिकी सरकार चीन की एकता और स्वाधीनता का

आदर करती है और वह चीनी राष्ट्र का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार के साथ व्यापार कर के स्वायत्त प्रबन्ध तथा वहिर्देशीय अधिकार को रद्द करने की बातों के संबंध में समझौता करने को तैयार है। अभाग्यवश राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सेना द्वारा नान् चिङ् पर अधिकार करने के बाद नान् चिङ् में एक दुःखद घटना घटी। ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जापान, फ्रांस और इटली ने चीन सरकार को एक सम्मिलित पत्र भेजा जिस में चीन से बड़ी बड़ी मांगें की गई थीं। जो कुछ हो, जब राजधानी नान् चिङ् उठाकर लाई गई तो एक ओर चीन और दूसरी ओर ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और इटली इनके बीच इस मामले का संतोषजनक समझौता हो गया। केवल एकमात्र जापान ही ऐसा बदमाश निकला जो चीन की राष्ट्रीय क्रान्ति को नहीं समझ सका और, उसके साथ तो सन् १६३० ई० (प्रजातंत्र संवत् १६) में जाकर इस मामले का आंशिक रूप से समझौता हो सका। इस बीच नौ महीनों के भीतर ही छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) काँठों से राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सेना ने पइ याङ् गुट के विभिन्न युद्ध अधिनायकों का प्रभाव एकदम से मिटा दिया। इस प्रकार थोड़े समय में ही भीतरी-बाहरी कठिनाइयों से घिरे रहने पर भी सम्पूर्ण चीन को पूर्णरूप से संगठित करने का प्रथम शिलान्यास हुआ।

उस काल पर जब हम आज दृष्टि डालते हैं तो हमें अपने राष्ट्रपिता द्वारा कहीं बातें याद हो आती हैं जो उन्होंने प्रथम क्वोमिनताङ् राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्घाटन भाषण में बताई थीं। मैं पुनः उनकी बातों का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता कि "*इस पर ध्यान दीजिए कि हमारी पार्टी जो मजबूत न हो सकी इसका कारण यह नहीं था कि हमें अपने प्रतिपक्षियों का विरोध सहना पड़ता था, बल्कि इसका कारण यह था कि हमारी पार्टी के भीतर ही आपस में संघर्ष चल रहा था*......... इसलिये पार्टी कमजोर पड़ती गई और बराबर क्रांति असफल हुई।" दूसरे शब्दों में कहें तो बिना भीतरी गड़बड़ी के बाहरी आक्रमण नहीं हो सकता। यह बात किसी देश के लिये जितनी सत्य है उतनी ही किसी पार्टी के लिये भी सत्य है। जब राष्ट्रीय क्रांति की प्रमुख शक्तियाँ संगठित होकर एक हो गई तो युद्धअधिनायकों की शक्ति का ह्रास हो गया और विदेशी राष्ट्रों के दिलों में हमारे देश और हमारी जनता के लिये सम्मान की भावना पैदा हुई तथा दूसरे देशों के साथ हमारा अच्छा

राजनीतिक संबंध स्थापित हुआ। पर जब क्रांति का भविष्य अभी भी डाँवाँडोल ही था, अभाग्यवश हमारी राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना में फूट पड़ गई। हमारे राष्ट्रपिता ने जिस प्रमुख कर्त्तव्य का भार हम लोगों के ऊपर डाला था तथा जो महान कार्य जनता के ऊपर सौंपा था वह अध बीच में ही पूरी तरह चौपट हो गया। यह हमारे देश के इतिहास का एक बड़ा ही दुःखान्त अध्याय है।

इस काल में वाङ् चाव्-मिङ् (वाङ् चिङ्-वइ) तथा समाजवादी दल द्वारा सन् १६२६-२७ (प्रजातंत्र संवत् १५-१६) में की गई भयङ्कर कारवाइयों से तथा उनके द्वारा क्वोमिनताङ् तथा राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना में फूट के बीज बो दिए जाने से क्वोमिनताङ् तथा राष्ट्रीय क्रांति प्रायः ध्वंस ही हो गई। ऐसी परिस्थिति में क्वोमिनताङ् को विचार करना पड़ा कि उसकी समाजवादियों के प्रति सहिष्णुतापूर्ण नीति ठीक है या नहीं। मुझे विस्तार-पूर्वक उस कहानी को दुहराने में बड़ा दुःख होता है। पर्दे के पीछे वाङ् चिङ् वइ और समाजवादियों के बीच क्या-क्या हुआ वह मेरे लिये पहेली ही बना रहा। क्या वाङ् चिङ् वइ ने लाभ उठाया या क्या कम्युनिस्टों ने वाङ् चिङ्-वइ से लाभ उठाया ? या क्या वाङ् चिङ् वइ और कम्युनिस्ट दोनों ने एक दूसरे से लाभ उठाया ? ये प्रश्न मेरे लिये बराबर गुत्थी ही बने हुए हैं। फिर कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे यह साफ़ पता चलता है कि वाङ् चिङ्-वइ और कम्युनिस्ट निश्चय ही मिल कर काम करते थे—विशेष कर वाङ् चिङ् वइ और छन् तु शिउ की सम्मिलित घोषणा से तो ऐसा ही जान पड़ता है। जो कुछ हो, यह तो स्पष्ट ही हो चुका है कि कम्युनिस्ट जो व्यक्तिगत हैसियत से क्वोमिनताङ् में शामिल हुए थे, क्वोमिनताङ् के प्रति भक्ति बनाए रखने की अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को नहीं निभा सके। साथ-साथ वे राष्ट्रीय क्रांति को प्रजातंत्रात्मक पूँजीवादी क्रांति मानते थे। इसलिये उन लोगों ने राष्ट्रीय क्रांति की प्रगति का लाभ उठा उसे सर्वहारा सामाजिक क्रांति के रूप में बदलना चाहा। उनकी राय में क्वोमिनताङ् कोई राजनीतिक पार्टी नहीं थी बल्कि एक राजनीतिक संघटन था जिसमें विभिन्न वर्ग के लोग शामिल थे। क्वोमिनताङ् की प्रगति से जो सुयोग पैदा हो गया था उसका उपयोग वे अपने संगठन को मजबूत बनाने में करना चाहते थे। इन बातों को तो छन् तु शिउ तथा अन्य कम्युनिस्ट नेताओं ने खुले आम तथा बराबर शिन् छिङ् निएन् (नवयुवक) शिआङ् ताव् (मार्ग दर्शक) और

दूसरी पत्रिकाओं में प्रकट किया है। कम्युनिस्टों के कार्यों की ओर ध्यान दें तो उन्होंने क्वोमिनताङ् के दक्षिण पक्षीय और वाम पक्षीय सदस्यों के बीच झगड़ा लगा दिया। जन साधारण के बीच उन्होंने सामाजिक क्रांति द्वारा वर्ग संघर्ष का आंदोलन मचाया। वर्ग संघर्ष का नारा लगा उन्होंने मजदूरों और किसानों को अपना हथियार बनाया तथा उन पर कम्युनिस्ट पार्टी का एकाधिकार मानने लगे। इस प्रकार उन्होंने उत्पादन ही बंद करा दिया। दूसरी आर्थिक और सामाजिक हानियों का तो इसी से अंदाज लगाया जा सकता है। जो विद्यार्थी ध्यानपूर्वक पढ़ने में लगे रहे उन पर तो 'क्रांतिविरोधी' होने का कलंक लगाया गया और जो अनियंत्रित तथा उच्छृङ्खल जीवन व्यतीत करते थे उनकी 'प्रगतिवादी युवक' कह कर प्रशंसा की जाती थी। कम्युनिस्ट लोगों ने युवकों से अपने परम्परागत गुणों को छोड़ देने की सलाह दी। यहाँ तक कि उन्होंने औचित्य, न्यायनिष्ठता, चारित्र्य और प्रतिष्ठा की भावना को फूहड़ तथा मातृ-पितृ भक्ति, भाई चारे, राजभक्ति और विश्वासपात्रता की भावना को सड़ा-गला गुण बताया। इस प्रकार उन्होंने अपने को इतना नीचे गिरा दिया कि उनका ऊपर उठना प्रायः असंभव हो गया। इसके अतिरिक्त सन् १९३१—१९३६ के बीच (प्रजातंत्र संवत् २०—२५) कम्युनिस्टों ने दक्षिण चिआङ् सि, पूर्व हु-नान्, पश्चिम अन्-ह्वइ, दक्षिण ह-नान् पश्चिम हु-पइ, स-चुआन् और शन्-सि और दूसरी जगहों पर तलवार की नीति अपनाई और वे जहाँ कहीं भी गए उन्होंने देश को उजाड़ डाला तथा लोगों को लूट लिया। अब चूँकि घाव भर गया है इसलिये हम उस पर विचार कर सकते हैं। जब हम इन सब का कारण ढूँढ़ते हैं तो हमें पता चलता है कि इनका कारण "हान् खउ-नान् चिङ् फूट" जैसी दुःखान्त घटना थी। इस नाटक का अभिनय पूर्णरूप से विश्वास-घाती वाङ् चिङ् वइ द्वारा किया गया था। इसके बाद ही राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना में फूट पड़ गई। इस आंतरिक विभेद के कारण उत्तरी अभियान की प्रगति जहाँ की तहाँ ही रुक गई। राष्ट्रीय क्रांति से हम लोगों को यह सबसे बड़ी शिक्षा मिली और राष्ट्रीय क्रांति के इतिहास की यह सबसे दुःखद घटना भी है। संक्षेप में कहें तो राष्ट्र के महान् कार्य तभी पूरे हो सकते हैं जब सभी लोग पूर्ण निष्ठा के साथ तथा लोकहित की भावना से कार्य में जुट जाएँ। अन्यथा होता यह है कि आपस में एक दूसरे को अपने स्वार्थ साधन का अस्त्र बनाते हैं और अपनी सफलता के लिये आपस में झगड़े, षड्यन्त्र

और नाना प्रकार के घृणित काम करते हैं। अन्त में इस शाश्वत नियम से वे नहीं बच सकते कि "निष्ठा होने से सफलता मिलती ही है" और "निष्ठा न होने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता।" इसलिये निष्ठा रहित कार्य का अंतिम परिणाम असफलता को छोड़ कुछ नहीं हो सकता। यह सत्य सब चीजों पर लागू होता है और इसलिये हमारी राष्ट्रीय क्रांति जो हमारे राष्ट्र का एक महान् कार्य है निश्चय ही अवसरवादिता या केवल संयोगवश सफल नहीं हो सकती। आज भी क्यों मुझे इन शब्दों को दुहराना पड़ रहा है? क्योंकि उपरोक्त काल में क्रांति से जो शिक्षा हमें मिली है वह इतनी दुःखदायी है, हमारे राष्ट्र की जो हानि हुई है वह इतनी बड़ी है और हमारे लोगों का बलिदान इतना भीषण है जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। *अगर उपरोक्त छः-सात वर्षों तक हमारे यहाँ गृह-युद्ध नहीं हुआ होता तो इस प्रतिरोध युद्ध में हमारी स्थिति कुछ भिन्न ही होती। यहाँ तक कि प्रशाँत क्षेत्र और संसार की स्थिति भी कुछ और ही होती और इस बात को निःसंदेह सभी स्वीकार करते कि जापान इतनी बड़ी मात्रा में चीन पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता और अगर वह चढ़ाई करता भी तो कब का खदेड़ दिया गया होता।* यह शिक्षा इतनी आवश्यक यथार्थ और मूल्यवान है कि हमें इसपर गंभीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए। कालान्तर में भी इस की विशेषताओं में कमी नहीं पड़ेगी। मैं हर देशभक्त और हर सक्रिय क्रांतिकारी से निवेदन करता हूँ कि वे अतीत की शिक्षाओं से लाभ उठाएँ। क्रांति के भविष्य को भी बीती घटनाओं से लाभ ही पहुँचेगा। इसीलिये मैंने बड़े जतन के साथ अपने क्रांतिकारी संघर्ष की बीती घटनाओं की चर्चा की है।

जनता के तीन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिये, राष्ट्रीय क्रांति के कामों को बढ़ाने के लिये, चीनी राष्ट्र की भावनाओं को बनाए रखने के लिये और अपनी सांस्कृतिक और नैतिक विरासत की रक्षा के लिये क्वोमिन-ताङ् ने सन् १६२७ (प्रजातंत्र संवत् १६) के वसंत में पार्टी की त्रुटियों को दूर करने की दिशा में मजबूत कदम उठाया। उस काल में राष्ट्रीय सरकार यद्यपि संकटापन्न अवस्था तथा फूट और घृणा के वातावरण से घिरी हुई थी फिर भी वह राष्ट्रपिता की क्रांतिकारी भावना के प्रति सच्ची बनी रही और अन्ततः उत्तरी अभियान को जारी रखने के लिये नानचिङ् को राजधानी बनाने में सफल हुई। सचमुच ही उत्तरी अभियान में कुछ प्रगति हुई थी पर

क्रांति के केन्द्रस्थल में ही गड़बड़ी मची रहने के कारण वह रुक गई। दूसरे वर्ष (सन् १६२८) के मार्च महीने में पुनः अभियान प्रारम्भ हुआ। जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन को संगठित होते देख क्रांतिकारी सेना को उत्तर बढ़ने से रोकने के लिये अपनी सेना चि नान् भेजी ताकि हम वाध्य होकर अपने उत्तरी अभियान की योजना छोड़ दें। जापान की कुत्सित अभिलाषा के रहते हुए भी राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना ने अपनी मूल योजना के साथ अपनी उत्तरी यात्रा को जारी रखा। जून के प्रारम्भ में ही चीन की पुरानी राजधानी पइ चिङ् पर अधिकार कर लिया गया और इस प्रकार उत्तरी अभियान का लक्ष्य पूरा हुआ। उसी साल के अंत में उत्तर-पूर्व प्रान्तों (मंचूरिया) ने भी राष्ट्रीय सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित की और इस प्रकार देश को संगठित करने की पहली अवस्था पूरी हुई।

चि नान् में घटित "३ मई की घटना" के फलस्वरूप राष्ट्रीय सरकार और राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना को जापानियों के हाथों बड़ा अपमान उठाना पड़ा और जनता ने भी उनकी भर्त्सना की। उस समय मैंने अधिकारियों और सैनिकों को यह सलाह दी थी कि "अगर हम अपने राष्ट्र पर किए गए अत्याचार का प्रतिकार चाहते हैं, अपने राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध चाहते हैं, साम्राज्यवाद के दबाव से चीन को मुक्त करना चाहते हैं और अपनी स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता चाहते हैं तो हमें फिलहाल, अपमान सह लेना होगा और जिम्मेवारी निभानी होगी। हमें याद रखना चाहिए कि हमने क्या क्या तकलीफें उठाई हैं और हमने अपनी राष्ट्रीय शक्ति को बढ़ाने में तथा अपने लोगों को शिक्षित तथा योग्य बनाने में दस-दस साल लगाने का इरादा किया है। हमें अपने प्राचीन महात्माओं और वीरों में उत्साह वर्द्धक दृष्टान्तों का अनुसरण करने की चेष्टा करनी चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि इस रीति से हमारे खोए हुए भूभाग भी हमें पुनः प्राप्त हो जाएंगे और हमारा राष्ट्रीय अपमान भी धुल जायगा। तब स्वतंत्रता और समानता के आधार पर बनी नव विश्व व्यवस्था का प्राप्त करना कठिन नहीं होगा।" "३ मई की घटना" के बाद ये उपरोक्त शब्द ऊपर से नीचे तक के हमारे सब अफसरों और सैनिकों के मन में एकदम से बैठ गए हैं और उनसे ही उनका मार्ग प्रदर्शन होता है। गत पन्द्रह वर्षों से हमारे अफसरों और हमारे लोगों ने एक दिन के लिये भी उन्हें नहीं भुलाया है।

उत्तरी अभियान की सफलता हमारे इतिहास का एक शोकपूर्ण पर

वीरता से भरा हुआ और शानदार अध्याय है। इससे चुङ् ह्वा लोगों (चीनी लोगों) के राष्ट्रीय जीवन की धारा ही बदल गई जो विदेशी साम्राज्य-वादियों के अधीन असम संधियों के एक शती प्राचीन बन्धन से बंधी हुई थी। इससे चुङ् ह्वा लोगों के मन का विकास हुआ तथा उनकी भावना को शक्ति मिली और चीन की एकता तथा सैनिक संगठन का प्रथम शिलान्यास हुआ। हमें याद आता है कि उन दिनों राष्ट्रीय सरकार को मिलाने के लिये विदेशी साम्राज्यवादी और क्रांतिविरोधी किन किन न्यायहीन और निर्दयतापूर्ण तरीकों से पेश आते थे। वे राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध गंदी अफवाहें उड़ाते थे, उसे बदनाम करते थे और उस पर कलंक लगाते थे और न जाने क्या क्या करते थे। फिर भी जनता ने पूरे विश्वास के साथ राष्ट्रीय सरकार का हार्दिक समर्थन किया, जिसने स्वाधीन चीन की स्थापना के लिये सभी कठिनाइयों को पार कर लेने का संकल्प कर लिया था हम अपनी जनता के विश्वास और समर्थन को कभी नहीं भूल सकते और हम उसके कृतज्ञ हैं। राष्ट्रीय सरकार की भावना दृढ़ और निर्भय है। राष्ट्रीय अधिवेशन बुलाने और असम संधियों को रद्द करने के संबंध में किये गए अपने राष्ट्रपिता के राजनीतिक वसीयतनामे का पालन करने के लिये राष्ट्रीय सरकार आगे बढ़ेगी और आधे रास्ते में नहीं लड़खड़ाएगी। इसने अपने उद्देश्य को पूरा करने तथा अपने राष्ट्रपिता और सब क्रांतिकारी शहीदों की पुण्य-स्मृति को गौरवान्वित करने की शपथ ली है।

३

नान् चिङ् राजधानी ले जाने के बाद राष्ट्रीय सरकार की आन्तरिक कठनाइयाँ और बाहरी खतरा

कष्ट और कठिनाइयों के बीच में और बाधा तथा असुविधाओं के रहते हुए भी उत्तरी अभियान का प्रारम्भिक कार्य सफलतापूर्वक पूरा हुआ। इसलिये राष्ट्रीय सरकार ने ध्वंसात्मक कार्य को छोड़ रचनात्मक कार्य की ओर ध्यान देना चाहा। सरकार की तो यह आशा थी कि देश की संगठित शक्ति द्वारा वह राष्ट्र को मुक्त कर सकेगी। राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना द्वारा पइ चिङ् और थिएन् चिङ् पर अधिकार कर लेने के बाद ही मैंने तुरन्त राष्ट्रपिता की समाधि के सामने आठ चीजें पूरी करने की प्रतिज्ञा की; जिनमें खासकर पिछली दो तो मैं बहुत दिनों से अपने मन में संजोकर रखता आया

था। इनमें एक तो उत्तरी अभियान के बाद पुनर्निर्माण कार्य से संबंध रखती थी। मैंने कहा था कि "विध्वंस के बाद पुनर्निर्माण कार्य सबसे आवश्यक हो जाता है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की अवस्थाएँ और कार्यक्रम तो हमारे राष्ट्रपिता ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत बातें' और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना' में साफ साफ बता दिए हैं। अगर हमारे सब साथी उन्हें ईमानदारीपूर्वक कार्यान्वित करने में लग जाएँ तो 'जनता के तीन सिद्धान्त' के आधार पर अपने राष्ट्र का निर्माण करना कठिन नहीं होगा और इस प्रकार हम राष्ट्रीय क्रांति के कार्य को पूरा कर लेंगे। यह स्पष्ट है कि इस अवसर पर जबकि सैनिक काम में हमें सफलता मिल चुकी है अगर क्रांतिकारी पुनर्निर्माण की विशेषताओं को दिखलाने के लिये हम राजनीतिक सुधार नहीं करते हैं तो हमारी जनता निराश हो जायगी और हमारे साथियों का संघर्ष बेकार जायगा। दूसरी चीज जो मैं प्राप्त करना चाहता था उसका संबंध उत्तरी अभियान के बाद के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से था। इस संबंध में मैंने कहा था कि "हमारे स्वर्गीय नेता का शांतिपूर्ण तरीकों से राष्ट्र को मुक्त करने का प्रस्ताव युद्ध अधिनायकों और अफसरों की जिद् के कारण कार्यान्वित न हो सका। इसलिये हमारी पार्टी ने बाधाओं को दूर करने के लिये बाध्य होकर शस्त्र उठाया। इस समय युद्ध बन्द है। आज जब मैं युद्ध होनेवाले भूभाग की जनता का दुःख-दर्द और युद्ध में किए गए अपने अफसरों और लोगों के बलिदान का ख्याल करता हूँ तो मुझे लगता है कि क्रांति की सफल परिणति के बाद गृह-युद्ध को समाप्त कर देने के लिये सब तरह का यत्न होना चाहिए। वास्तव में देश की सैनिक शक्ति का प्रयोग तो सम्पूर्ण राष्ट्र की सुरक्षा के लिये होना चाहिए। गृह-युद्ध किसी भी राष्ट्र के लिये सबसे बड़ी लज्जा की बात है। इस उत्तरी अभियान में दश लाख से भी अधिक आदमियों ने भाग लिया था और हजारों वर्गमील जमीन पर युद्ध जारी था। जो क्षेत्र ध्वंस हुए वे चीन के ही भूभाग थे और जो हताहत हुए वे चीन के ही नागरिक थे। अब युद्ध के समाप्त हो जाने पर कष्ट और कठिनाइयों पर केवल आँसू बहाकर ही नहीं रह सकते। अब हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि सम्पूर्ण देश के लोग इस बात को समझें कि गृह-युद्ध एक घृणित चीज है। हमें अब सारी शक्ति अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये संचित करनी चाहिए; हमें प्रतिष्ठा की भावना जाग्रत करनी चाहिए, जनता को युद्ध की शिक्षा एकमात्र आत्म

सुरक्षा की दृष्टि से देना चाहिए और हमें सादा तथा परिश्रमी जीवन व्यतीत करना चाहिए ताकि विरासत में प्राप्त राष्ट्रपिता के प्रमुख उद्देश्य को हम पूरा कर सकें और अपने लिये स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें उत्तरी अभियान के समय से ही राष्ट्रीय सरकार नाना प्रकार की कठिनाइयों के बीच भी अटल रूप से इसी मार्ग पर चल रही है। जापानी आक्रमण के विरुद्ध जो हम रक्षात्मक युद्ध में लगे हुए हैं यह शक्ति एकमात्र क्रांतिकारी पुनर्निर्माण की भावनाओं से मिली है।

"राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत बातें" नामक ग्रन्थ के अनुसार सैनिक शासन काल के बाद राजनीतिक संरक्षण काल आता है। इस संरक्षण काल का मुख्य कार्य स्थानीय स्वायत्त शासन (लोकल सेल्फ गवर्नमेंट) की स्थापना करना है। इस स्थानीय स्वायत्त शासन योजना को ठीक ठीक कार्यान्वित करने का कार्य राष्ट्रपिता द्वारा लिखित "स्थानीय स्वायत्त शासन लागू करने की व्यावहारिक पद्धतियाँ" नामक पुस्तक के आधार पर होनी चाहिए। वैधानिक शासन काल कब प्रारम्भ हो यह तो स्वायत्त शासन लागू करने के बाद उससे प्राप्त फल पर निर्भर करता है। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि तीन काल क्रमशः लागू किए जाने चाहिए। नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद दश वर्षों तक राष्ट्रीय सरकार सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की कठिनाइयों और बाधाओं से घिरी रही। इसलिये राजनीतिक संरक्षण काल में जिन आधारभूत कार्यों की पूर्ति होनी चाहिए थी वह नहीं हो सकी। इसलिये उस समय राष्ट्रीय सरकार अपने ऊपर सौंपे गए उद्देश्य को पूरा करने में असमर्थ रही। व्यावहारिक राजनीति में राष्ट्रीय सरकार को जो सबसे बड़ी बाधा पार करनी पड़ी वह थी देश को संगठित करने के मार्ग की कठिनाई। दूसरी बात यह भी थी कि सिद्धान्त को लेकर भी उस समय विभिन्न मत हो गए थे। क्योंकि उन दश वर्षों के अन्दर केवल यही प्रश्न नहीं उठा कि राजनीतिक संरक्षण का कार्यक्रम किस तरह लागू किया जाना चाहिये बल्कि यह भी उठा कि क्या राजनीतिक संरक्षण काल की कोई आवश्यकता भी है? और अगर है तो इस काल के समाप्त होने की अवधि क्या है? उस समय इन प्रश्नों पर गरमागरम बहस होती थी। इस प्रकार के प्रश्न सामंतवादी युद्धअधिनायकों द्वारा अपने क्रांतिविरोधी कार्यों पर लीपापोती करने के लिये पेश किए जाते थे

और इससे पार्टी के सदस्य भी जाने या अनजाने विचलित होने लगते थे। इसका फल यह हुआ कि मतभेद अधिक से अधिक बढ़ता गया और कार्यों में पारस्परिक विरोध होने लगा। हम सभी जानते हैं कि राजनीतिक संरक्षण काल वह आवश्यक अवस्था है जिससे गुजरना प्रजातंत्र की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। बिना इसके जनता अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकती और बिना इसके हमारा आगे बनने वाला विधान कागज का टुकड़ा मात्र रह जायगा। सन् १६११ की क्रांति के बाद जनता ने रचनात्मक क्रांति की आवश्यकता को नहीं समझा। उसने केवल अस्थायी विधान के अक्षरों पर तथा राजनीतिक संस्थानों के ढाँचे पर ही ध्यान दिया। इसी से तो युद्धअधिनायकों को भयंकर षड्यंत्र करने का और जापानी साम्राज्यवादियों को पुनः आक्रमण करने का अवसर मिल गया। भूतकाल की गलतियों को लोग आज भूल गए हैं और सबसे बड़े दुःख की बात तो यह है कि जो साथी उन भूलों के शिकार हुए थे वे भी उन्हें भूल गए हैं।

चीन के भौतिक निर्माण के लिये डा० सुन यात्-सन् का "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" नामक पुस्तक बड़ी ही उपयोगी मार्गप्रदर्शिका है। नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद दश वर्षों में विदेशी साम्राज्यवाद और क्रांतिविरोधी शक्तियों के हस्तक्षेप के कारण राष्ट्रीय सरकार अपने नियमित योजना के अनुसार आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को नहीं कर सकी। जहाँ तक सिद्धान्त का संबंध है उस समय अर्थशास्त्र के अध्येताओं के बीच अति वैयक्तिक उदारवाद और वर्ग संघर्ष युक्त समाजवाद ये दोनों ही मत फैले हुए थे। वर्ग संघर्षवादी कम्युनिस्टों ने अपने तथाकथित "भूमिविषयक क्रांति" और "कृषक क्रांति" के द्वारा हमारे शांतप्रिय ग्राम्य समाज को ध्वस्त कर दिया। जहाँ कहीं भी उनकी सेना गई उसने व्यापक रूप से ध्वंस किया। कम्युनिस्टों को मजदूरों की भलाई की लेशमात्र भी चिंता नहीं थी। उत्पादन की प्रगति में बाधा डालने के लिये वे समाज में और राष्ट्र के नवयुवकों में घृणा का प्रचार करते थे और उनमें वर्ग युद्ध की भावना भरते थे। इसके कारण बाध्य होकर देश की पूँजी रियायती क्षेत्रों में सिमिट गई और जिससे विदेशी साम्राज्यवाद को चीन पर और भी अधिक पंजा गड़ाने में सहायता मिली। दूसरी ओर, अति वैयक्तिक उदारवादी असम संधियों के बन्धन के कारण पैदा हुई चीन की दुःखद स्थिति को नहीं समझ

सके और न उन्होंने यही समझा कि प्रथम महायुद्ध के बाद से संसार की अर्थ व्यवस्था की विचार धारा स्वतंत्र आर्थिक प्रतियोगिता से सुयोजित और केन्द्रीयभूत अर्थ व्यवस्था में बदल गई है। उन लोगों ने प्रथम औद्योगिक क्रांति काल के आर्थिक सिद्धान्तों को चीन में उस समय लागू करने की चेष्टा की जब यूरोप और अमेरिका में हुई द्वितीय औद्योगिक क्रांति से पैदा हुई परिस्थितियों से चीन घिरा हुआ था और उन सिद्धान्तों को ही वे अपना नया सिद्धान्त मानकर उन पर अभिमान करते थे। जिसके फलस्वरूप "जनता की जीविका का सिद्धान्त" और "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" इन दोनों के उद्देश्य को सब लोग पूरा पूरा नहीं समझ सके। *उस अवसर पर राष्ट्रीय सरकार ने सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया कि उसकी पुनर्निर्माण की योजना से जितने फल की आशा थी वह पूरी न हुई। यह कहा जा सकता है कि पुनर्निर्माण का क्रांतिकारी कार्य तो जैसे तैसे प्रारम्भ ही हुआ था क्योंकि वास्तव में उन परिस्थितियों के बीच उसके प्रारम्भ करने का कोई साधन ही नहीं था।* चि-नान् की ३ मई सन् १९२८ की घटना के बाद यह स्पष्ट हो गया कि जापान अपनी "महादेशीय नीति" कार्यान्वित करना चाहता है और जापान का सैनिक आक्रमण किसी भी समय हो सकता है। अगर उस समय आक्रमण हो गया होता तो चीन को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य करने का अवसर नहीं मिला होता और पार्टी के सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने तथा अपनी क्रांति को समाप्त करने की बात तो दूर ही रहती। *ऐसी परिस्थिति के कारण ही राष्ट्रीय सरकार ने यातायात, सामाजिक भलाई, आर्थिक मामलों आदि के क्षेत्रों में पुनर्निर्माण की योजना को बढ़ाने की नीति अपनाई जो जापानी आक्रमण के विरुद्ध अपने सशस्त्र प्रतिरोध करने की तैयारी को छिपाए रखने के लिये पर्दे के समान थी।* उन दश वर्षों के भीतर अपमान, चिंता और खतरे की परिस्थिति के बीच भी राष्ट्रीय सरकार ने दैनिक व्यवहार की चीजों का आयात कम कर दिया और कल-पुर्जे के आयात में वृद्धि की और इस प्रकार जनता की आर्थिक दशा में सुधार किया। इसके फलस्वरूप कृषि, उद्योग-धंधों और खान खोदने के कारबार में बहुत उन्नति हुई। सबसे उल्लेखनीय प्रगति तो यातायात के साधनों और राजस्व व्यवस्था में हुई। मांचू राजवंश के अंतिम काल से सन् १९२७ ई० (प्रजातंत्र संवत् १६) तक के ४८ वर्षों में कुल ८३०० किलोमिटर रेल बिछाई गई थी जब कि सन् १९२८ (प्रजातंत्र

संवत् १७) के बाद दश वर्षों के भीतर ७३०० किलोमिटर बिछाई गई। उसी दश वर्षों के बीच एक लाख किलोमिटर लंबी सड़कें बनीं। तार लाइन लगाने में भी बड़ी उन्नति हुई तथा संपूर्ण देश भर में ३३०० किलोमिटर टेलीफोन का जाल बिछा दिया गया। राजस्व के सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार ने जो किया है उसमें लिकिन रद्द करना, कर की दर में एकरूपता लाना, चुङ्गी की दर में संशोधन करना और देशी तथा विदेशी कर्जों को ठीक ठीक तय करना आदि उल्लेखनीय हैं। टेल को उठाकर सब जगह युआन् या डालर (चीनी डालर) का प्रचार मुद्रा की इकाई के रूप में किया गया, जिससे देश की करेन्सी में एकरूपता आ गई और सरकारी नोट जारी करना संभव हो सका। इन सब कामों से हमारे देश की एकता तथा स्वाधीनता की नींव पक्की हुई। इसीलिये तो आज इस प्रतिरोध युद्ध में सैनिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से हम अपराजित हैं।

हमारे राष्ट्रपिता ने "राष्ट्रीय सुरक्षा की दशवर्षीय योजना" बनाई थी। अभाग्यवश योजना की हस्तलिपि छन् चुङ् मिङ् ने जो विद्रोह किया था उस समय नष्ट हो गई। आज केवल उसकी विषय-सूची ही बच रही है। पर सैनिक बातों के संबंध में उनके विचार हमें उस भाषण में मिलते हैं जो उन्होंने सैनिक विद्यालय की स्थापना के समय दिया था। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये आर्थिक पुनर्निर्माण संबंधी उनके विचार "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" नामक पुस्तक में पाये जाते हैं और सैनिकों के चरित्र के संबंध में उनके विचार "डा० सुनयात् सन् के दार्शनिक विचार" नामक पुस्तक में और "अफसरों तथा सैनिकों की आध्यात्मिक शिक्षा" पर दिए गए उनके व्याख्यान में मिलते हैं। नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद राष्ट्रीय सरकार ने शांतिपूर्ण तरीकों से राष्ट्रीय एकता लाने के लिए और राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था कर देश को शक्तिशाली बनाने के लिये कार्य प्रारम्भ किया। राष्ट्रीय सरकार यह समझती थी कि बाहरी उपद्रव और भीतरी गड़बड़ी एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और स्वाधीनता तथा एकता अन्योन्याश्रित हैं। इसलिये उसने उस प्रकार के लोगों की आलोचना तथा चापलूसी से प्रभावित हो कभी भी असामयिक कदम नहीं बढ़ाया जो हमारे वैदेशिक संबंध के संकट को बहाना बनाकर दुर्द्धर्ष युद्ध छेड़ना चाहते थे। हमारी सरकार ने अपनी सैनिक तैयारी को अपेक्षाकृत दृढ़ बनाया और उसी के कारण आज हमारे लिये जापानी आक्रमण के विरुद्ध रक्षात्मक युद्ध

करना संभव हो रहा है।

उत्तरी अभियान की सफलता के बाद राष्ट्रीय सरकार और जापानी साम्राज्यवादियों के बीच के आपस लेखा-जोखा का समय आ पहुँचा था। राष्ट्रीय क्रांति की असफलता का अर्थ जापानी साम्राज्यवादियों की विजय थी। अगर राष्ट्रीय क्रांति असफल हुई होती तो जापानी साम्राज्यवादियों का प्रभाव चीन से सदा के लिये उखड़ गया होता। पर उस समय बाहरी उपद्रव और भीतरी मतभेद इस तरह एक दूसरे से गुथे हुए थे तथा एक के बाद एक घट रहे थे कि राष्ट्रीय सरकार उनसे घिर गई थी। इसके फलस्वरूप कितने ही संघर्ष खुले रूप से चल रहे थे और कितने ही गुप्त तिकड़म हो रहे थे और राष्ट्रीय सरकार के लिये उन सबों पर बराबर निगरानी रखना एकदम से असंभव हो गया था। सचमुच में उस समय जो संकट आ उपस्थित हुआ था वैसा पिछले सौ वर्षों में कभी नहीं हुआ। अगर उस अवस्था में राष्ट्रीय सरकार जरा भी गलती करती या अपनी निर्धारित नीति से जरा भी इधर उधर होती तो सन् १९११ की क्रान्ति के बाद की असफलता के इतिहास की तथा सामंतशाही प्रभुत्व के प्रसार की पुनरावृत्ति होती। सब से दुःख की बात यह थी कि उस समय जनता के विचार उलझे हुए थे और उसे सही या गलत का कुछ भी ज्ञान नहीं था। हम सभी जानते हैं कि गत सौ वर्षों से हमारे ४५ करोड़ लोगों की यह माँग रही है कि हम अपने राष्ट्रीय अपमान को धो दें और अपनी राष्ट्रीय शक्ति का विकास करें। इतिहास बतलाता है कि राष्ट्रीय क्रांति को छोड़ और अधिक कारगर कोई भी दूसरा तरीका इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नहीं है। अभाग्यवश इस काल में कितने लोग ऐसे भी थे जो हमारी राष्ट्रीय क्रांति को काम चलाऊ क्रांति कह कर उसकी कड़ी आलोचना करने तथा उस पर कलंक लगाने के लिये "क्रांति" ऐसे शानदार शब्द का सहारा लेते थे। उनका कहना था कि हमारी राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य मौलिक परिवर्तन करना नहीं बल्कि क्रमिक सुधार करना है। इसलिए वे उसका विरोध करते थे और उसके मार्ग में बाधायें डालते थे। हम सब यह भी जानते हैं कि पिछले तीस वर्षों से हमारे पैंतालीस करोड़ लोगों की यह भी माँग रही है कि देश में एकता स्थापित की जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये राष्ट्रीय क्रांति ही सबसे अधिक शांतिपूर्ण और तर्कसम्मत पद्धति रही है। अभाग्यवश इस काल में कुछ लोग तो ऐसे थे जो किसी खास भूभाग पर अपना सामंतशाही प्रभुत्व

जमाना चाहते थे; पर अपनी इस इच्छा को छिपाने के लिये "प्रजातंत्र" का नारा बुलन्द करते थे। कुछ ऐसे भी थे जो अपने प्रतिक्रियावादी और हिंसात्मक कामों को छिपाने के लिये "समानता" का नारा लगाते थे। ये सभी लोग देश की एकता स्थापित करने के नाम पर "अधिनायक-तंत्र" और "निरंकुश शासन" स्थापित करने का कलंक मढ़ जले पर नमक छिड़कने की उक्ति चरितार्थ करते थे। इस प्रकार उन्हें आशा थी कि वे देश के संगठित करने के कार्य को नष्ट कर सकेंगे। वाङ् चिङ् वइ और दूसरे देशद्रोही क्वोमिनताङ् तथा राष्ट्रीय सरकार का नाम ले लेकर पार्टी तथा सरकार का अपमान करने तक से बाज नहीं आए। उन लोगों ने 'जनता के तीन सिद्धान्त' तथा राष्ट्रीय क्रांति के विरुद्ध विद्रोह करने में 'जनता के तीन सिद्धान्त' तथा राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना का ही उपयोग किया। अपने विश्वासघाती और विद्रोही कार्यों के लिये वे पिछले पन्द्रह वर्षों से बराबर यही कपटभरी चाल चलते आए हैं। हमारे राष्ट्र में फूट पड़ जाय इसके लिये इन दुष्ट लोगों ने जनता में अपना प्रचार करते समय संसार में प्रचलित सभी विभिन्न राजनीतिक सिद्धान्तों और इतिहास में उपलब्ध सभी नारों का हर तरह से व्यवहार किया। इसके फलस्वरूप राष्ट्र की संगठित इच्छा शक्ति छिन्न भिन्न हो गई और राष्ट्र की संगठित शक्ति का ह्रास हो गया। कुछ लोग तो अपने को उग्रवादी कहने लगे और कुछ तो निष्क्रिय और निराश हो गए। निराश हो उग्रवादियों ने सब कुछ की बाजी लगा दी और जो निष्क्रिय हो गए थे उन लोगों ने हर चीज की ओर नकारात्मक प्रवृत्ति अख्तियार की। इससे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई वह हमारी नैतिकता तथा चरित्र के लिये विशेष रूप से घातक थी। उत्तरी अभियान की सफलता के बाद हमारी जनता की मनोभावना तथा हमारे समाज की नैतिकता का इतना पतन कभी नहीं हुआ था। हमारे राजनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा संबंधी कामों के राह में जितनी बाधायें आईं और हम लोगों को जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं उन सबों का विवरण देना असंभव है। पर नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद दश वर्षों के भीतर हमारी राष्ट्रीय सरकार ने देश में एकता स्थापित न होने देने वाले विचारों और कार्यों में सुधार करने की भरसक चेष्टा की। उदाहरण के लिये शिक्षा को लीजिए—सन् १९२९ (प्रजातंत्र संवत् १८) में राष्ट्रीय सरकार ने एक सार्वजनिक घोषणा की कि "जनता के जीवन को समृद्ध बनाने

के लिये, समाज का अस्तित्व बनाए रखने के लिये, जनता की जीविका के साधनों के विकास के लिये तथा राष्ट्र को चिरजीवी बनाने के लिये शिक्षा का उद्देश्य जनता के तीन सिद्धान्तों पर आधारित होगा ताकि देश स्वतंत्र हो सके, उसमें प्रजातंत्र लागू हो और जनता की जीविका में सुधार हो और इस तरह मनुष्यों में सार्वभौमिक भ्रातृभाव का उदय हो।" सन् १९३२ ई० (प्रजातंत्र संवत् २१) में क्वोमिनताङ् के चौथे कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में शिक्षा के संबंध में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसका एक अंश यों है—"चुङ् ह्वा राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये हमारी शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र की परम्परागत भावनाओं को विकसित करना, जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरना तथा उसके आत्म-विश्वास को पुनर्जाग्रत करना है।" उस समय से सामाजिक तथा स्कूल-कालेजों की शिक्षा में राष्ट्रीय भावना को जगाने पर अधिक जोर दिया जाता है। साथ साथ स्कूल कालेजों में कला, विज्ञान और संस्कृति का पाठ्यक्रम राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था और जनता की जीविका की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित होता है ताकि असम संधियों के प्रभाव से पैदा हुआ हमारा निःसार, छिछला और अविश्वस्त पहले का जीवन समूल नष्ट हो जाय। आजतक हमारी जनता आत्मरक्षा की लड़ाई में जो डटी रही है तथा अभी भी जो वह देश के लिये बलिदान करने को तैयार है उसका कारण हमारी वह शिक्षा है जो दश वर्षों के भीतर जनता के तीन सिद्धान्तों के आधार पर उसे दी गई है।

देश में होने वाली गड़बड़ी से हमारी क्रांति को क्षति पहुँची उसका परिणाम हमारे वैदेशिक संबंध पर बहुत गहरा पड़ा है। सन् १९२७ (प्रजातंत्र संवत् १६) में नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद हमारे वैदेशिक विभाग ने एक घोषणा की कि पइ चिङ् सरकार ने विभिन्न देशों के साथ जो संधि की थी उसके अस्तित्व का कारण मिट चुका है और राष्ट्रीय सरकार अब विभिन्न देशों के साथ नई संधि करने को तैयार है। बाद में राष्ट्रीय सरकार ने इस आशय की एक सरकारी घोषणा की कि १ ली सितम्बर, १९२७ से (प्रजातंत्र संवत १६) चीन सरकार चुङ्गी संबंधी अपने स्वायत्त अधिकार को लागू करेगी और "आयात कर संबंधी अस्थायी नियम" जारी करेगी जो उसी दिन से लागू होंगे। अभाग्य-वश उसी समय उत्तरी अभियान के सैनिक कामों में भीतरी और बाहरी कठिनाइयों के कारण बाधा पड़ गई। जापान ने उस अवसर को इस नए

व्यापार-कर निर्धारित करने की नीति का विरोध करने में लगाया। दूसरे देशों ने भी जापान का अनुसरण किया। इस प्रकार हमारी क्रांतिकारी नीति ठप हो गई।

सन् १६२८ (प्रजातंत्र संवत् १७) में उत्तरी अभियान की समाप्ति के समय राष्ट्रीय सरकार ने नई संधि करने के संबंध में पुनः घोषणा की। उन देशों के साथ नई संधि की बातचीत चली जिनके साथ पहले हुई संधि की अवधि पूरी हो गई थी उन देशों के साथ भी पृथक रूप से बातचीत चली जिनके साथ हुई संधि की अवधि अभी तक पूरी नहीं हुई थी। इस बात चीत का मुख्य विषय चुङ्गी निर्धारण के स्वायत्त अधिकार का प्रश्न था। "संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और चीनी प्रजासत्तात्मक राज के बीच चुङ्गी संबंध को नियन्त्रित करने वाली संधि" में सबसे पहले चीन के चुङ्गी निर्धारण का स्वायत्त अधिकार स्वीकार किया गया। दूसरे देशों ने भी इसका अनुसरण किया। केवल साम्राज्यवादी जापान ही टाल-मटोल करता रहा। सन् १६३० (प्रजातंत्र संवत् १६) में जाकर उसके साथ हमारा व्यापार कर संबंधी समझौता हुआ पर व्यापार-कर की दर के संबंध में फिर भी उसने कुछ संरक्षण रख ही लिए।

सन् १६२६ (प्रजातंत्र संवत् १८) में "बहिर्देशीय अधिकार" को रद्द करने में सफलता मिलने की बड़ी आशा थी। अभाग्यवश उसी समय आंतरिक कलह छिड़ गया और तब विदेशी शक्तियों ने ठहर कर काम करने की नीति अपनाई। राष्ट्रीय सरकार ने दिसम्बर १६२६ (प्रजातंत्र संवत् १८) और दिसम्बर १६३० (प्रजातंत्र संवत् १६) में निश्चित समय के अंदर अपने क्षेत्रगत अधिकार को हस्तगत कर लेने का जो निर्णय किया था वह गृह-कलह के कारण पूरा न हो सका। मई सन् १६३१ (प्रजातंत्र संवत् २०) में "चीन स्थित विदेशी नागरिकों पर चीनी कानून लागू करने का नियम" जो बना वह १ली जनवरी १६३२ (प्रजातंत्र संवत् २१) से लागू होने वाला था। पर १८ सितम्बर सन् १६३१ की घटना[1] के कारण इन नियमों को जारी करना अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया गया।

साम्राज्यवादी जापान ने अपनी टाल-मटोल नीति के अलावा एक न

(१) जापान ने १८ सितम्बर सन् १९३१ ई० में मंचूरिया पर चढ़ाई कर दी और धीरे धीरे मंचूरिया को अपने अधीन कर लिया।

एक बहाना बना कर हम पर दबाव डालने और हमें चुनौती देने की सक्रिय नीति अपनाई। नान् चिङ् को राजधानी बनाने के बाद के दश वर्षों के भीतर विदेशी शक्तियों ने चीन के राष्ट्रीय आन्दोलन के पूर्ण गुरुत्व के प्रति, उपेक्षा का भाव रखते हुए भी चीन की एकता स्थापित करने तथा राष्ट्रीय सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ाने के सुयोग पर काफी ध्यान दिया। केवल साम्राज्य-वादी जापान ही ऐसा था जिसका, हमारे राष्ट्रीय संगठन को अधिक से अधिक दृढ़ होता देख, चीन पर आक्रमण करने का कुत्सित विचार अधिक से अधिक सक्रिय होता जाता था। इसलिये "३ मई की घटना" के बाद वान् पाव् शान् घटना और नाकामुरा घटना (१६३१) घटीं, जिनकी चिनगारी से "१८ सितम्बर वाली घटना" की आग भड़क उठी। "१८ सितंबर वाली घटना" के बाद २८ जनवरी का युद्ध (शंघाइ १६३२), यु कुआन् (शान् हाइ कुआन् चेत्र) घटना, ज-ह (जेहोल) घटना, महान् दीवार की घटना, कुरामोटो घटना, छङ् तु घटना, पइ हाइ घटना और लु कोउ छिआव् (मार्को पोलो पुल—७ जुलाई १६३७) की घटनाएँ हुईं। इस अंतिम घटना के बाद ही हमारा पूर्ण प्रतिरोध युद्ध प्रारम्भ हुआ।

"१८ सितम्बर वाली घटना" के बाद से पूर्ण प्रतिरोध युद्ध के प्रारम्भ तक चीन की मुख्य कूटनीतिक समस्या जापान को लेकर थी तथा उसकी मुख्य आंतरिक समस्या भी जापान ही को लेकर थी यानी जापान द्वारा चीन में किए जाने वाली कारवाइयों से कैसे निपटा जाय। हम सभी जानते हैं कि आधुनिक युद्ध विज्ञान का युद्ध है। चीन के वैज्ञानिक अन्वेषण और औद्योगिक कौशल प्रारम्भिक अवस्था में हैं और उनकी तुलना जापानियों के अन्वेषण तथा कौशल से नहीं हो सकती। आधुनिक युद्ध सभी लोगों का युद्ध हो जाता है। सामंतवादी और क्रांतिविरोधी शक्तियों के कारण चीन में गृह युद्ध चल ही रहा था। इन परिस्थितियों में राष्ट्रीय सरकार के सामने एकमात्र चारा यही था कि वह अपनी अटल और अटूट भावनाओं को बनाए रखते हुए अपमान को सह ले और अपनी जिम्मेवारी निभाए। उस समय राष्ट्रीय सरकार की नीति स्पष्टरूप से यों थी—राष्ट्रीय सरकार का संकल्प है कि जब तक शांति से काम लेने की सभी आशायें मिट नहीं जाती तब तक वह शांति का रास्ता नहीं छोड़ेगी। वह यों ही बलिदान करने की बात नहीं करेगी जब तक बलिदान करना आवश्यक नहीं हो जाता है। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से, गृह युद्ध से बचने के लिये

और विदेशी आक्रमण के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने के लिये बाध्य होकर सरकार ने समझौता करने और आलोचना सह लेने की नीति अपनाई। संक्षेप में कहें, तो उसने अपनी आन्तरिक कठिन समस्याओं को सुलझाने की भरसक कोशिश की। सामाजिक दृष्टि से देखें तो आत्म-सम्मान की राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के लिये नव-जीवन आन्दोलन चलाया गया। सैनिक दृष्टि से देखें तो पाव् चिआ प्रणाली[1] इसलिये अनिवार्य रूप से लागू की गई कि हर हृष्ट पुष्ट आदमी हथियार चला सके। सम्पूर्ण देश भर में दुश्मनों की जासूसी निगरानी के रहते हुए भी राष्ट्रीय सरकार ने बड़े बड़े उद्योग-धंधों को चालू किया और सैनिकोपयोगी सामान इकट्ठा किया। चीन बहुत दिनों से अर्द्ध उपनिवेश सा हो गया था जिसके कामों में विदेशी लोग बराबर हस्तक्षेप करते थे तथा वह असम संधियों के बंधन से जकड़ा हुआ भी था। ऐसी हालत में अगर चीन कभी विदेशी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करता तो उसे क्या क्या भुगतना पड़ता यह आसानी से समझा जा सकता है। उन छः वर्षों के बीच ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी जिन्होंने राष्ट्रीय सरकार की उपरोक्त नीति की सराहना की हो। सचमुच में राष्ट्रीय सरकार की तुलना सुङ् और मिङ् राजवंशों के अन्तिम काल की सरकारों से नहीं की जा सकती। फिर भी इस काल में उस समय से कहीं अधिक दलबन्दी थी तथा बुद्धिजीवी वर्गों के विचारों में कहीं अधिक छिछलापन आ गया था। निराशावादी अपनी सुरक्षा जापान के शरण जाने में देखते थे तथा शान्ति का प्रचार करते थे। उग्रवादी हम लोगों की कूटनीतिक स्थिति की आड़ में गृह-युद्ध से फायदा उठाने के लिये युद्ध छेड़ने पर जोर देते थे। निराशावादी तो

(१) इस प्रणाली द्वारा देश की आबादी इकाइयों में संगठित की जाती है जिसका आधार सम्मिलित रूप से जिम्मेवारी उठाना है। दश परिवार की एक इकाई होती है और वह चिआ कहलाती है। दश चिआ का एक पाव् होता है। इस प्रणाली में एक चिआ के अंदर का अगर कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार का अपराध करता है तो सारा चिआ इसके लिये जिम्मेवार समझा जाता है। चिआ की रक्षा, उससे कर वसूल करना आदि भी चिआ की सम्मिलित जिम्मेवारी है। यह प्रणाली सर्वप्रथम सुङ् राजवंश (सन् ९६०—१२७९ ई०) में कायम की गई थी। छिङ् राजवंश (मांचू—१६४४—१९११) ने भी इसे अपने राजवंश की रक्षा के लिये चालू किया था। पर यह प्रणाली समाप्त होने को थी लेकिन राष्ट्रीय सरकार ने पुनः इसे चालू किया।

यह भूल गए थे कि सुङ् राजवंश के अंत में जो शान्ति-समझौता हुआ था उससे राष्ट्र दुःख के समुद्र में डूब गया था और उग्रवादियों को इस ऐतिहासिक तथ्य का ख्याल नहीं था कि मिङ् राजवंश के अंत में हुए युद्ध के कारण सीमा पर अनगिनत चीनी सैनिकों की जानें गई थीं और उस भयंकर हार के कारण राष्ट्र का पतन हुआ था। उस काल में राष्ट्रीय सरकार ने अपनी नीति को जनता के सामने पूर्ण रूप से इसलिये स्पष्ट नहीं किया कि कहीं जापानी साम्राज्यवादियों के सामने हमारी सैनिक तैयारी प्रकट न हो जाय। राष्ट्रीय सरकार का एक मात्र अवलंब था उसका उस सम्पूर्ण राष्ट्र पर अडिग विश्वास जिसने तीन सौ वर्षों तक निरंकुश मांचू शासन के अधीन रहते हुए भी अपनी राष्ट्रीय चेतना नहीं खोई तथा उसे अपनी पैंतालीस करोड़ जनता पर भी उतना ही भरोसा था जो गत सौ वर्षों से विदेशी आक्रमण के जुए के नीचे रहते हुए राष्ट्रीय अपमान को धोने तथा राष्ट्रीय शक्ति को विकसित करने के लिये तैयार थी और जो अपने देश की एकता और स्वाधीनता की आशा लगाए हुई थी। राष्ट्रीय सरकार का दृढ़ विश्वास था कि अगर संकट आया तो जनता राष्ट्रीय क्रांति के झंडे के नीचे जमा हो जायगी और वह राष्ट्रीय सरकार का प्रधान अवलंब बनेगी। राष्ट्रीय सरकार को इसपर भी दृढ़ विश्वास था कि सभी क्रांति विरोधी शक्तियाँ जो समय की गति के विपरीत चल रही हैं जो जनता के नैतिक गुणों को नष्ट कर देना चाहती हैं और जो सब लोगों की मनोवांछित राष्ट्रीय क्रांति में बाधा देती हैं—वे सब अन्त में समय के प्रवाह में पड़ विनष्ट हो जाएंगी और राष्ट्र की नैतिक चेतना के सामने ठहर नहीं सकेंगी। राष्ट्रीय सरकार का सब से अधिक दृढ़ विश्वास इस बात पर था कि राष्ट्रीय क्रांति का वास्तविक औचित्य और यथार्थता अन्त में ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा सत्य प्रमाणित होंगी।

४

प्रतिरोध युद्ध का आन्तरिक परिणाम

७ जुलाई, सन् १९३७ (प्रजातंत्र संवत् २६) में जापान ने अपनी फँसाऊ चाल की आड़ में लु कोउ छिआव् और वान् फिङ् जिलों पर अधिकार जमा उत्तरी चीन और दक्षिणी चीन के बीच में यातायात के साधन को काट डाला तथा चीन की पुरानी राजधानी और उत्तरी चीन के

एकमात्र सैनिक अड्डे पइ फिङ् (पइ चिङ्) पर पूरा कब्जा कर लिया। हमलोग शुरू से ही समझते थे कि इस घटना का प्रभाव केवल चीन के अस्तित्व पर ही नहीं बल्कि विश्व शांति पर भी पड़ेगा। हम जानते थे कि जापान हमारी जनता को दास बनाना चाहता है और इसलिए अब शांति से काम नहीं चल सकता था। चीन के सामने वह निर्णायक समय आ उपस्थित हुआ जब उसे यह निर्णय करना था कि वह जापान की चुनौती को स्वीकार करे या नहीं। हम लोगों ने सोचा कि एक बार चुनौती स्वीकार का निर्णय कर लेने पर पुनः पीछे हटना या समझौता करना संभव नहीं होगा। क्योंकि बीच में समझौता करने का अर्थ चीन के लिये जापान का गुलाम बन जाना या उसके सामने आत्म समर्पण कर देना होगा। हम लोग इस विश्वास पर कि बलिदान से सफलता अवश्य मिलती है, हर चीज बलिदान कर सकते हैं और अंत तक डटे रह सकते हैं। हमारा देश सैनिक दृष्टि से कितना भी कमजोर क्यों न हो हमें अपने राष्ट्र के अस्तित्व की रक्षा करना था और अपने पुराने पुरखों द्वारा सौंपी गई जिम्मेवारी को निभाना था। इसलिये हम लोगों ने निर्णय किया कि हम लोग अन्त तक पूर्ण प्रतिरोध युद्ध चलाते रहेंगे।

चीन के इतिहास में आत्म रक्षा के लिये बहुत सी लड़ाइयाँ हुई हैं पर गत पाँच हजार वर्षों के भीतर इस वर्तमान युद्ध की तरह किसी भी दूसरे युद्ध में न तो कभी इतना संघर्ष हुआ और न कभी इतना बलिदान करना पड़ा; न इतनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और न उसका कभी इतना भयंकर परिणाम हुआ। हमारे इतिहास में पहले जितनी लड़ाइयाँ हुई हैं उनसे इस वर्तमान युद्ध का रूप ही भिन्न है। वास्तव में वर्तमान युद्ध वह अवस्था है जिससे गुजरना हमारी राष्ट्रीयक्रांति के लिये आवश्यक था और यह वही अवस्था है जिसमें हम लोगों की विजय होगी, जिससे राष्ट्रीय क्रांति को सफलता मिलेगी, हमारी जनता मुक्त होगी और हमारे देश का पुनर्निर्माण होगा। इसलिये ही क्वोमिनताङ् और राष्ट्रीय सरकार ने युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में ही साथ साथ प्रतिरोध और पुनर्निर्माण दोनों काम चालू रखने की नीति अपनाई जिसकी आवश्यक बातों का उल्लेख "प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की योजना" में है। यह योजना क्वोमिनताङ् द्वारा बुलाए राष्ट्रीय कांग्रेस के आवश्यक अधिवेशन में स्वीकृत हुई और इसके बाद जनता की राजनीतिक परिषद् ने भी इसका समर्थन किया। इस तरह इसे

सम्पूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त है। योजना की आवश्यक बातें संक्षेप में चार शीर्षकों में रखी जा सकती हैं। (१) कूटनीति संबंधी बातें:—अपनी स्वाधीनता की भावना तथा आत्म संकल्प को बनाए रखते हुए हम लोग सभी आक्रमण विरोधी राष्ट्रों के साथ मिलकर साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध लड़ी जाने वाली इस सम्मिलित लड़ाई में भाग लेंगे ताकि शांति प्रिय लोगों के लिये संसार में सुरक्षा बनी रहे। (२) आंतरिक शासन संबंधी बातें:—हम लोग स्थानीय स्वायत्त शासन को वैधानिक शासन स्थापित करने की तैयारी का आधार बनाएँगे। वैधानिक शासन की स्थापना के पूर्व ऐसा संगठन किया जायगा कि जनता राजनीतिक मामलों में भाग ले सके ताकि हमारे राष्ट्र की आकांक्षा और शक्ति का एकीकरण हो और राष्ट्रीय नीति के कार्यान्वित करने में सुविधा हो सके। (३) राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था संबंधी बातें:—एक सुयोजित अर्थ व्यवस्था लागू की जाय जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा और जनता की जीविका दोनों का पूर्ण सामंजस्य और विकास हो तथा चीन जापानी आक्रमण के विरुद्ध एक दृढ़ राष्ट्रीय सुरक्षा की इकाई के रूप में हो जाय। (४) संस्कृति और विचार संबधी बातें—हम लोगों को अपने परम्परागत नैतिक गुणों को बढ़ाना चाहिए तथा साथ साथ आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए। सामाजिक सदाचार के स्थान पर विश्वासपात्रता और ईमानदारी का विकास होना चाहिए। जनता का बौद्धिक विकास ऊँचे स्तर पर होना चाहिए। इस प्रकार प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की योजना में 'जनता के तीन सिद्धान्त' और राष्ट्रीय क्रांति की मुख्य बातों का समावेश हो गया है। यद्यपि गत पाँच वर्षों में आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में बड़ा परिवर्तन हो गया है पर प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की योजना की मुख्य बातों का पालन दृढ़ता से होता रहा है। अगर हमारे राष्ट्र के लोगों के उद्देश्य एक हो जाएँ और वे अपने कामों में सक्रिय तथा प्रयत्नशील बने रहें तो इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं कि युद्ध में हमारी विजय और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में हमें सफलता दोनों ही प्राप्त होंगे।

जुलाई ७, सन् १९३७ (प्रजातंत्र संवत् २६) से उपरोक्त निर्धारित राष्ट्रीय नीति से प्रेरणा ग्रहण कर हमारे देश के सभी प्रकार के लोगों में एक नया उत्साह और समान आकांक्षा पैदा हुई है। राजनीतिक और सामाजिक जीवन में एक नया जोश आ गया है। इस नीति का परिणाम इतना व्यापक हुआ है कि जो युद्ध के पक्ष में नहीं थे वे या तो चुप हैं या

देश द्रोही हो गए हैं और इस प्रकार उन्होंने अपने को सबों के घृणा का पात्र बना लिया है। उग्रवादियों के लिये जो असमय ही युद्ध की मांग करते थे, अब गैर जिम्मेवार हल्ला मचाने का बहाना नहीं रहा है। युद्ध ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है हमारी राष्ट्रीय भावनाएँ ऊँची उठती जाती हैं। हमारी जनता युद्ध में तपकर अपनी राष्ट्रीय भावना के संबंध में एक मत हो गई है। इसके फलस्वरूप सैनिक व्यवस्था के सुधार में और सैनिक शासन के संगठन में इतनी प्रगति हुई है जितनी पहले कभी नहीं हुई। इनके अलावा केन्द्रीय सरकार की आज्ञा को कार्यान्वित करने में तथा स्थानीय शासन के कामों में क्रमशः योग्यता बढ़ती जाती है। नियोजित उत्पादन और उद्योग-धंधों के समाजीकरण की दिशा में भी बड़े-बड़े पग रखे गए हैं। हमारे वर्तमान युद्धकालीन पुनर्निर्माण के आधार पर ही जनता की जीविका के सिद्धान्त के अनुसार भविष्य की हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था कायम होगी। साथ-साथ सैद्धान्तिक और राजनीतिक मतान्तर भी मिट गए हैं क्योंकि जनता ने इस बात को समझ लिया है कि राज को प्रथम स्थान मिलना चाहिए और राष्ट्र को प्रथम स्थान देना चाहिए। इसलिये युद्ध के प्रारम्भ में ही सभी नागरिक संस्थाओं और राजनीतिक दलों ने राष्ट्रीय संकट के समय सरकार के प्रति विश्वासपात्र बने रहने और उसके समर्थन करने की घोषणा की। कम्युनिस्ट पार्टी ने घोषणा कर साफ-साफ चार प्रतिज्ञायें कीं—"वह जनता के तीन सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिये संघर्ष करेगी, हिंसा, बॉलसेविज्म और जबरदस्ती जमीन जब्त करने की नीति त्याग देगी, राष्ट्रीय एकता के लिये चीनी सोवियत सरकार को भंग कर देगी तथा अपनी "लाल सेना" का नाम बदल कर तथा उसके संगठन को तोड़कर उसे राष्ट्रीय सरकार की राष्ट्रीय सैनिक परिषद के अधीन की राष्ट्रीय क्रांतिकारी सेना में मिला देगी तथा वह सेना युद्ध क्षेत्रों में लड़ने जाने के लिये राष्ट्रीय सैनिक परिषद की आज्ञा का पालन करेगी।" उस समय मैंने निम्न वक्तव्य दिया था—"राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य चीन के लिये स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करना है। हमारे राष्ट्रपिता ने साफ साफ बताया है कि 'जनता के तीन सिद्धान्त' हमारे राष्ट्र की मुक्ति के सिद्धान्त हैं और उन्हें आशा थी कि अपने राष्ट्र को पतन से बचाने के लिये जनता संघर्ष करेगी। अभाग्यवश उत्तरी अभियान की समाप्ति के बाद दश वर्षों तक हमारी जनता ने तीन सिद्धान्तों पर पूरा पूरा विश्वास नहीं किया और न उसने उस खतरे का अनुमान किया

जिससे हमारा राष्ट्र घिरा हुआ था। जिसके फलस्वरूप क्रांति और पुनर्निर्माण के मार्ग में अनगिनत बाधाएँ उठ खड़ी हुईं तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति का बड़ा नाश हुआ और जनता को बहुत ही बलिदान करना पड़ा। दिन पर दिन बाहरी आक्रमण बढ़ता गया और देश के सामने और भी ज्यादा खतरा आने लगा। पर केन्द्रीय सरकार अपना संगठन करने और प्रतिरोध करने की निर्धारित नीति का अनुसरण करती हुई अपमान सहती रही और जिम्मेवारी निभाती रही। इस बात पर सरकार ने प्रति दिन जोर दिया कि राष्ट्रीय संकट का सामना करने के लिये उसे सब के हार्दिक सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। जिन्हें 'जनता के तीन सिद्धान्त' के प्रति सन्देह था वे ही अब राष्ट्रीय स्वार्थ को प्रथम स्थान देने लगे हैं और एक उद्देश्य के लिये लोगों ने अपने मत पार्थक्य को मिटा डाला है। इससे जान पड़ता है कि लोगों ने इस सत्य को अच्छी तरह समझ लिया है कि उन्हें साथ-साथ जीना है और साथ-साथ मरना है। उन्होंने यह भी अनुभव कर लिया है कि राष्ट्र का स्वार्थ व्यक्ति या समूह के स्वार्थ से बढ़कर है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की उपरोक्त चार प्रतिज्ञायें राष्ट्रीय मत की प्रबल शक्ति का उदाहरण हैं। यह भी स्पष्ट है कि 'जनता के तीन सिद्धान्त' ही राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय विचारों का मूर्तरूप है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि क्योमिनताङ् का संगठन जनता की मांगों को प्रकट करने के लिये हुआ है और वह सभी वर्गों के स्वार्थों का का प्रतिनिधित्व करती है तथा यही एकमात्र असली क्रांतिकारी दल है। जनता के तीन सिद्धान्तों से सामजस्य न रखने वाला कोई भी सिद्धान्त अधिक दिनों तक जनता के मन में नहीं रह सकता। इसलिये 'जनता के तीन सिद्धान्त' ही हमारे प्रतिरोध युद्ध का सबसे बड़ा मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त है और क्वोमिनताङ् ही हमारी राष्ट्रीय क्रांति की सबसे ऊँची मार्गप्रदर्शक संस्था है। हमलोग निःसंकोच कह सकते हैं कि अगर तीन सिद्धान्त न होते तो हम लोग प्रतिरोध का युद्ध न चला सकते और अगर क्वोमिनताङ् न होती तो क्रांति भी न हुई होती। अगर किसी दल या शक्ति का सामंजस्य जनता के तीन सिद्धान्तों से और क्वोमिनताङ् से नहीं है तो वह प्रतिरोध युद्ध या राष्ट्रीय पुनर्जागरण के कामों में सहायक नहीं हो सकती। यह बात हमारी जनता को और विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग को ठीक ठीक समझ लेनी चाहिए।

५

प्रतिरोध युद्ध का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व—प्रतिरोध युद्ध के पूर्व तथा युद्ध काल के रण कौशल तथा कूटनीति का विवरण।

हम लोग दो दृष्टियों से चीन के प्रतिरोध युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय परिणाम पर विचार कर सकते हैं, एक तो चीन के प्रतिरोध युद्ध का अन्तर्राष्ट्रीय शांति और विश्व युद्ध में जो भाग रहा है और दूसरा विदेशी राष्ट्रों की नजरों में उसका क्या महत्त्व है।

पहले मैं चीन के प्रतिरोध युद्ध का विश्व युद्ध और अंतर्राष्ट्रीय शांति से क्या संबंध रहा है उस पर ही विचार करता हूँ। हमारी सरकार जानती थी कि विश्व-शांति अविभाज्य है इसलिये विश्व युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व ही उसने विश्व-शांति की रक्षा के अपने उत्तरदायित्व को निभाने का संकल्प किया। विश्व युद्ध छिड़ जाने के बाद भी प्रमुख आक्रमणकारी जापान के विरुद्ध अकेले ही अपना प्रतिरोध जारी रखने का उसका संकल्प बना रहा और उसने इस बात की जरा भी आशा नहीं रखी कि विश्व युद्ध में चीन का भार किसी तरह से हल्का होगा। साढ़े पाँच वर्षों के चीन के प्रतिरोध के कारण यूरोप के धुरी राष्ट्रों के साथ मिलकर संसार को बराबर बाँट लेने की जापान की महान योजना धूल में मिल गई है और जापान की आगे बढ़ बढ़ कर सभी काम करने का सुयोग भी जाता रहा है। अपने सहयोगी और मित्रराष्ट्रों के साथ मिलकर चीन अपना संघर्ष जारी रखेगा और जापान तथा उसके धुरी राष्ट्रों के विश्व-शांति भंग करने की वास्तविक शक्ति को सदा के लिये जड़ से मिटा देगा।

"१८ सितम्बर की घटना" के बाद जापान ने सदा से चली आने वाली अपनी महादेशीय नीति को बढ़ाने के लिये चीन सरकार से तथाकथित "तीन सिद्धान्तों" को कबूल कराना चाहा। वे "तीन सिद्धान्त" थे—"चीन-जापान के बीच शांतिपूर्ण संबंध", "समाजवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा" और "आर्थिक सहयोग।" "चीन जापान के बीच शांतिपूर्ण संबंध" तो चीन पर जापान का राजनीतिक नियंत्रण कायम करना था। "आर्थिक सहयोग" चीन की अर्थ व्यवस्था पर जापान का एकाधिकार करने जैसा था और "समाजवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा" का अर्थ चीन के चार उत्तर-पूर्वी प्रान्तों को आधार बनाकर चीन के शेष हिस्सों को

थोड़ा थोड़ा करके अपने अधीन करना और चीन सरकार पर अपना प्रभुत्व जमाना था तथा यूरोप के धुरी राष्ट्रों के साथ षड्यंत्र रच पूर्व और पश्चिम दोनों ओर से शक्ति संचय कर सम्मिलित रूप से सोवियत रूस पर चढ़ाई करना था। चीन की सरकार यह जानती थी कि ये सब जापान की पूर्व आयोजित 'महादेशीय नीति' को कार्यान्वित करने के तरीके हैं इसलिये उसने उनकी मांगों को स्वीकार करने से साफ साफ इंकार कर दिया और इसके विपरीत अगस्त, सन् १६३७ (प्रजातंत्र संवत् २६) में सोवियत रूस के साथ अनाक्रमक संधि की। इसके बाद जापान ने अपनी कूटनीतिक घातें तुरन्त लगाईं और "स्थानीय घटना" का बहाना बना तुरत पइ फिङ्—हान् खउ रेल लाइन को काट डाला, पइ फिङ् और थिएन् चिङ् पर अधिकार जमा लिया और युङ् तिङ् नदी के पूर्व के सभी भूभागों को स्वयं घेर लिया ताकि सोवियत रूस के साइबेरिया के भूभागों पर चढ़ाई करने के लिये उन भूभागों पर वह अपना मोर्चा बना सके। पर राष्ट्रीय सरकार भयभीत नहीं हुई और उसने तुरत अपनी सेना पइ फिङ् और थिएन् चिङ् भेजी तथा अन्त तक प्रतिरोध करने का निश्चय उसने कर लिया। अगस्त १३, सन् १६३७ (प्रजातंत्र संवत् २६) को शंघाइ में युद्ध प्रारम्भ हो गया और इस प्रकार जापान की 'महादेशीय नीति' चीन के दीर्घकालीन प्रतिरोध रूपी पत्थर पर गिर गिर कर चूर होने लगी। तब से यूरोप में युद्ध छिड़ने के पूर्व के दो वर्षों में तथा प्रशान्त युद्ध छिड़ने के पूर्व के दो और वर्षों में (यानी सब मिलाकर चार वर्षों तक) लगातार चीन जापान से अकेला ही लड़ता रहा। चीन की राष्ट्रीय नीति तो युद्ध के प्रारम्भ से एक समान ही रही है और उसमें कुछ भी परिवर्तन न हुआ है पर जापान अपनी नीति को कार्यान्वित करने में डगमगा गया है। आखिर उसे अपनी महादेशीय विजय की नीति में एकदम से परिवर्तन करना पड़ रहा है जिसको पूरा करने का संकल्प उसने मइजी युग के प्रथम दिन से ही कर रखा था। इसलिये हम लोग कह सकते हैं कि "७ जुलाई" (१६३७) से "तेरह अगस्त" (१६३७) के बीच चीन ने पूर्ण प्रतिरोध युद्ध चलाने का निर्णय कर उसके द्वारा राजनीतिक और सामरिक दोनों ही दृष्टियों से जापान की बहुत दिनों से चली आने वाली नीति को विफल कर दिया और अपने लिये अंतिम विजय की दृढ़ नींव डाली।

चीन ने संसार के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने अंत तक

प्रतिरोध युद्ध चलाने का संकल्प कर लिया है। जापान ने अपने बराबर की हठधर्मी और दुष्टता के कारण दीर्घकाल से नियोजित अपनी विजय की योजना को छोड़ना अस्वीकार कर दिया। कोनोय मंत्रिमंडल ने बराबर अपनी "अप्रसारण नीति" (Non-Extension policy) की घोषणा की। नान् चिङ् पतन के समय जापान की प्रेरणा से जर्मनी ने चीन के सामने "जल्दी से शांति और समझौता" कर लेने का प्रस्ताव रखा, जिसमें जापान को आशा थी कि चीन इसे निश्चय ही स्वीकार कर लेगा। पर चीन ने उसकी शांति शर्तों को ठुकरा दिया और प्रतिरोध जारी रखने के अपने संकल्प को दुहराया। वु छाङ् हान् खउ मोर्चे पर जमकर हुई भयंकर लड़ाई के बाद जापान ने अपने सैनिक आक्रमण को स्थगित रखा। युद्ध समाप्त करने के लिये एक तरफ तो जापान शांतिपूर्ण राजनीतिक चालें चला और दूसरी ओर उसने उत्तरी चीन पर धावा करने की तैयारी भी की। चाङ् कु फङ् (१९३८) नोमोनहान् (१९३९) में हुई घटनाओं से जापान का यह पिछला मनसूबा प्रकट हो जाता है। चीन पर धीरे धीरे अधिकार जमा लेने की अपनी आक्रमक नीति में जापान असफल रहा और इसलिये जिसे कि वह "चीन की घटना" कहता था उसे सुलझाने की कोशिश में तथा सम्पूर्ण चीन को हड़पने में वह अपनी सारी शक्ति लगाने को बाध्य हुआ। इस प्रकार हालत यह हुई कि चाहे वह पसन्द करता हो या नहीं उसे एक ही पासे पर अपने देश के भाग्य की बाजी लगानी पड़ी। इसी कारण जापान की 'अप्रसारण नीति' सितम्बर, सन् १९३८ (प्रजातंत्र संवत् २७) में 'दीर्घकालीन युद्ध नीति' और तथाकथित "बृहत्तर पूर्वी एशिया की नव व्यवस्था" के रूप में बदल गई जो "चीन जापान के बीच शांतिपूर्ण संबंध" "समाजवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा" और "आर्थिक सहयोग" के तीन सिद्धान्तों पर आधारित थीं। यह परिवर्तन कोनोय के एक वक्तव्य द्वारा संसार के सामने प्रकट हो गया। ज्यों ही चीन सरकार ने इस वक्तव्य के पीछे छिपे तिकड़मों को खोल दिया त्यों ही कोनोय मंत्रिमंडल का पतन हो गया।

जनवरी, सन् १९३९ (प्रजातंत्र संवत् २८) में बारोन हीरानुमा मंत्रिमंडल का गठन हुआ। जर्मनी तो विश्व युद्ध छेड़ने को तैयार बैठा था और इसलिये उसने जापान से 'त्रिक दल सैनिक समझौता' करने का प्रस्ताव किया जिसका आधार था समाजवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा लेना। चीन के प्रतिरोध युद्ध से अस्त व्यस्त हो जाने तथा किसी काम के श्रीगणेश करने की शक्ति

के खो देने के कारण जापान इस समझौते में सम्मिलित न हो सका। सो, उसी वर्ष की शरद ऋतु में हिटलर ने अचानक अपना रुख बदला और सोवियत युनियन के साथ अनाक्रमक संधि करली। थोड़े दिनों के बाद ही यूरोप में युद्ध छिड़ गया। सम्पूर्ण जापान आतंकित था और अगस्त में हीरानुमा मंत्रि मंडल का भी पतन हुआ। इसके बाद अबे और योनाइ क्रमशः जो दो मंत्रिमंडल बने उन्होंने अस्थायी सुविधा के रूप में 'यूरोपीय युद्ध में नहीं फँसने' की नीति अपनाई। सन् १६४० (प्रजातंत्र संवत् २६) की फरवरी में जापान ने चीन के दक्षिणी प्रान्त कुआङ्तुङ् पर सैनिक आक्रमण कर हाइ-नान् द्वीप के बन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया जिन्हें वह दक्षिण की ओर बढ़ने का अपना अड्डा बनाना चाहता था। इसके बाद तो प्रशान्त क्षेत्र के सारे मोर्चे ही बदल गए। जापान ने उत्तर बढ़ने वाली अपनी नीति (यानी उत्तरी चीन को दखल कर सोवियत रूस के साइबेरिया आदि पर हमला करने की नीति) दक्षिण की ओर बड़े जोश-खरोश के साथ बढ़ने की नीति के रूप में बदल दी। हाइ नान् द्वीप पर अधिकार जमाने के ठीक दूसरे दिन मैंने ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा दूसरे देशों को सावधान किया था कि जापान द्वारा हाइनान् पर अधिकार जमाना प्रशान्त क्षेत्र के १८ सितम्बर की घटना से कम महत्त्व नहीं रखता है और इसलिये प्रशान्त क्षेत्र से संबंध रखने वाले सभी राजों को इस नई परिस्थिति को संभालने के लिये सम्मिलित रूप से कारवाई करनी चाहिए। उस समय उन सबों ने सोचा कि मेरी चेतावनी केवल सूचना मात्र है और इसलिये इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया तथा जापान की ओर उदासीन बने रहे जबकि जापान ने दक्षिण की ओर बढ़ने के लिये अपने मोर्चे ठीक कर लिए तथा सभी तैयारियाँ पूरी कर लीं। यद्यपि उस समय ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और हॉलैण्ड एकदम तैयार नहीं थे फिर भी जापान जोर-शोर से अपना काम चालू न कर सका क्योंकि वह चीन के प्रतिरोध युद्ध में बुरी तरह फँस गया था और जिसके कारण वह दुविधा में पड़ गया था तथा उसकी हालत डाँवाँडोल हो गई थी। इस प्रकार उसे प्रशान्त क्षेत्र के ब्रिटिश और अमरिकी स्थानों पर चढ़ाई करने में तीन वर्षों की देरी हो गई। *इससे जापान की बुनियादी नीति में ही परिवर्तन हो गया जिसका अर्थ होता था चीन की राष्ट्रीय नीति की सफलता, और संसार भर के योग्य चिंतकों का कहना है कि जापान के "महादेशीय नीति" के कार्यक्रम की*

असफलता का मुख्य कारण यही है।

सन् १९४० ई० के मई और जून के बीच डेनमार्क, नॉरवे, निदरलैंड, बेलजियम और फ्राँस एक के बाद एक जर्मन सेना के हाथों में चले गए। यूरोप की इस आकस्मिक घटना से प्रेरित हो जापानी युद्धअधिनायकों के भीतरी गुट ने पुनः त्रिक दल सैनिक संधि का आन्दोलन उठाया। अवसर-वादी कोनोय ने पुनः मंत्रिमंडल का गठन किया। इसके थोड़े दिनों के बाद ही त्रिकदल सैनिक संधि (जर्मनी, इटली और जापान इन तीनों के बीच) हुई। जापान ने अपने कार्यक्रम में प्रथम स्थान इस कौशल को दिया कि "उत्तर में (यानी चीन में) रक्षात्मक युद्ध जारी रखा जाय और दक्षिण में आक्रमक लड़ाई प्रारम्भ की जाय।" इसलिये अप्रैल सन् १९४१ (प्रजातंत्र संवत् ३०) में सोवियत रूस और जापान के बीच इस आशय की संधि हुई कि वे दोनों आपस में निष्पक्ष रहेंगे। इन दो संधियों को लेकर योसुके मासुओका "जापान का तथाकथित सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ" बन गया। पर थोड़े दिनों के अंदर ही (जून २२ सन् १९४१) जर्मनी और रूस के बीच युद्ध छिड़ गया। मासुओका को त्यागपत्र देना पड़ा और कोनोय ने पुनः मंत्रिमंडल कायम किया। पर जापानी युद्ध अधिनायकों के गर्व की तो सीमा ही नहीं थी। हीरानुमा की हत्या के प्रयत्न के बाद तृतीय कोनोय मंत्रिमंडल को अक्टूबर सन् १९४१ में त्यागपत्र देना पड़ा और युद्ध मंत्री तोजो को मंत्रि-मंडल गठन करने को कहा गया। उसने तुरत ही तथाकथित "प्रथम दक्षिण बाद में उत्तर" वाली नीति को कार्यान्वित करने का निर्णय किया। तदनुसार संयुक्तराष्ट्र अमेरिका से समझौता की बातचीत की आड़ में जापान ने धूर्तता से ८ दिसम्बर सन् १९४१ (प्रजातंत्र संवत् ३०) को प्रशान्त क्षेत्र के ब्रिटिश और अमरिकी स्थानों तथा युद्ध मोर्चों पर अचानक आक्रमण कर दिया।

जापानियों की राष्ट्रीय नीति तथा युद्ध कौशल में जो परिवर्तन हुए हैं और उनका जो फल होगा, उनके संबंध में केवल सम्पूर्ण संसार ही नहीं बल्कि स्वयं जापानी युद्धअधिनायक भी असमंजस में पड़े हुए हैं। मैं तो अब स्पष्ट कहता हूँ कि जापानी युद्धअधिनायक अपने को भले ही चालाक और बुद्धिमान समझें पर वास्तव में वे पहले सिरे के दुष्ट और मूर्ख हैं। उन्होंने तो इसे पूरा हुआ समझ लिया था कि चीन के विरुद्ध युद्ध छेड़ने से उनका पासा बराबर चित्त ही रहेगा और चीन पर पूरा अधिकार जमा वे

अपनी स्वभावगत निरंकुशता से जो चाहेंगे कर लेंगे। उन लोगों ने इस बात को नहीं समझा कि युद्ध छिड़ने के प्रथम दिन से हम लोगों ने उनकी राष्ट्रीय नीति और युद्ध कौशल की कमी दिखला दी है और अपने प्रतिरोध द्वारा उनके सैनिक आक्रमण को रोक दिया है जो हमारे युद्ध कौशल के सामने निष्क्रिय हो गया है। वे तो पूर्ण सर्वनाश के पथ पर चल रहे हैं तथा जाल में धंस गए हैं जहाँ से वे स्वयं नहीं निकल सकते। अन्त में वे अपने खोदे हुए गढ़े में ही गिरेंगे। इससे यह पता चलता है कि किसी भी राष्ट्र का उत्थान या पतन उस राष्ट्र की सरकार की राष्ट्रीय नीति के सही या गलत होने पर निर्भर है और युद्ध में मिलने वाली विजय या हार की अपेक्षा राष्ट्रीय नीति का अदृश्य परिणाम अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिये हमारी जनता को अपनी भावना और कार्य दोनों तरह से अपनी राष्ट्रीय नीति को कार्यान्वित करने में बहुत सतर्क रहना चाहिए। क्योंकि हमारी नीति कितनी भी सही क्यों न हो उसे कार्यान्वित करने में जरा भी गलती हुई या अगर अयोग्य और गैरजिम्मेवार व्यक्तियों के कार्यों द्वारा क्षति पहुँची तो हमारे राष्ट्र का सर्वनाश हो जायगा और पीछे पश्चाताप करने से हम बच नहीं सकेंगे।

प्रशान्त युद्ध छिड़ने के बाद से चीन का प्रतिरोध युद्ध और दूसरे राष्ट्रों का आक्रमण विरोधी युद्ध मिलकर एक प्रबल धारा के रूप में हो गए हैं और उसमें अन्तर्राष्ट्रीय न्याय, ईमानदारी और स्वतंत्रता स्थापित करने के संसार भर की माँगों से प्रेरित क्रांतिकारी भावनायें शक्तिशाली हो तरंगित हो रही हैं। पहली जनवरी, सन् १९४२ (प्रजातंत्र संवत् ३१) में वाशिंगटन में संसार के सभी शांतिप्रिय राष्ट्रों ने आक्रमण का विरोध करने के लिये जिस 'सम्मिलित घोषणापत्र' पर हस्ताक्षर किये वह दानवी शक्तियों के विरुद्ध क्रांतिकारी भावनाओं का मूर्तरूप है। अपनी क्रांति की निर्धारित राष्ट्रीय नीति के अनुसार चीनी सरकार ने भी उस दिन उस ऐतिहासिक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये और तब से चीन का स्थान संसार की चार प्रमुख शक्तियों में एक है।

उस काल में जापान के दावाग्नि की तरह फैलने वाले आक्रमण को रोकने के लिये प्रशान्त क्षेत्र में अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन की सैनिक तैयारी नहीं थी। इसलिये जापान की विजय सब जगह दिखने लगी थी। पर जब छाङ्शा के युद्ध (छाङ्शा—चीन के हुनान् प्रान्त की राजधानी) में

जापानियों को भयंकर मुँह की खानी पड़ी तो उन्हें स्वयं आश्चर्य हुआ और इससे चीनी युद्ध मंच पर जापान के कार्यों को बड़ा धक्का लगा। छाङ् शा की हार से प्रशान्त युद्ध की प्रथम अवस्था में ही जापान के साहस पर सांघातिक आघात पड़ा। उस समय जापानियां के चीनी सेना वास्तविक शक्ति का पता लगा जो उन्हें अन्ततः रौंद कर ही रहेगी। यही कारण था कि एशिया के पश्चिमी मोर्चे पर मलाया प्रायद्वीप और बर्मा विजय के बाद जापान ने भारत पर चढ़ाई करने का साहस नहीं किया, दक्षिणी मोर्चे पर डच इस्ट-इंडीज और फीलीपाइन पर अधिकार करने के बाद तुरत अस्ट्रेलिया पर आक्रमण करने की आशा छोड़ दी और उत्तरी मोर्चे पर अल्युटीअन्स (Aleutians) द्वीप पर चढ़ाई करने के बाद उसने समझा कि उत्तर की ओर सोवियत रूस पर चढ़ दौड़ने की उसकी दीर्घकालीन कुत्सित इच्छा का पूरा होना असंभव है। जापान के असमंजस तथा डाँवाँडोल अवस्था में पड़ जाने के कारण ब्रिटेन और अमेरिका को पश्चिमी एशिया और दक्षिणी प्रशान्त क्षेत्र में तथा अमेरिका महादेश के उत्तरी भाग में सैनिक और नौ सेना संबंधी तैयारी करने का अवसर मिल गया। इतने में ही सोवियत रूस ने भी जर्मनी के विरुद्ध अपने युद्ध कामों को संगठित कर लिया। नवम्बर, सन् १९४२ (प्रजातंत्र संवत् ३१) के बाद से विभिन्न मोर्चों पर जो संयुक्त राष्ट्रों को विजय मिलती रही है उसके कारण जापान घिर गया है तथा असहाय हो गया है और उसकी हालत बिगड़ गई है। यहाँ तक कि अपनी प्रतिज्ञा न पाल सकने के कारण उसके धुरी साझीदार भी नाराज हो गए हैं तथा उसे उलाहना देने लगे हैं कि वह (जापान) उनके किसी काम में सहायक न हो सका है। जिस शक्ति के कारण जापान अपनी "वृहत्तर पूर्वी एशिया की युद्ध योजना" को कार्यान्वित करने में असमर्थ हो गया वह थी चीन का दीर्घकालीन प्रतिरोध युद्ध। संसार के सभी राष्ट्र आज इसे स्वीकार करते हैं कि हमारे प्रतिरोध से संसार भर को कितना लाभ पहुँचा है। इस वर्त्तमान विश्व युद्ध में खास कर एशिया और प्रशांत युद्ध मोर्चे पर जापान को विरुद्ध चीन की इस लड़ाई ने जो काम किया है वह इस अवसर के लिये श्रेष्ठ चीनी कहावत के अनुसार "धारा के बीच पड़ा एक ठोस पत्थर है जिसमें जल की वेगवती धारा को रोकने की प्रबल शक्ति" भरी है।

सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के लिये चीन के इस प्रतिरोध युद्ध का

जो महत्त्व रहा है उससे युद्ध की प्रगति के साथ-साथ विदेशी राष्ट्रों में हमारे लिये धीरे-धीरे सम्मान की भावना भी बढ़ती जा रही है। युद्ध के प्रारम्भ में विदेशी राष्ट्रों ने समझा था कि हम लोग थोड़े काल तक ही प्रतिरोध युद्ध चला सकेंगे। उस समय तो संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, ग्रेटब्रिटेन आदि देशों को केवल यह चिंता थी कि किस तरह जापान को चीन स्थित उनके अधिकारों और स्वार्थों पर हाथ फैलने से रोका जाय और हमारे प्रतिरोध युद्ध के समाप्त होने पर कैसे वे अपनी स्थिति चीन में पूर्ववत बनाए रह सकें। दूसरी ओर जर्मनी तथा इटली इस फेर में थे कि किस भाँति हमारा प्रतिरोध जल्द से जल्द समाप्त हो ताकि जापान एशिया के दलदल से अपने को निकाल विश्व युद्ध छेड़ने में उनका साथ दे सके। पर जब उन्होंने देख लिया कि चीन ने तो अन्त तक प्रतिरोध करने का संकल्प कर लिया है तब उन्होंने अपना मनसूबा छोड़ दिया। उधर ग्रेटब्रिटेन, संयुक्तराष्ट्र और सोवियत युनियन ने चीन की शक्ति को समझा। उन्होंने देखा कि हमारा प्रतिरोध युद्ध केवल चीनी राष्ट्र और चीनी जनता की राष्ट्रीय स्वतंत्रता और स्वाधीन अस्तित्व की माँग और एशिया में शांति स्थापना का प्रयत्न मात्र ही नहीं है बल्कि संपूर्ण संसार की स्थायी शांति और सम्मिलित सुरक्षा रूपी जंजीर की एक सुदृढ़ कड़ी भी है। यूरोप में युद्ध छिड़ जाने से यूरोपीय धुरी शक्तियों और जापान की संसार को आपस में बाँट लेने की भयंकर योजना स्पष्ट हो गई। तब प्रजातंत्र के हिमायती राष्ट्रों ने जाकर समझा कि हमारे प्रतिरोध युद्ध ने संसार के डाकू राष्ट्रों में से एक सब से प्रबल राष्ट्र को फांस रखा है और उन्होंने यह भी समझा कि हम लोगों ने संयुक्तराष्ट्रों के भार का अधिक हिस्सा ढोया है। इस प्रकार घटना चक्र ने सिद्ध कर दिया है कि चीन ने प्रतिरोध युद्ध चला कर केवल संसार के आक्रमण विरोधी शक्तियों के लिये पथप्रदर्शन का काम ही नहीं किया है बल्कि एशिया में आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा का साधन भी प्रस्तुत किया है।

पाँचवा अध्याय

समानता के आधार पर हुई नई संधियों की विषय-सूची

और

भविष्य का राष्ट्रीय पुनर्निर्माण

१

असम संधियों का रद्द होना और समानता के आधार पर हुई नई संधियों का महत्व

मैंने पहले ही कहा है कि हमारे प्रतिरोध युद्ध की प्रगति के साथ साथ विदेशी राष्ट्रों के दिल में हमारे लिये सम्मान की भावना भी बढ़ती गई है। पर इतने से ही असम संधियाँ रद्द नहीं होतीं यदि राष्ट्रीय सरकार ने कूटनीतिक क्षेत्र में अपना प्रयत्न जारी न रखा होता। पिछले पाँच वर्षों से राष्ट्रीय सरकार ने बराबर एक वैदेशिक नीति का पालन किया है जिसका लक्ष्य यह है कि चीन की राष्ट्रीय भावनाओं और युद्ध उद्देश्यों को बाहर वाले अच्छी तरह जानें और समझें। यह नीति न अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हुए परिवर्तन से और न देश के भीतर के मतभेद से डगमगाई और उसके कारण अन्त में हमारा लक्ष्य पूरा हुआ—असम संधियाँ रद्द हुईं।

पहले चीन की राष्ट्रीय भावना की ही बात लें। चूंकि असम संधियों के जुए के नीचे चीन दबा हुआ था और कमजोर हो गया था इसलिये यह निश्चित था कि शक्तिशाली आक्रमणकारियों का विरोध करने के लिये वह मित्रराष्ट्रों की सहायता लेता। फिर भी राष्ट्रीय सरकार ने 'स्वयं शक्ति भर कोशिश करो' वाली प्राचीन शिक्षा का पालन करते हुए अपने सशस्त्र प्रतिरोध युद्ध के प्रारम्भ में ही "राष्ट्र को पुनर्जीवित करने के लिये चीन की निजी शक्ति के बढ़ाने" के सिद्धान्त की घोषणा की। युद्ध के प्रथम साढ़े पाँच वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय विकास की धाराओं में समय समय पर परिवर्तन होता रहा है; पर राष्ट्रीय सरकार का कूटनीतिक प्रयत्न अपने निर्धारित मार्ग

से इधर-उधर कभी नहीं हुआ। जब परिस्थिति हमारे प्रतिकूल हुई तब भी हम हतोत्साह नहीं हुए। भयंकर खतरे की हालत में भी हम में साहस का अभाव नहीं हुआ। हमने न व्यर्थ किसी को दुश्मन बनाया और न किसी के आगे झुके। हमने मित्रराष्ट्रों से सहायता पाने के एक भी अवसर को नहीं खोया पर हम "दूसरे से सहायता लेने के पहले अपनी शक्तिभर प्रयत्न करने" के सिद्धान्त से भी कभी विचलित नहीं हुए।

हम लोग चीन के सशस्त्र प्रतिरोध के लक्ष्य की ओर दृष्टि डालें। हम केवल अपने राष्ट्र की स्वतंत्र सत्ता बनाए रखने के लिये ही युद्ध नहीं कर रहे हैं बल्कि विश्व-शांति बनाए रखने के लिये भी युद्ध कर रहे हैं, जो विश्व-शांति अविभाज्य है और अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के लिये जिसका बना रहना आवश्यक है। इन दोनों बातों का निर्णय हमने हथियार उठाने के समय ही कर लिया था। इस बात में पूर्ण विश्वास कर कि विश्व-शांति अविभाज्य है हमारी राष्ट्रीय सरकार ने सतत परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में रहते हुए भी संसार व्यापी आक्रमण विरोधी मोर्चा बनाने में भाग लिया—जिसका बनाया जाना नितान्त आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, इस पूर्ण विश्वास के कारण कि विश्व से न्याय नहीं मिटाया जा सकता हमारी सरकार अपने मित्रराष्ट्रों की विपद-कठिनाइयों के परे यह देख सकी कि आक्रमणकारियों का पतन अवश्य होगा। संसार में न्याय और शांति की स्थापना के लिये तथा मानव मात्र की मुक्ति के लिये चीन की स्वतंत्रता तथा उसके राष्ट्रीय अस्तित्व का बना रहना अति आवश्यक है; इसलिये इन सबों की प्राप्ति साथ साथ होनी चाहिए। हमारे सशस्त्र प्रतिरोध का यही लक्ष्य है और इसलिये हमारी वैदेशिक नीति की विशेषता यह रही है कि एक तरफ तो अपनी जिम्मेवारी निभाई जाय और एक मात्र बाहरी सहायता पर नहीं निर्भर रहा जाय और दूसरी ओर "स्वयं शक्तिभर प्रयत्न किया जाय" और "दूसरे लोगों के साथ वही सिद्धान्त बरता जाय जो अपने ऊपर लागू किया जाता हो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीन की वैदेशिक नीति की सफलता आकस्मिक घटना मात्र नहीं है। इसी के कारण वह अपने मार्ग की सभी बाधाओं को पार कर स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अंतिम विजय पथ पर संयुक्त राष्ट्रों के साथ आगे बढ़ रहा है। यह सफलता तो हमारी जनता की वर्णनातीत कठिनाइयों और हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र के भयंकर अपमान के बाद प्राप्त हुई है।

'१८ सितम्बर की घटना' (सन् १९३१ के १८ सितम्बर को जापान ने चीन के भूभाग मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया था) के बाद चीन विदेशी शक्तियों के साथ चीन स्थित उनके वहिर्देशीय अधिकार के रद्द करने की जो बातचीत चला रहा था वह वातचीत जहाँ की तहाँ रह गई। चीन और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका इन दोनों देशों की सरकार के बीच जो चिट्ठी-पत्री चली उसके कारण मई, सन् १९४१ (प्रजातंत्र संवत् ३०) में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका ने चीन स्थित अपने वहिर्देशीय अधिकार तथा उससे संबंधित दूसरे विशेष अधिकारों को छोड़ देना स्वीकार कर लिया; पर यह प्रस्ताव रखा कि "पुनः शांति की अवस्था आने पर ही" (उस समय युद्ध चल रहा था) समझौते की बातचीत चलाई जाय। चीन और ग्रेटब्रिटेन के बीच भी इसी प्रकार का पत्र व्यवहार हुआ और ग्रेटब्रिटेन ने इसी साल की ७ जुलाई को चीन स्थित अपने वहिर्देशीय अधिकार छोड़ देने, रियायती क्षेत्रों को लौटा देने तथा समानता और पारस्परिक शर्त्तों पर संधि में संशोधन करने की बात स्वीकार की; पर उसने भी यही प्रस्ताव रखा कि "सुदूरपूर्व में शांति स्थापित हो जाने पर" ही समझौते की बातचीत हो। १० अक्टूबर, सन् १९४२ में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन की सरकार ने अपनी इच्छा से तथा एक ही समय चीन की राष्ट्रीय सरकार को लिखा कि वे चीन स्थित अपने अपने वहिर्देशीय अधिकार तथा उससे संबंधित दूसरे विशेष अधिकारों को छोड़ देने के लिये तथा समानता और पारस्परिक शर्त्तों के आधार पर नई संधियाँ करने को तैयार हैं। और तब ११ जनवरी, सन् १९४३ को ऐसी ही चीनी अमरिकी और चीनी-ब्रिटिश संधियाँ हुईं। यह ध्यान देने की बात है कि इन दो नई संधियों के होने का महत्त्व केवल संधि की शर्तों को लेकर ही नहीं है बल्कि इनका महत्त्व इसलिये भी है कि उनसे एक तरफ तो चीन तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के बीच और दूसरी ओर चीन और ग्रेटब्रिटेन के बीच और भी मैत्री संबंध दृढ़ हो गया है। ये नई संधियाँ भविष्य में चीन और संसार के दूसरे स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच होने वाली संधियों के लिये उदाहरण का काम देंगी। साथ साथ, युद्ध समाप्ति के बाद चीन विभिन्न राष्ट्रों से इन नई संधियों के सर्वथा अनुकूल ही मैत्रीपूर्ण व्यापारिक, सामुद्रिक और राजदूताधिकार संबंधी व्यापक संधियाँ करेगा। इसलिये हम कह सकते हैं कि गत एक शताब्दी की असम संधियाँ आज से सर्वथा समाप्त हो गईं। यह भी कहा जा सकता है कि आज तक चीन और दूसरे राष्ट्रों के बीच जो

असंतोष तथा विरोध का भाव था वह भी सर्वथा चला गया और आपस में किसी तरह की ग़लतफ़हमी नहीं रही। नई संधियों के कारण जो विशेष अधिकार रद्द हुए हैं उनका संक्षिप्त विवरण यों हैं—

(१) राजदूताधिकार क्षेत्र (वहिर्देशीय अधिकार)—
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन के नागरिक तथा संस्थायें चीन में जिन वहिर्देशीय अधिकारों का उपभोग करते थे वे रद्द कर दिए गए। अब से अन्तर्राष्ट्रीय कानून और प्रथा के अनुसार चीन स्थित अमरिकी और ब्रिटिश नागरिक तथा संस्थायें चीन की प्रजासत्तात्मक सरकार के अधिकार क्षेत्र में होंगी।

(२) 'राजदूतावास क्षेत्र' और चीन में सेना रखने का अधिकार—
सन् १९०१ की शांति संधि के अनुसार संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन ने जो विशेष अधिकार प्राप्त किए थे जैसे "राजदूतावास क्षेत्र" पइ चिङ्—मुकदन रेल लाइन के किनारे किनारे अपने सैनिक रखने के अधिकार आदि, वे रद्द कर दिए गए। पइ चिङ् के 'राजदूतावास क्षेत्र' के शासन-प्रबन्ध तथा नियंत्रण के साथ साथ उसकी सरकारी सम्पत्ति और सरकारी उत्तरदायित्व चीन की प्रजासत्तात्मक सरकार को सौंप दिया गया।

(३) विदेशी निवास क्षेत्र और रियायती क्षेत्र—
चीन में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन के जितने रियायती क्षेत्र संबंधी अधिकार थे वे उठा दिए गए और उन क्षेत्रों के शासन प्रबन्ध तथा नियंत्रण के साथ साथ उनकी सरकारी सम्पत्ति तथा सरकारी उत्तरदायित्व भी चीन को प्रजासत्तात्मक सरकार के हाथों में दे दिया गया।

(४) विशेष अदालतें—
अन्तर्राष्ट्रीय निवास क्षेत्र में अमरिकी और ब्रिटिश अदालतों को जितनी सुविधायें प्राप्त थीं वे ले ली गईं।

(५) विदेशी नाविक सम्बन्धी विशेष अधिकार—
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन ने चीन के समुद्र और नदियों में विदेशी नाविकों को नियुक्त करने संबंधी

अपने अधिकार छोड़ दिए।

(६) जंगी जहाज संबंधी विशेष अधिकार—

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन को अपने अपने जंगी जहाजों को चीन के समुद्र या नदियों में ले आने का जो विशेष अधिकार प्राप्त था वह रद्द कर दिया गया। अब से चीन संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और ग्रेटब्रिटेन के जंगी जहाज जब एक दूसरे के यहाँ जाएंगे तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रथा के अनुसार परस्पर भद्रतापूर्ण व्यवहार करेंगे।

(७) *चीन के चुङ्गी विभाग के इन्सपेक्टर जेनरल के पद पर ब्रिटिश नागरिक की नियुक्ति का अधिकार—*

ग्रेटब्रिटेन ने चीन की चुङ्गी के इन्सपेक्टर जेनरल के पद पर ब्रिटिश नागरिक की नियुक्ति के अधिकार को छोड़ दिया।

(८) *समुद्रतट पर व्यापार करने तथा देश के भीतर जहाज चलाने का अधिकार—*

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा ग्रेटब्रिटेन के नागरिकों को चीन के समुद्र किनारे किनारे व्यापार करने तथा देश के भीतर की नदियों में जहाज चलाने का जो विशेष अधिकार प्राप्त था वह उठा दिया गया।

(९) *चीन की सार्वभौमिकता से संबंध रखने वाली दूसरी बातें—*

चीन की सार्वभौमिकता से संबंध रखने वाली अन्य बातें जिनका समावेश इन नई संधियों में नहीं हुआ है, अगर कभी उठीं तो चीन और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका या चीन और ग्रेटब्रिटेन परस्पर सर्वमान्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून और अन्तर्राष्ट्रीय प्रथा के अनुसार उन्हें तय कर लेंगे।

उत्तरी अभियान की समाप्ति के समय चुङ्गी संबंधी स्वायत्त अधिकार के लिये किया गया आन्दोलन सफल हुआ था और आज क्षेत्रगत सार्वभौमिकता के लिये किए गए आन्दोलन में हमें सफलता मिली। केवल इतना ही नहीं, अब चीन का ग्रेटब्रिटेन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और अन्य देशों के साथ हुए संबंध में जो एकता तथा पारस्परिकता की भावना परिव्याप्त है उससे उनके आपस की जितनी भी समस्यायें हैं, सबका स्वतः ही संतोषजनक समाधान हो जायगा। अगर हम इन नई संधियों की पुरानी असम संधियों से

तुलना करें तभी हम नई संधियों के पूर्ण महत्व को समझ सकेंगे।

पर यह बात नहीं है कि हमें इन नई संधियों में असंतोष करने का कारण नहीं रहा हो। ग्रेटब्रिटेन के साथ जो नई संधि हुई है उसमें ब्रिटेन को पट्टे पर दिए गए भूभाग चिउ लुङ् (काव्लुन्) की चर्चा नहीं है। यह चिउ लुङ् क्षेत्र मूलतः चीन का ही टुकड़ा है। कारण चीन और ग्रेटब्रिटेन के बीच के आपसी संबंध में कुछ कमी रह ही गई है। इसलिये चीनी-ब्रिटिश संधि पर हस्ताक्षर होने के दिन ही चीन की सरकार ने सरकारी रूप से ब्रिटिश सरकार को सूचित कर दिया कि चीन ने चिउ लुङ् को पुनः अपने अधीन करने का अधिकार नहीं छोड़ा है। इसलिये चीन सरकार 'पट्टे पर दिए गए चिउ लुङ् क्षेत्र' पर अपने अधिकार की मांग किसी समय भी कर सकती है। पर हमारी जनता को यह समझना चाहिए कि हाङ् काङ् और चिउ लुङ् भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे पर आश्रित हैं इसलिये दोनों की समस्या एक साथ सुलझनी चाहिए। शायद यही सोचकर ब्रिटिश सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करना अभी स्थगित रखा है। हम लोगों को पूर्ण विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार इस छोटे से भूभाग को लेकर चीन और ग्रेटब्रिटेन की स्थायी मित्रतापूर्ण संबंध में बाधा नहीं आने देगी।

सोवियत क्रांति (सन् १९१७) के बाद रूसी सोवियत समाजवादी प्रजासत्तात्मक संघ की सरकार ने सन् १९२४ ई० (प्रजातंत्र संवत् १३) में "चीन की प्रजासत्तात्मक सरकार और सोवियत समाजवादी प्रजासत्तात्मक संघ रूस की सरकार के बीच के प्रश्नों के निपटारे के लिये आम बातों पर समझौता" किया और चीन स्थित अपने सभी विशेष अधिकारों को छोड़ दिया। यह ध्यान देने की बात है कि उस समय राष्ट्रीय क्रांति का दबदबा कुआङ् तुङ् तक ही सीमित था और चीनी सोवियत समझौता जो समानता के आधार पर हुआ था वह सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं किया गया। जब राष्ट्रीय सरकार अपनी राजधानी नान् चिङ् ले गई तो उसके तुरत ही बाद वह बहुत सी वैदेशिक और गृह समस्याओं से घिर गई; इसलिये अब तक चीन की सरकार और सोवियत सरकार के बीच की सीमा संबंधी समस्या संतोषजनक ढंग से नहीं सुलझ सकी है। अब चूंकि दूसरे संयुक्तराष्ट्रों (United Nations) ने भी चीन स्थित अपने अपने विशेष अधिकारों को छोड़ दिया है इसलिये यह विश्वास और आशा की जाती है कि चीन और सोवियत रूस के बीच की सभी समस्यायें दोनों देशों के बीच स्थापित

परम्परागत मैत्री भाव के अनुसार ठीक ठीक और समान स्तर पर सुलझ जाएंगी।

प्रथम अध्याय में मैंने कहा है कि अपमानजनक कष्ट को सहने और भारी उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता तथा ईमानदारी और प्रतिष्ठा की तीव्र भावना ही मनुष्यों के मुख्य नैतिक गुण हैं। अपमान सह लेने तथा उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता के कारण तथा अपने दृढ़ संकल्प और भयंकर संघर्ष के कारण हम लोग शताब्दी पुरानी असम संधियों के अपने बंधन को काट सके और अपने देश तथा अपनी जनता के लिये स्वाधीनता और स्वतंत्रता प्राप्त कर सके। ईमानदारी और प्रतिष्ठा की तीव्र भावना के कारण राष्ट्रीय सरकार अपने राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा असम संधियों के रद्द हो जाने के कारण विश्व में होने वाली चीन की भावी स्थिति को यह नहीं समझती है कि उसने बहुत से अधिकार प्राप्त कर लिए हैं बल्कि वह तो समझती है कि उसके ऊपर बहुत से कर्त्तव्यों का भार आ पड़ा है जिन्हें उसे पूरा करना है तथा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा है जिसे निभाना है। सीधे कहें, तो असम संधियों के रद्द होने की जो प्रतिक्रिया हमारी जनता में हुई है उसमें हानि और लाभ की भावना नहीं है *बल्कि उससे तो जनता में कर्त्तव्य पालन की भावना जाग उठी है और उत्तरदायित्व निभाने की भावना ऊँची उठी है।* यही है सबसे बड़ी बात जिसे मैं अपनी जनता से साफ साफ बता देना चाहता हूँ।

हम लोगों को समझना चाहिए कि असम संधियों का रद्द होना हमारी राष्ट्रीय क्रांति की प्रारम्भिक सफलता है। गत सौ वर्षों से सचमुच में हमारी जनता इन पुरानी संधियों के बंधन में जकड़ी हुई अपने अपमान को पोछने तथा चीन को पुनः शक्तिशाली बनाने की मांग करती रही है। पर जनता की मांगों को पूरा करने के लिये जो सिद्धान्त बने और आन्दोलन छेड़े गए वे अभाग्यवश पक्षपात युक्त भावनाओं, असामयिक प्रयत्नों, और लोकप्रिय समर्थन के अभाव या स्वार्थपूर्ण आकांक्षाओं के कारण सफल न हुए। ये सिद्धान्त और आन्दोलन कुछ तो साल छः महीनों तक चले और कुछ तीन, चार पाँच वर्षों तक चलकर सदा के लिये समाप्त हो गए। जब कभी भी यूरोप या अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में या विदेशों की आन्तरिक राजनीति में परिवर्तन होता था और जब कभी विदेशों में कोई नया विचार या सिद्धान्त कम या अधिक रूप में प्रचलित होता था तो उनका

प्रभाव चीन के प्रचलित सिद्धान्तों और आन्दोलनों पर अवश्य पड़ता था। हमारा राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन ही इसका एकमात्र अपवाद रहा। इसके सिद्धान्त तो लोकहित पर आधारित हैं, इसकी आकांक्षा में पूर्ण निष्ठा है और शुद्ध हमारा राष्ट्र की नैतिक शक्ति ही इसकी भावना है। इसलिये क्वोमिनताङ् ही वह केन्द्रीय संगठन है जो सम्पूर्ण देश के क्रांतिकारी तथ्यों को अपने में आत्मसात कर सकी। इतिहास बतलाता है कि क्वोमिनताङ् ने पचास वर्षों से भी अधिक समय से निरन्तर संघर्ष कर अमूल्य अनुभव प्राप्त किया है और देश में जनता उसकी समर्थक है और बाहर विदेशी शक्तियाँ भी उसे स्वीकार करती हैं तथा क्वोमिनताङ् के प्रयत्नों से ही असम संधियाँ रद्द हुई हैं जो हमारी महान् प्रारम्भिक सफलता है। भूतकाल पर विचार कर हम भविष्य को जान सकते हैं। इसलिये हम लोगों को पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक सतर्क रहना चाहिए और अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये और भी कठिन परिश्रम करना चाहिए।

राष्ट्रीय क्रांति की प्रारम्भिक सफलता से हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य वास्तविक रूप में प्रारम्भ होता है। इसके दो पक्ष हैं—आंतरिक पक्ष और अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष।

आंतरिक पक्ष की बात लें तो हमें यह समझना चाहिए कि राजनीतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के हमारे आदर्श तभी कार्यान्वित हो सकते हैं जब चीन स्वाधीनता और स्वतंत्रता का पद प्राप्त कर ले। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीय क्रांति के कर्त्तव्य को और पुनर्निर्माण के कार्यों को कार्यान्वित करने में हमें राष्ट्रीयता के सिद्धान्त से प्रारम्भ करके प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर और फिर जनता की जीविका के सिद्धान्त तक पहुँचना चाहिए। प्रजातंत्र के सिद्धान्त के संबंध में कहें तो "स्थानीय स्वायत्त शासन लागू करने की व्यावहारिक पद्धति" के आधार पर हमें राजनीतिक संरक्षण काल से वैधानिक शासन काल में प्रवेश करना चाहिए। वाह्य दृष्टि से देखें तो चीन को सुदृढ़ राष्ट्रीय सुरक्षा की इकाई के रूप में अपना विकास करना चाहिए। और अति वैयक्तिक उदारवाद के खतरे से बचना चाहिए क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता नहीं हो सकेगी और हमारे लोग पुनः बिखरे बालू के ढेर के समान बन जाएंगे। आंतरिक दृष्टि से हमें अपने लोगों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वे अपने राजनीतिक स्वत्वों का प्रयोग कर सकें ताकि केवल कोई वर्ग विशेष नहीं बल्कि सब लोग राजनीति में भाग ले सकें और

अन्त में किसी वर्ग विशेष के शासन के स्थान पर प्रजातंत्र लागू हो। जनता की जीविका के संबंध में हमें अपने युद्धकालीन उत्पादन और पुनर्निर्माण का कार्यक्रम चलाते रहना चाहिए और साथ साथ हमें युद्धोत्तर काल के लिये "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" नामक पुस्तक में बताए गए कार्य-क्रम को लागू करने की तैयारी करनी चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारा उत्पादन सब लोगों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से हो ताकि न तो वर्ग संघर्ष की संभावना ही हो और न बिना व्यापक योजना के उत्पादन ही किया जाय। क्योंकि इसके बिना चीन के लिये प्रतियोगिता और स्टेट पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाले संसार में टिकना असंभव हो जायगा।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से देखें तो चीन का प्रतिरोध युद्ध आक्रमक राष्ट्रों के विरुद्ध के विश्व युद्ध का एक अभिन्न अंग बन चुका है। इससे यह सिद्ध होता है कि चीन की विजय तथा अन्य आक्रमण विरोधी राष्ट्रों की विजय एक में जुड़ी हुई हैं। इस दुर्द्धर्ष संग्राम के बाद संसार की शांति और मानव मात्र की स्वतंत्रता चीन और मित्र राष्ट्रों के सम्मिलित कार्यों के द्वारा ही सुरक्षित रह सकती हैं। इसलिये राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के अलावा हमें विश्व शांति स्थापित करने तथा मानवमात्र की स्वतंत्रता की रक्षा करने के उत्तरदायित्व में भी अपना पूरा हिस्सा लेने की तैयारी करनी चाहिए।

२

भविष्य में हमारी जनता के कार्यों की दिशा और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आवश्यकतायें

अगर हमारी जनता राज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करती है तो राज स्थापित करना और एक राष्ट्र की हैसियत से जीवित रहना असम्भव है और इससे भी असंभव विश्व के मामलों में अपनी आवाज उठाना है। इस वक्तव्य की सच्चाई को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी अध्याय में पहले मैंने चीन के ऊपर पड़े महान् और कठिन उत्तरदायित्व का वर्णन किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे नागरिकों का अपने राज के प्रति तथा सम्पूर्ण संसार के प्रति जो कर्त्तव्य है वह अब से दिन प्रति दिन बढ़ता ही जायगा।

"आकाश के नीचे (विश्व में) कोई चीज सरल नहीं है और आकाश के नीचे कोई चीज कठिन भी नहीं है।" राष्ट्रीय क्रांति की प्रारम्भिक

सफलता हमारी जनता द्वारा शताब्दी भर अविराम संघर्ष करने तथा साढ़े पाँच वर्षों तक भयंकर प्रतिरोध युद्ध चलाने के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। इससे ही हम देख सकते हैं कि किसी चीज को प्राप्त करना सरल नहीं है। पिछले तीस वर्षों के अंदर राष्ट्रीय क्रांति ने तीन हजार वर्ष पुराने राजतंत्र को तथा उसके साथ तीन सौ वर्षों से चले आने वाले निरंकुश मांचू शासन को भी उखाड़ फेंका है तथा असम संधियों के कड़े बंधन से अपने को छुड़ा लिया है जैसी संधियाँ संसार में पहले कभी सुनी भी नहीं गईं। अगर हमारे लोग एक होकर सोचें और कार्य करने लगें, जनता के तीन सिद्धान्तों में विश्वास रखें जिनका उद्देश्य राष्ट्र के लिये मुक्ति प्राप्त करना है तथा राष्ट्रीय क्रांति के महान् पथ का अनुसरण करते रहें तो उन्हें कभी असफलता नहीं मिल सकती। राष्ट्रपिता डा० सुन यात्-सन् ने कहा है—"व्यक्तियों का समूह ही राज है। हर व्यक्ति अपने मन का यंत्र है। राज का काम व्यक्तियों के एक समूह को प्रकट करता है। .....*अगर मुझे विश्वास हो कि मैं अमुक काम कर सकता हूँ तो मैं उस काम के करने के लिये पहाड़ उठाने या समुद्र भरने जैसी कठिनाइयों को भी पार कर जाऊँगा। अगर मुझे विश्वास हो कि अमुक काम नहीं हो सकता तो अपनी हथेली पलटने या टहनी को तोड़ने जैसा सरल काम भी नहीं कर सकूंगा।*.....हर चीज की सफलता के लिये मन ही सर्व प्रधान शक्ति रहा है और रहेगा भी। उदाहरण देखिए कि मांचू राजवंश को उखाड़ फेंकना मन की ही सफलता थी। और प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के बाद पुनर्निर्माण का जो कार्य चालू किया गया उसका विफल होना मन की विफलता का ही द्योतक है।" फिर देखिए कि अभी हाल में जो असम संधियाँ रद्द हुई हैं वह राष्ट्रपिता डा० सुन् यात् सन् की शिक्षा का पालन करने तथा उनके द्वारा हम लोगों पर सौंपे गए कर्त्तव्य को परिश्रम और अध्यवसाय से कार्यान्वित करने से हुआ है। इसी तरह हमें अपने सशस्त्र प्रतिरोध और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भी सफलता मिलेगी। इसलिये यह कहा जा सकता है कि "आकाश के नीचे वास्तव में कोई चीज भी कठिन नहीं है।"

क्रांति के सिद्धान्त सूर्य और चन्द्रमा की चाल की तरह स्पष्ट हैं। क्रांति के कार्यक्रम के संबंध में राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने अपनी पुस्तकों में ब्योरेवार लिखा है। क्रांति की सफलता से उसकी अच्छाई प्रमाणित हो चुकी है। अगर हमारी जनता क्रांति के सिद्धान्तों का पालन करे, निर्धारित

प्रदर्शक बनाना चाहिए। हमें अपने वास्तविक स्वभाव का अनुसरण करना चाहिए, अपने आंतरिक ज्ञान और योग्यता को विकसित करना चाहिये और ईमानदारी से तथा निडर होकर कार्य करना चाहिये। पूरी ईमानदारी से काम करने का अर्थ है कि मनुष्य सच्चे काम के लिए शांति पूर्वक तथा इच्छा से अपने जीवन तक का बलिदान कर दे। प्राचीन लोगों का यह कथन कि "सच्चे काम के लिये अपना जीवन तक बलिदान करने में कभी नहीं हिचकिचाना चाहिये और अपने जीवन की रक्षा के लिये सच्चे काम को कभी नहीं छोड़ना चाहिये" ईमानदारी से काम करने का वास्तविक अर्थ प्रकट करता है। क्रांतिकारी कामों के लिये तो इस प्रकार की ईमानदारी वांछनीय है और एकमात्र वास्तविक क्रांतिकारी कामों द्वारा ही पूर्ण रूप से काम करने की ईमानदारी प्रकट होती है। इस प्रकार की भावनायें ही हम क्रांतिकारियों में होनी चाहिये क्योंकि हम जनता के तीन सिद्धान्तों को लागू करना चाहते हैं और अपने राष्ट्र तथा संसार की मुक्ति चाहते हैं। संक्षेप में कहें, तो निष्ठा ही वास्तविक कामों की सजीव भावना है। निष्ठावान अपने स्वार्थ को नहीं सार्वजनिक स्वार्थ को देखता है। निष्ठावान पूर्ण दृढ़ होकर सत्य कार्य में लगता है और कठिनाइयों तथा खतरे की परवाह न करते हुए अंतिम सफलता तक स्थिरता से तथा शान्तिपूर्वक बढ़ता जाता है। राष्ट्रपिता डा० सुन् यात-सन् की "समझना कठिन है पर करना सरल है" की शिक्षा का यही अर्थ क्रांतिकारी आन्दोलन के लिये है।

जैसा मैंने पहले कहा है कि क्रांति की प्रारम्भिक सफलता के बाद ही राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य वास्तविक रूप से प्रारम्भ होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की सफलता के बाद तो वर्तमान अवस्था में क्रांति का कार्य प्रजातंत्र के सिद्धान्त को तथा जनता की जीविका के सिद्धान्त को कार्यान्वित करना है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि क्रांति का ध्वंसात्मक कार्य देव संयोग से पूरा नहीं हुआ है बल्कि निर्भीक तथा वीरोचित विश्वास, पूर्ण निष्ठा और आत्मोन्नति के अविश्रांत प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ है। दूसरी ओर, क्रान्ति के रचनात्मक कार्यों के लिये यह आवश्यक है कि हमारी जनता एक साथ मिलकर दिल से तथा सक्रिय होकर बिना गर्व किए या लम्बी बातें बघारे कार्य में जुट जाए। अगर हम इस रीति से कार्य में जुट जाएँ तो हमारे लिये डरने की कोई बात नहीं है कि समय पर कार्य पूरा नहीं हो सकेगा। राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने कहा

है—"ध्वंस से बढ़ कर कोई चीज कठिन नहीं है और निर्माण से सहज कोई दूसरी चीज नहीं है।" *सन् १९११ ई० के बाद हमें जो पुनर्निर्माण कार्य में असफलता मिली उसका कारण यह था कि हमारे लोगों ने पुनर्निर्माण कार्य को बहुत हल्के दिल से किया और उन्हें गलत विश्वास था कि पुनर्निर्माण कार्य के लिए क्रांतिकारी पद्धति की आवश्यकता नहीं होती है। हमें वही गलती दुहरानी नहीं है। हमें तो यह ध्यान रखना है कि ध्वंस और निर्माण दोनों कार्य साथ साथ हों।* पुनर्निर्माण कार्य में हमें उन्हीं भावनाओं और पद्धतियों के साथ बढ़ना है जो हमने अपनी क्रांति और सशस्त्र प्रतिरोध में अपनाई है।

राष्ट्र पिता ने राष्ट्रीय क्रांति और पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को तीन शिक्षा-कालों में विभक्त किया है—सैनिक शासन काल, राजनीतिक संरक्षण काल और वैधानिक शासन-काल। शिक्षा, सैनिक कार्य और राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में आधारभूत कार्य हैं जो समान रूप से तीनों कालों में किए जाने चाहिये और ये परस्पर सम्बद्ध और अविभाज्य हैं। इन तीनों क्षेत्रों में उन्नति करने का अर्थ राज को समृद्ध और शक्तिशाली बनाना है और किसी एक क्षेत्र में भी उपेक्षा करने का अर्थ राष्ट्र को गिराना है। विभिन्न आधुनिक राजों का निर्माण इसी सिद्धान्त पर हुआ है और परम्परागत राजवंशों द्वारा इसी सिद्धान्त के पालन के कारण ही चीनी राज का भी निर्माण हुआ है। जनता के तीन सिद्धान्तों के आधार पर अपना राज स्थापित करने, अपने राष्ट्रीय अस्तित्व को बचाए रखने तथा संसार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने के प्रयत्नों में शिक्षा, सैनिक कार्य और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था इन तीनों का घनिष्ट समन्वय होना आवश्यक है। एकमात्र तभी हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य की पूर्ति की आशा रख सकते हैं। शिक्षा के संबन्ध में हमें अपनी परम्परागत छः कलाओं की शिक्षा के सार को ही आधार बनाना चाहिए और आत्म रक्षा तथा अपना अस्तित्व बनाए रखने की शक्ति के विकास के लिये हमें अपनी जनता को इस योग्य बनाना चाहिए कि हर व्यक्ति उत्पादक और राष्ट्रीय सुरक्षा के कार्यों में भाग ले सके। हम अपने लोगों को ऐसा बनाएँ कि हर व्यक्ति अपने दिमाग और हाथ दोनों से काम ले सके और बुद्धि तथा चरित्र दोनों का विकास कर सके। तभी निराशा, शारीरिक शैथिल्य, वंचकता, डींग मारना और इसी प्रकार की अन्य बुरी आदतें दूर हो सकेंगी। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के संबन्ध में हमें अपनी नव प्राप्त स्वाधीनता

और स्वतंत्रता के आधार पर जनता के आर्थिक जीवन का संतुलित विकास करना चाहिए ताकि जनता की जीविका आसान हो जाय। भूतकाल में हमारे आर्थिक जीवन में जो अव्यवस्थित तथा एक तरफा विकास हुआ है और जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा और जनता की जीविका में बाधा पड़ी है उन भूलों को हमें हर तरह से सुधारना है। सैनिक कार्य के संबंध में हमें एक तरफ तो राष्ट्रीय सुरक्षा का अपनी संस्कृति के साथ और दूसरी तरफ जनता की जीविका के साथ समन्वय स्थापित करना है। अगर यह समन्वय स्थापित हो जाता है तो हमारा राष्ट्र इतना शक्तिशाली होगा कि वह अपनी रक्षा स्वयं कर सकेगा, संसार में अपना अस्तित्व बनाए रख सकेगा और विश्व शांति की रक्षा तथा मानव मात्र की मुक्ति के अपने उत्तरदायित्व को निभा सकेगा।

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के उपरोक्त आधारभूत कामों की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि पुनर्निर्माण कार्य के पाँच मुख्य पहलुओं यानी मानसिक पहलू, नैतिक पहलू, सामाजिक पहलू, राजनीतिक पहलू और आर्थिक पहलू की एक व्यापक योजना बना ली जाय और उसे लागू किया जाय। उन देशों में जहाँ पूँजीवाद का बोलबाला है राजनीति पर आर्थिक शक्तियों का केवल प्रभाव ही नहीं पड़ता बल्कि वह उन्हीं के नियंत्रण में रहती है। चीन में स्थिति ठीक विपरीत होगी। अगर हम एक शताब्दी पुरानी अर्द्ध औपनिवेशिक, असंतुलित और अव्यवस्थित आर्थिक प्रणाली को स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्रों के योग्य तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली बनाना चाहते हैं तो हमें आर्थिक विकास की प्रवृत्तियों को राजनीतिक शक्ति द्वारा नियंत्रित करना होगा। अगर हम ठोस और कार्यकारी राजनीतिक पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तो हमें सामाजिक पुनर्निर्माण से प्रारम्भ करना चाहिए क्योंकि वही राजनीतिक कामों के करने का ठोस आधार होगा। समाजिक पुनर्निर्माण की सफलता के लिये हमें पहले अपने लोगों की नकारात्मक (अभावात्मक) और निराशाजनक मनोवृत्तियों में सुधार करना तथा उनके राष्ट्र और राज के प्रति कर्त्तव्य ज्ञान को ऊँचा उठाना होगा। इसलिये दूसरे सभी पुनर्निर्माण कार्यों के लिये मानसिक और नैतिक पुनर्निर्माण के कार्यों का पहले होना आवश्यक है। जब इन पाँचों पहलुओं के पुनर्निर्माण का लक्ष्य पूरा होगा तभी शिक्षा, सैनिक कार्य और अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण समन्वय हो सकेगा जो राष्ट्र-निर्माण के लिये वांछनीय है।

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सिद्धान्त और कार्यक्रम के बारे में मैंने जो कुछ

अभी कहा है वह विस्तार से मेरी लिखी "जनता के तीन सिद्धान्त की पद्धति और कार्यक्रम" नामक पुस्तिका में है। यहाँ इतना ही निर्देश करना यथेष्ट होगा कि पुनर्निर्माण के इन पाँच पहलुओं के लिये क्या क्या आवश्यक हैं और उनका मुख्य कार्यक्रम क्या है। हर बालिग नागरिक को अपने पेशे और स्थिति के अनुसार इन आवश्यकताओं में से एक को पूरा करने में लग जाना चाहिए ताकि उसके अपने ही कार्य में उन्नति हो। हर नवयुवक नागरिक को अपनी बुद्धि और प्रवृत्ति के अनुसार पुनर्निर्माण कार्य का कोई क्षेत्र चुन लेना चाहिए ताकि वह अपनी योग्यता का विकास कर सके। जब हर नागरिक चाहे वह पुरुष हो या स्त्री राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होगा तभी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य पूरा हो सकेगा और राज का जीवन भी सुरक्षित रहेगा।

(१) मानसिक पुनर्निर्माण—

असम संधियों का हमारी जनता की मनोभावना पर जो प्रभाव पड़ा उससे जनता ने अपना आत्म विश्वास खो दिया है। उसमें (जनता में) दूसरों पर निर्भर रहने की भावना तथा अनुकरण करने की दासोचित मनोवृत्ति का विकास हुआ है, विदेशी चीजों की प्रशंसा करने तथा उनसे डरने का भाव पैदा हुआ है, कपट और आत्म-वंचकता की प्रवृत्ति बढ़ी है तथा उससे (असम संधियों के प्रभाव से) चीन की परम्परागत सांस्कृतिक विरासत छिन्न भिन्न हो गई है। अब असम संधियाँ रद्द हो गई हैं इसलिये हमारे लोगों को स्वयं देखना चाहिए कि उनकी मानसिक त्रुटियाँ दूर हुईं या नहीं। अगर वे इन कमजोरियों से मुक्त नहीं होते तथा स्वाधीनता और स्वतंत्रता के आधार पर बने इस नव राज के स्वतंत्र नागरिक की तरह नहीं सोच सकते तो वे अभी भी बौद्धिक और मानसिक रूप से गुलाम रहेंगे और दूसरे देशों के राजनीतिक दास बनेंगे। अतः *अब से अपने लोगों के मानसिक पुनर्निर्माण के लिये हमें यह आन्दोलन छोड़ना चाहिए कि उनके विचार स्वतंत्र और मौलिक हों।* इस आन्दोलन की सबसे मुख्य बात होगी अपनी परम्परागत राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करना और सच्चे वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति करना। बुद्धिमत्ता, उदारता तथा

साहस ये तीनों चीन में सदा सार्वभौमिक गुण समझे गए हैं और निष्ठा इन तीनों की गतिदायक शक्ति है। ये सभी गुण हमारे राष्ट्र के नैतिक चरित्र के विशोधित तत्त्व हैं। राष्ट्र पिता डा० सुन् यात-सन् ने चीन की परम्परागत सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखते हुए पर साथ साथ संसार के प्रगतिशील सिद्धान्तों को अपनाकर नव चीन निर्माण का सबसे महान् सिद्धान्त स्थापित किया है।

"सुन यात्-सन् का सिद्धान्त" नामक उनकी पुस्तक तो आज के हमारे मानसिक पुनर्निर्माण की आवश्यकताओं को विशेष करके पूरी करती है और वह हमारा मूल्यवान पथप्रदर्शक है। इसलिये वह हमारे "स्वतंत्र और मौलिक विचार" के आन्दोलन के लिये सबसे प्रामाणिक पुस्तक है। हमें केवल पश्चिम की वैज्ञानिक पद्धतियों और सिद्धान्तों को ही नहीं अपनाना है बल्कि हमें तो शतवर्ष पुरानी दूसरों पर निर्भर रहने और दूसरों का अनुकरण करने की अपनी आदतों से भी छुटकारा पाना है ताकि हमारे राष्ट्र की रचनात्मक प्रतिभा पुनः जाग उठे। सारांश यह है कि हमारे लोग ठीक ढंग से किसी चीज का निर्माण करें और उस पर सोचें तथा स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करें; अपनी उदासीनता तथा शिथिलता को उत्साहपूर्ण काम करने की भावना में बदल दें, अकर्मण्यता छोड़ प्रत्यक्ष रूप से और साहसपूर्ण कार्य करें और अपने में अनुशासन, गौरवता, आस्था और ईमानदारी की भावना का विकास करें। एकमात्र इसी रीति से क्रांति और पुनर्निर्माण की भावना सुरक्षित रहेगी।

मानसिक पुनर्निर्माण का भार सबसे अधिक देश के माध्यमिक और प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों पर है। हमारे किशोर विद्यार्थियों पर, जो राष्ट्र के भावी नागरिक हैं, उनका प्रभाव (शिक्षकों का प्रभाव) विश्वविद्यालय के अध्यापकों से अधिक पड़ता है क्योंकि वे अपने विद्यार्थियों के नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिये संरक्षक के समान हैं। किसी चीज का प्रभाव ग्रहण करने में किशोर विद्यार्थियों का

मन सफेद कागज की तरह होता है जिस पर लाल, काली, नीली, पीली या जिस रंग की भी रोशनाई हो उससे लिखी जा सकती है। अगर किशोरावस्था में ही उन्हें आलसी होने या अनुशासन न मानने की आदत लग गई तो उन पर देश-भक्ति या राष्ट्रीय नैतिकता का प्रभाव युवावस्था में आसानी से नहीं पड़ेगा। अगर युवावस्था में ही विद्यार्थियों में आत्म-सम्मान तथा स्वतंत्रतापूर्वक काम करने की भावना न घर कर सकी तो कैसे वे बड़े होकर राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और पुनर्जागरण के भारी कार्य में भाग ले सकेंगे? राज की व्यवस्था या अव्यवस्था और राष्ट्र की चिरस्थिति या विनाश देश के उन "अज्ञात वीरों" पर निर्भर है जो माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षण कार्य में लगे हैं और जो सदा सादा जीवन व्यतीत करते और अविश्रांत परिश्रम करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि किशोर विद्यार्थियों के ये संरक्षक अपने भारी उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझेंगे और इसी पीढ़ी में अपने विद्यार्थियों के मन में राष्ट्रीय जीवन और स्वाधीनता का तथा अविजयी भावनाओं का बीज बोएंगे ताकि अब से एक या दो दशाब्दियों के अंदर राज में इतने योग्य आदमी हो जाएँ कि राज को उनकी कमी कभी न पड़े। माध्यमिक और प्राथमिक पाठशालाओं के उद्देश्य के प्रति राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में सम्मान की भावना होनी चाहिए। उन्हें विशेष सम्मान और संरक्षण दिया जाना चाहिए और उचित रूप से प्रोत्साहन और पुरस्कार मिलना चाहिए ताकि शिक्षकों और शिक्षण-व्यय के संबंध में एक तरफ तो माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा और दूसरी ओर विश्व-विद्यालय की शिक्षा का समान विकास हो सके। माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा की संतोषजनक उन्नति होने से मानसिक पुनर्निर्माण का कार्य अवश्य सफल होगा तथा हमारे सशस्त्र प्रतिरोध और बलिदान से जो राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता मिलेगी उनकी नींव ठोस होगी और क्रांति तथा पुनर्निर्माण के आदर्श केवल शब्दाडम्बर मात्र नहीं रहेंगे। उन युवकों को जो शिक्षा संबंधी कामों से दिलचस्पी रखते हैं,

माध्यमिक और प्राथमिक पाठशालाओं के कार्य को छोटा नहीं समझना चाहिए। उन्हें तो यह समझना चाहिए कि वह राष्ट्र के लिये प्रथम श्रेणी की सेवा है और राष्ट्रीय पुनरुद्धार का सब से मुख्य काम है। अगर हमारे नवयुवक माध्यमिक और प्राथमिक पाठशालाओं खास कर प्राथमिक पाठशालाओं में अध्ययन करने के काम को अपने जीवन का उद्देश्य बनाएँ, उसमें हृदय से अपने को लगा दें और व्यर्थ के नाम तथा यश की चिंता छोड़ दें तो उनकी सेवा राष्ट्र-निर्माण तथा मानसिक पुनर्निर्माण की पूर्ति की दिशा में सब से मूल्यवान होगी।

(२) *नैतिक पुनर्निर्माण*

"राष्ट्र के आध्यात्मिक संगठन की आवश्यकतायें" नामक कार्यक्रम में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिये नये विश्वास और नई भावना की आवश्यकताओं पर जोर दिया गया है। *देश की मुक्ति के लिये जिन नैतिक गुणों की आवश्यकता होती है इस कार्यक्रम में उन पर विशेषरूप से ध्यान दिया गया है। इन नैतिक गुणों का विकास ही हमारे नैतिक पुनर्निर्माण का आधार होगा* और इन गुणों के विकास के साधन के लिये हमें कहीं बाहर नहीं जाना पड़ेगा। चीनी जनता ने कितनी ही बार अपने देश को अराजकता और खतरे से बाहर निकाला है और देश में नई जिन्दगी और आशा का संचार किया है और इस प्रकार पांच हजार वर्षों से यह देश अपना अस्तित्व बनाए हुए है। इस तथ्य से ही हम अपने नैतिक गुणों के शक्तिशाली प्रभाव को देख सकते हैं जो कालक्रम से और अधिक समृद्ध होते रहे हैं तथा हर परीक्षा में और अधिक खरे होकर निकलते हैं। चीन की मुक्ति के लिये आवश्यक गुणों के विकास करने का अर्थ अपने राष्ट्र के परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों को पुनर्जीवित करना तथा बढ़ाना है। सब से प्रधान काम है कि हम अपने लोगों में साधुता, धार्मिकता ईमानदारी और प्रतिष्ठा की भावना का विकास करें। ये हमारे चार आधारभूत सिद्धान्तों और आठ नैतिक सद्गुणों को प्रकट करते हों, जिनमें "राजभक्ति तथा संतानोचित कर्त्तव्य" सबों का

आधार हैं। चीन में राजभक्ति का सब से ऊँचा अर्थ राज के प्रति वफादार बना रहना है और संतानोचित कर्त्तव्य का सब से ऊँचा अर्थ अपने राष्ट्र पर आस्था रखना है। दोनों में ही इस बात पर जोर दिया गया है कि सार्वजनिक सेवा और राज की सेवा करने में व्यक्तिगत और अपने परिवार के स्वार्थ पर ध्यान नहीं देना चाहिए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि व्यक्ति राज और राष्ट्र के अन्दर ही ज़िंदा रह सकता है। अतः राज और राष्ट्र का अस्तित्व व्यक्ति के अस्तित्व से मुख्य स्थान रखता है। इसका मतलब यह हुआ कि हमें सरकारी आज्ञा के पालन में यह समझना चाहिये कि मानो वह आज्ञा हमारी ही स्वतन्त्र इच्छा हो और राज तथा राष्ट्र द्वारा हमारी सेवा की माँग पर हमें समझना चाहिये कि हम स्वयं अपनी इच्छा से सेवा कर रहे हैं। राज के कानून मानने में टालमटूल करना या उसमें दखल देना कोई सरकार बरदाश्त नहीं कर सकती। जनता को यह चाहिये कि वह भारी काम से दिल चुरा कर सरल काम करने की प्रवृत्ति अपने में न आने दे। हर राजभक्त और देश वत्सल नागरिक को इस बात के लिये तैयार रहना चाहिये कि जिस काम को करने का साहस दूसरा नहीं करता है उसे वह करेगा और दूसरे जिस कष्ट को नहीं झेल सकते हैं उसे वह झेलेगा। इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय जीवन धारा जारी रहेगी और हमारा भविष्य अधिक उज्ज्वल और उन्नतिशील होगा। विशेष कर हमारे नवयुवकों को युद्धकाल में मोर्चों पर अपनी सेवा अर्पित करनी चाहिये, प्रत्यन्त देशों में प्रथम प्रथम कार्य करने का श्रेय लेना चाहिये, सामाजिक सेवा के लिये गाँवों में जाना चाहिये और राष्ट्र की भलाई के लिये स्थानीय स्वायत्त-शासन इकाई में काम करना चाहिये। इस प्रकार शांतिकाल में शहरों में आलसी जीवन बिताने और युद्धकाल में मोर्चों से दूर जाकर शरण ग्रहण करने की उनकी दूषित आदत मिटेगी एकमात्र इसी रीति से हमारे युवक नागरिक अपने राज के प्रति सच्चे राजभक्त और अपने राष्ट्र के प्रति सच्चे राष्ट्र वत्सल बन सकेंगे। इसी प्रसंग में आगे मैं इस बात की चर्चा करूँगा

कि हमारे युवकों को कौन-कौन सा कार्य करना चाहिये। यहाँ मैं केवल एक बात की ओर निर्देश कर देता हूँ जो हमारे देश भक्त युवकों के लिये आदर्श का काम देगी। एक पुरानी कहावत है—"युद्ध मोर्चों पर कायरता दिखाना संतानोचित कर्त्तव्य का अभाव प्रदर्शित करना है।" आधुनिक युद्धकाल में हवाई सेना में भर्ती होना सबसे मुख्य और सबसे साहस का काम है। हर युवक को सैनिक या हवाई सेना का सदस्य होना चाहिये। इस प्रकार वह तीन सौ वर्षों से बद्धमूल शैथिल्य और कायरता में परिवर्तन ला सकता है तथा हमारी जनता की पाँच हजार वर्ष प्राचीन आंतरिक उदार भावनाओं को पुनः प्रतिष्ठित कर सकता है जो हमारी नई और आधुनिक राष्ट्रीय नैतिकता का आधार है। यह नैतिकता हमारे दो वाक्यों से प्रकट होती है—"सबसे ऊपर राज का स्थान है" और "सबसे ऊपर राष्ट्र का स्थान है।" इस ढङ्ग से हमारी जनता स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्र की योग्य नागरिक बन सकेगी और चीन का प्रजासत्तात्मक राज संसार में स्थायी रूप से कायम रहेगा—उसके गुलाम होने या मिट जाने का डर कतई नहीं रहेगा।

(३) सामाजिक पुनर्निर्माण

"नव जीवन आन्दोलन" सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार-भूत आन्दोलन है, जिसका उद्देश्य चीन की जनता को "आधुनिक ढङ्ग का बनाना" है। हम आधुनिक ढङ्ग के होकर ही स्वतंत्रता और स्वाधीनता के योग्य हो सकते हैं और स्वतंत्र तथा स्वाधीन नागरिक होकर ही हम स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्र निर्माण कर सकते हैं। अगर हमें अपनी राष्ट्रीय भावनाओं और नागरिक गुणों को शब्दाडम्बर मात्र नहीं रखना है तो उन्हें विकसित रूप में हमारी जनता के दैनिक जीवन के ठोस कामों द्वारा प्रकट होना चाहिए। स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रसार तथा हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था का पुनर्निर्माण जनता के दैनिक जीवन को देखकर ही होना चाहिये। इसलिए नव जीवन आन्दोलन को हम पुनर्निर्माण

के पाँच पहलुओं की धुरी कह सकते हैं और उसे ही हमें भविष्य के सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार बनाना चाहिए। इसके मुख्य दो कार्य हैं—जनता को स्थानीय स्वायत्त शासन के योग्य बनाना और सार्वजनिक "मनोरंजन" तथा "शिक्षा" की व्यवस्था करना। स्थानीय स्वायत्त शासन के संबंध में हमें ध्यान रखना चाहिये कि प्राचीन काल से चीन के राज निर्माण की पद्धति यों थी कि व्यक्तियों का संगठन परिवार के रूप में और परिवार का कुल के रूप में था और ये सब रक्त-संबंध के कारण एक में संगठित थे। तब पारस्परिक सहायता के आधार पर कुल का संगठन पाव्-चिआ* के रूप में और पाव् चिआ का ग्राम-समाज के रूप में था। ग्राम-समाज के ऊपर संगठन की इकाई शिएन् (जिला) थीं और फिर प्रान्त और अन्त में सब प्रान्तों का सम्मिलित रूप ही चीन का संगठित राज था। ग्राम-समाज ही चीनी राज के ढांचे का मूल आधार था। यद्यपि चीनी राज का ढाँचा राजतंत्रात्मक था पर जनता के बीच अति आवश्यक लोकप्रिय और प्रजातंत्रात्मक भावनाओं के फैलने में उससे बाधा नहीं पड़ती थी। अभाग्यवश गत तीन सौ वर्षों के मांचू शासन काल में ग्राम-समाज की सुव्यवस्थित सामाजिक पद्धति का ह्रास होता गया और माँचू शासन के अंतिम काल से हमारे विद्वान् और विचारक विदेशी चीजों को जल्दी जल्दी अपनाने में यह भूल ही गए कि हमारे पुनर्निर्माण के कार्य क्रम का आधार वास्तव में ग्राम-समाज है। हमें अपने वर्त्तमान सामाजिक पुनर्निर्माण के लिये स्थानीय स्वायत्त शासन से काम प्रारम्भ करना चाहिए। स्थानीय स्वायत्त शासन में मुख्य रूप से नगरों तथा गांवों का सुधार होना चाहिये तभी स्थानीय स्वायत्त शासन का आधार दृढ़ होगा। ठोस स्थानीय स्वायत्त शासन के आधार पर ही हम

* स्थानीय शासन-व्यवस्था के ढांचे की पाव् और चिआ सब से छोटी इकाई हैं। लगभग १० परिवार का समूह चिआ और लगभग १० चिआ एक पाव् है। पाव् के ऊपर ग्राम होता है।

प्रजातंत्र के सिद्धान्त और जनता की जीविका के सिद्धान्त को कार्यान्वित कर सकेंगे। लोकप्रिय "मनोरंजन" तथा "शिक्षा" का भार ग्राम-समाज पर होना चाहिए। लोकप्रिय "मनोरंजन" तथा "शिक्षा" के साथ साथ खाना, कपड़ा, घर और यातायात के साधन ये ही जनता की जीविका की आधार भूत समस्यायें हैं। "मनोरंजन" तथा "शिक्षा" दैनिक जीवन की भौतिक आवश्यकताओं से भी वास्तव में अधिक महत्व के हैं। ये आध्यात्मिक जीवन के आधार हैं। "मनोरंजन" तथा "शिक्षा" सब के लिये सुलभ हो और विस्तृत रूप से जनता में सफलता-पूर्वक इनका प्रसार हो इसके लिये ग्राम-समाज को ही तत्पर होना चाहिए। सार्वजनिक शिशु-सदन, अनाथालय, मनोरंजनालय (क्लब), अस्पताल आदि की स्थापना तथा दूसरे लोकहित-कारी कार्य ग्राम-समाज की सम्मिलित योजना तथा प्रयत्नों द्वारा होने चाहिए तथा उनका विकास किया जाना चाहिए। एकमात्र इसी आधार पर नया समाज बन सकता है जिसमें "वृद्ध अपनी बुढ़ैती के दिन बिता सकें और बच्चों को अपने विकास का अवसर मिले; विधुर तथा विधवाओं, अनाथों तथा संतानहीनों और पीड़ितों तथा अपंगों का भरण-पोषण हो।" इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक पुनर्निर्माण का भार अनिवार्य रूप से स्थानीय स्वायत्त-शासित समाज के कार्यकर्ताओं पर पड़ता है क्योंकि एकमात्र वे ही गाँवों में जा सकते हैं और ग्राम-समाज के स्वायत्त शासन चलाने में सहायता देने के अलावे लोकप्रिय 'मनोरंजन' तथा 'शिक्षा' में भी उन्नति कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग हमारे राष्ट्र के पुनर्निर्माण कार्य में सहायता देने को उत्सुक हैं वे अपने जीवन-कार्य का आरम्भ ग्राम-समाज सेवक के रूप में करें। तभी वे स्थानीय स्वायत्त-शासन में वास्तविक रूप से काम करते हुए इस बात का अनुभव करेंगे कि पाव् और चिआ के प्रधान ही वास्तव में सामाजिक पुनर्निर्माण में प्रमुख स्थान रखते हैं। उन्हें शहरी जीवन का शिकार न बनना चाहिए और न व्यर्थ के आनन्द में भाग लेना चाहिए बल्कि

उन्हें सादा और मितव्ययी जीवन व्यतीत करना चाहिए तथा पुनर्निर्माण के आधारभूत कामों को कार्यान्वित करना चाहिए। इस प्रकार वे अपने जीवनोद्देश का शिलान्यास कर सकेंगे और साथ साथ राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सैनिक, शिक्षा संबंधी और आर्थिक कामों में निश्चित सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

(४) राजनीतिक पुनर्निर्माण—

"प्रतिरोध और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना" में राजनीतिक पुनर्निर्माण की मुख्य मुख्य बातें दी हुई हैं जिन्हें एक एक कर गत पाँच वर्षों में कार्यान्वित किया गया है। पर हमारे कानून और राजनीतिक संस्थानों को सचमुच ठोस तथा कार्यकारी रूप से चालू करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारी जनता अपने में अनुशासन तथा स्वतः कार्य प्रारम्भ करने की प्रतिभा का विकास करें तथा कानून और संस्थान के आवश्यक अभिप्राय को समझें। अब चूँकि असम संधियाँ रद्द हो गई हैं इसलिये एक स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक की हैसियत से हमें अनुशासन तथा स्वतः कार्य प्रारम्भ करने की प्रतिभा की और भी अधिक आवश्यकता है। मैंने अक्सर कहा है कि "जो अपने को शक्तिशाली बनाता है वही स्वतंत्र रह सकता है; जो अपने पर निर्भर रहता है वह स्वाधीन रह सकता है।" अगर हम अपने को शक्तिशाली नहीं बनाते हैं और अपने पर निर्भर रहना नहीं सीखते हैं तो एक वह दिन आयगा जब हम अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता खो बैठेंगे। हमारे राजनीतिक पुनर्निर्माण में जनता स्वयं ही प्रेरक शक्ति है। राजनीतिक पुनर्निर्माण की बुनियाद मजबूत करने के लिये अनुशासन तथा स्वतः कार्य प्रारम्भ करने की प्रतिभा की नितान्त आवश्यकता है। इनके होने से ही चीन का राज-संगठन ठोस तथा मजबूत होगा और उसकी शासन-संबंधी योग्यता बढ़ेगी। *अब से अनुशासन तथा स्वतः कार्य प्रारम्भ करने की प्रतिभा को राजनीतिक पुनर्निर्माण का आधार समझ कर हमें अपनी जनता को इनके विकास के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए।* इस संबंध में सबसे मुख्य काम

प्रजातंत्रात्मक संस्थानों तथा पूर्णरूप से राष्ट्रीय सुरक्षा पद्धति का विकास करना है। चीन उन्नीसवीं शती के यूरोपीय या अमरिकी राजनीतिक संस्थानों की नकल नहीं करेगा जो कि व्यक्तिवाद और वर्गवाद की धारणाओं पर आधारित हैं। हमारे राजनीतिक पुनर्निर्माण का उद्देश्य यह है कि राजनीतिक संरक्षण काल में हम जनता द्वारा शासन करने की नींव डालें। हमें कोरी बातों से या बाहरी रंग-ढंग देखकर ही प्रभावित नहीं होना चाहिए बल्कि हमें पूर्ण निष्ठा तथा पूर्ण तत्परता के साथ कदम कदम आगे बढ़ना चाहिए ताकि वैधानिक शासन काल में जो विधान जारी किया जाय वह हमारे लिये निर्जीव शब्दाडम्बर मात्र न रहे और अन्त में चीनी राष्ट्रों के परिवार में आधुनिक प्रजातंत्रात्मक राज के रूप में स्थान ग्रहण करे। इस संबंध में मैं आशा करता हूँ कि सभी नवयुवक जिनमें राजनीतिक प्रेरणा है, जब वे अपने जीवन कार्य का लक्ष्य चुनने लगें तथा उसके उच्च उद्देश्य को निर्धारित करने लगें उस समय वे राज की आवश्यकताओं पर अवश्य ध्यान दें और समय की गति को पहचानें। असम संधियों के परिणाम स्वरूप हमारे नगरों का बेहद विकास हो गया है और उनकी जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई है। जिनके फलस्वरूप हमारा राजनीतिक पुनर्निर्माण कार्य थोड़े शहरों तक ही सीमित रह गया है जबकि देहात के जिले उससे अछूते रहे, सीमाप्रान्त अरक्षित रहे और देश पर बाहरी आक्रमण हुआ। अब चूँकि असम संधियाँ रद्द हो गई हैं[1] हमें अपने राजनीतिक पुनर्निर्माण कार्य में पुरानी गलतियों से बचना चाहिए और देश के सब भागों का संतुलित विकास हो इस दृष्टि से कार्य करना चाहिए। हमारे नवयुवक

१. १० अक्टूबर, सन् १९४२ ई० को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा ग्रेटब्रिटेन ने एक साथ ही चीन स्थित अपने सभी विशेष अधिकारों को त्याग दिया जो उन्होंने विभिन्न असम संधियों द्वारा प्राप्त किए थे। इस प्रकार ठीक सौ वर्षों के बाद असम संधियाँ रद्द हुईं। इस संबंध में यह भी याद रखने की बात है कि प्रथम असम संधि चीन और ग्रेटब्रिटेन के बीच सन् १८४२ में हुई थी जो नानकिङ् संधि कहलाती है। ११जनवरी १९४३ ई० को चीन और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका तथा ग्रेटब्रिटेन के बीच नई संधि समानता के आधार पर हुई।

विद्यार्थियों को चाहिए कि वे प्रत्यन्त देशों के विकास करने को अपना सम्मिलित उद्देश्य समझें। मैं आशा करता हूँ कि जिनमें उत्साह और चरित्रबल है वे मा फ़ु-पो (यूआन्) और पान् तिङ्-यूआन् (पान्-छाव्) के समान अपने में किसी कार्य को प्रारम्भ करने के श्रेय लेने की भावना जगाएंगे और प्रत्यन्त देशों में दिल से काम करने लग जाएंगे। वे वहाँ ही अपने को राजनीतिक पुनर्निर्माण कार्य में लगा दें, कठिन परिश्रम करें और प्रथम प्रथम वहाँ बस जाने का श्रेय उठाएँ तथा अपने को इस योग्य बनाएँ कि वे अपने दिमाग और हाथ दोनों से काम ले सकें। राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने हम लोगों से कहा है—"हमें बड़े बड़े काम करने के लिये तत्पर रहना चाहिए न कि बड़े बड़े पद (अफसर) पाने के लिये।" अब से सीमाप्रान्तों का विकास करना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का प्रमुखतम कार्य है। राज के राजनीतिक पुनर्निर्माण के लिये प्रत्यन्त देशों में प्रथम प्रथम बस जाने वाले कार्यकर्त्ताओं के कार्य का नगर के कार्यकर्त्ताओं के कार्य से काम तथा परिणाम दोनों दृष्टियों से अधिक महत्त्व है। अगर हमारे नवयुवक बड़े बड़े काम करना चाहते हैं और जनता की भलाई चाहते हैं तो उन्हें तुरन्त सफलता या प्रतिफल की आशा नहीं रखनी चाहिए बल्कि उन्हें प्रत्यन्त देशों के विकसित करने के कार्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनाना चाहिए और अपने राज तथा राष्ट्र की सेवा के लिये यही पथ अपनाना चाहिए।

(५) आर्थिक पुनर्निर्माण—

"जनता के आर्थिक पुनर्निर्माण आन्दोलन का कार्यक्रम" में चीन के आर्थिक पुनर्निर्माण की आवश्यक बातों का निर्देश है। यह कार्यक्रम राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् के "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" नामक ग्रन्थ के आधार पर निश्चित हुआ है और इसमें उन कुछ आधारभूत बातों का स्पष्ट उल्लेख है जिनसे चीनी जनता की अर्थ व्यवस्था का राष्ट्रीय सुरक्षा की आवश्यकता से सामंजस्य होता है। साढ़े पाँच वर्ष पहले से ही यानी प्रतिरोध युद्ध के प्रारम्भ काल से चीन की अर्थ-व्यवस्था

का झुकाव राष्ट्रीय सुरक्षा और जनता की जीविका के समन्वय की ओर है। असम संधियों के रद्द हो जाने से अब चीन पूर्ण स्वाधीन और स्वतंत्र होकर आर्थिक स्वाधीनता तथा "अपने प्रयत्नों द्वारा पुनरुत्थान करने" के पथ पर आगे बढ़ सकेगा। चीन के "अपने प्रयत्नों द्वारा पुनरुत्थान करने" के संबंध में सबसे आवश्यक बात है देश का "औद्योगीकरण"। *इसलिये अब से औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का विकास ही हमारे आर्थिक पुनर्निर्माण का आधार होना चाहिए।* हम लोगों को विशेषतः राष्ट्रपिता द्वारा "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" में बताए हुए भूमि पर समानाधिकार तथा पूंजी नियंत्रण की बुनियादी नीति को कार्यान्वित करने की तैयारी करनी चाहिए। यह कार्यक्रम हान् (ई० पू० २०६-२२०) तथा थाङ् (सन् ६१८-९०७ ई) राजवंशों के समय जो कुछ सोचा गया था उससे कहीं अधिक व्यापक है और साथ साथ तत्वतः इसका समन्वय आधुनिक संसार की बदली हुई आर्थिक अवस्थाओं से भी है। यह वास्तव में चीन के आर्थिक पुनर्निर्माण पर प्रामाणिक पुस्तक है। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये जिन जिन चीजों की तैयारी होनी चाहिए वे स्वभावतः ही भारी और कठिन हैं। हम लोग एकमत होकर प्रतिज्ञा कर लें कि आज से हम बिना डगमगाए अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर बढ़े चलेंगे।

आर्थिक कारबार में जो नवयुवक दिलचस्पी रखते हैं यहाँ मैं उनके पथ प्रदर्शन के लिये एक बात का निर्देश कर देता हूँ। असम संधियों के कारण चीन के उद्योग-धंधों के विकास पर जो विभिन्न बंधन थे वे सब उन संधियों के रद्द हो जाने से दूर हो गए हैं। इसलिये अब से उद्योग-धंधों का विकास सारी शक्ति लगाकर तथा पूर्ण तेजी के साथ होना चाहिए, ताकि हम लोग जल्दी ही उनमें उच्चकोटि की कुशलता पूर्ण रूप से प्राप्त कर लें तथा अधिक उन्नत राष्ट्रों में बर्ती जाने वाली उद्योग-धंधों की केन्द्रीयकरणात्मक व्यवस्था सीख लें। हमारे नवयुवकों को इंजिनिअर बनना चाहिए और उन्हें अपने काम

का विशेष ज्ञान (टेकनिकल ज्ञान) प्राप्त कर अपने को औद्योगिक विकास में लगा देना चाहिए। उन्हें अपने व्यावहारिक कामों में विशेष रूप से यह प्रयत्न करना चाहिए कि वे नये नये आविष्कार और अन्वेषण कर सकें ताकि चीन के आर्थिक पुनर्निर्माण की पूर्ण सफलता में शंका नहीं रहे।

सारांश में, हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का परिमाण तथा योजना तथा साथ साथ उन्हें सोचने तथा लागू करने की पटुता तथा उत्साह तो हमें अपने पाँच हजार वर्षों के इतिहास की शिक्षा तथा एक करोड़ से अधिक वर्ग कीलोमिटर विस्तृत भौगोलिक वातावरण से ग्रहण करने चाहिए पर साथ साथ विश्व स्थिति की प्रगति से भी उनका सामंजस्य होना चाहिए। किसी कार्यक्रम को लागू करने के लिये हमें छोटी-छोटी चीजों से प्रारम्भ कर क्रमिक रूप से बड़ी चीजों की ओर बढ़ना चाहिए तथा जो चीजें हमारे नजदीक हों उन्हें पहले और फिर दूर की चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। किस क्रम से कार्यक्रम लागू किया जाय इस संबंध में हमें आधारभूत तथा आवश्यक कामों को पहले पूरा करना चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि अत्यन्त उत्साह और पटुता के अभाव में कहीं हम लोग पुनर्निर्माण कार्य की आधारभूत बातों की उपेक्षा कर उनके गौण ब्यौरे पर जोर न देने लगें और हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि व्यावहारिक रूप से तथा ईमानदारी पूर्वक काम करने के संकल्प के अभाव में हम कहीं भव्य दीखने वाले पर मिथ्या आदर्श की ओर न बढ़ते चले जाएँ। इसलिए मैंने इस अध्याय में अपने पुनर्निर्माण की योजना बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने के लिये क्या आवश्यक और आधारभूत बातें हैं उनका निर्देश कर दिया है और मैंने यह भी निर्देश कर दिया है कि हमारे नवयुवकों को अपने जीवनकार्य के लिये कौन सा रास्ता अपनाना चाहिए।

अब तक चीन के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की एक भी योजना जो आसानी से कार्यान्वित न हो सकी इसका कारण असम संधियों की बाधायें थीं। पर अब तो बन्धन खुल गया है और अब से अगर तीव्रगति से योजना लागू न की जा सकी तो जिम्मेवारी देश के नागरिकों पर है जो अपने राज के शासक हैं। विभिन्न प्रकार के पुनर्निर्माण संबंधी कामों को कार्यान्वित करने की जिम्मेवारी उठाने के पहले हमें स्वयं अपने में ढूंढ़ना है कि क्या हम में आवश्यक योग्यता और आस्था है ? किस प्रकार के पुनर्निर्माण कार्य

के लिये सुशिक्षित योग्य विश्वासी व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं पड़ती है ? क्या चीन में इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये ऐसे लोग काफी संख्या में हैं ? जैसा कि मैंने पहले ही बताया है कि हमें जानना चाहिए कि अपने राष्ट्रीय निर्माण की योजना बनाने में तथा उसे कार्यान्वित करने में सबसे आवश्यक और बुनियादी चीजें क्या हैं। *पाँच प्रकार के पुनर्निर्माण जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, उन्हें तो एक ही समय में हमें कार्यान्वित करना चाहिए और उनमें से किसी को हम नहीं छोड़ सकते। पर आर्थिक पुनर्निर्माण के काम पर हमें विशेष जोर देना चाहिए।* राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् ने बताया है कि "पुनर्निर्माण कार्य में जनता की जीविका में सुधार होना सबसे प्रमुख कार्य है।" जनता की जीविका का आधार आर्थिक पुनर्निर्माण है जिनका पुनर्निर्माण की दूसरी बातों में प्रमुख स्थान है। जनता की जीविका के सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक पुनर्निर्माण की प्रगति तो "जनता की भलाई" की दृष्टि से होनी चाहिए। हमें अपने नियोजित अर्थव्यवस्था और सामाजिक कानून द्वारा जनता के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना चाहिए। हमें तो इसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए कि "पूँजी का राष्ट्रीयकरण हो और आर्थिक सुविधाओं का सब के द्वारा समान रूप से उपभोग किया जाय।" विशेषकर नियोजित अर्थ-व्यवस्था और सामाजिक कानून द्वारा ही हम क्रांतिकारी पर शांतिपूर्ण नीति से देश भर में जनता की जीविका के सिद्धान्त को लागू कर सकते हैं।

राष्ट्रपिता की पुस्तक "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" में जो आर्थिक कार्यक्रम दिया हुआ है उसका ही हमें आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये अनुसरण करना है। कार्य-क्रम को लागू करने के लिये सबसे पहले हमें योग्य व्यक्तियों और आवश्यक सामान की जरूरत है। प्रथम दश वर्षों के अन्दर "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को पूरा करने के लिये जितनी चीजों तथा जितने व्यक्तियों की आवश्यकता होगी और जो जो काम करना होगा उनकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

तालिका संख्या १

"चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये विभिन्न प्रकार के कामों की तालिका जिनकी पूर्ति प्रथम दश वर्षों में होनी चाहिए (इस तालिका में ग्यारह कामों का समावेश है जैसे सिविल इंजिनियरिंग, विद्युत इंजिनियरिंग,

यांत्रिक इंजिनियरिंग, हवाई यातायात, नदियों की रक्षा और सुधार, मकान, कपड़ा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, खान खोदने और खनिज पदार्थों का ज्ञान, केमिकल इंजिनियरिंग तथा कृषि। हर शीर्षक के आगे जिस संख्या का निर्देश है वह नव निर्माण की संख्या का सूचक है।)

वर्गीकरण	अंतिम लक्ष्य	प्रथम दश वर्षों में जितना पूरा होना चाहिये
(क) *सिविल इंजिनियरिङ्ग*		
रेल पथ निर्माण	१,४०,००० कीलोमिटर लंबा (मूलतः "चीन के अन्तर्राष्ट्रीय विकास' में १,००,००० मील की योजना थी जो १,६०,००० कीलोमिटर के बराबर है पर इसमें २०,००० कीलोमिटर लंबा रेल पथ बन चुका है)	२०,००० किलोमिटर लंबा
सड़क निर्माण	१५,००,००० कीलोमिटर लंबा (मूलतः "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" में १०,००,००० मील की योजना थी जो १६,००,००० कीलोमिटर के बराबर है जिन में १,००,००० कीलोमिटर लंबी सड़क अब तक बन चुकी है)	२५,००० कीलोमिटर लंबा
बन्दरगाह निर्माण	१८,६०,००,००० टन जहाज ठहरने योग्य	१०,००,००,००० टन जहाज ठहरने योग्य

वर्गीकरण	अंतिम लक्ष्य	प्रथम दश वर्षों में जितना पूरा होना चाहिए
(ख) *यांत्रिक इंजिनियरिङ्ग*		
रेल इंजिन	२४,०००	३,०००
सवारी और माल के डब्बे	३,५२,०००	४४,०००
मोटरगाड़ी	७६७७२१० (३,००००००० मोटर गाड़ियाँ बराबर चलती रहें इसके लिये खराब होने पर जो मोटर गाड़ियाँ बदल कर रखी जाएंगी उनकी भी संख्या इसमें सम्मिलित है। दशवें वर्ष में ३५४८२१० गाड़ियाँ बराबर चालू रहेंगी।)	४५१,५७०
तिजारती जहाज	१,४४,१७,४०० टन	३०,४३,३०० टन
मोटर (शक्ति पैदा करने वाली)	४,००,००,००० घोड़ों की शक्ति वाली	१०७००००० घोड़ों की शक्ति वाली
औजार और कलपुर्जे	४५,००,०००	१,५०,०००
अन्य मशीनें	७०,००,०००	१५,००,०००
(ग) *विद्युत इंजिनियरिङ्ग*		
विद्युत शक्ति (इसमें पेट्रोल कोयले तथा जल दोनों से उत्पन्न होने वाली शक्ति सम्मिलित है)	२,००,००,००० कीलोवॉल्ट	६२,००,००० कीलोवॉल्ट
तार द्वारा होने वाले यातायात—		
तार लाइन	३,६०,००,००० कीलोमिटर	६०,००,००० कीलोमीटर

वर्गीकरण	अंतिम लक्ष्य	प्रथम दश वर्षों में जितना पूरा होना चाहिए
रेडियो स्टेशन	३,०००	२,०००
रेडियो	१,८०,००,०००	४५,००,०००
टेलीफोन	६०,००,०००	२२,५०,०००
(घ) *हवाई यातायात*		
नागरिक व्यवहार के लिये हवाई जहाज	१,२०,००० (दशवें वर्ष ७००० हवाईजहाज बराबर चालू रहेंगे। खराब होने पर जो बदल कर रखे जायेंगे उनकी भी संख्या इसमें सम्मिलित है)	११,०००
(च) *नदियों की रक्षा और सुधार* (जल विद्युत शक्ति और पेट्रोल कोयले से उत्पन्न शक्ति का उल्लेख 'विद्युत शक्ति' शीर्षक में है)		
जल-यातायात—		
जहाज जाने लायक नदी मार्ग	३० ००० कीलोमिटर	१८,००० कीलोमिटर
जङ्क जाने लायक नदी मार्ग	५,००,००० कीलोमिटर	२,००,००० कीलोमिटर
स्टीमर जाने लायक नई नहरें	५,००० कीलोमिटर	१,००० कीलोमिटर
पट्टन (Port) निर्माण	१,२०० पट्टन	७०० बन्दरगाह
बाँध निर्माण	१८,६०० कीलोमिटर	१८,६०० कीलोमिटर

वर्गीकरण	अंतिम लक्ष्य	प्रथम दश वर्षों में जितना पूरा होना चाहिये
सिंचाई	२५,००,००००० स्टैंडर्ड मउ	१०,००,००,००० स्टैंडर्ड मउ
जल शक्ति	१,००,००,००० कीलोवॉल्ट	२०,००,००० कीलोवॉल्ट
(घ) *गृह-निर्माण*		
मकान	५,००,००,०००	१,००,००,०००
(ज) *कपड़ा*		
मशीन के तकुए	१,००,००,०००	३०,००,०००
सूती कपड़ा बुनने की मशीन	३,२०,०००	६६०००
छालटीन से सूत निकालने के तकुये	२,७५,०००	८३,१००
छालटीन कपड़े बुनने की मशीन	१५,७००	४,७१०
ऊन कातने के तकुये	५,८०,०००	ऊन कातने के तकुये २,७४,००० सर्ज कातने के तकुये १,४६,०००
ऊनी कपड़ा बुनने की मशीन	१६,५००	४,६५०
रेशमी सूत निकालने की मशीन	२,३६,७००	७१,०००
रेशमी कपड़ा बुनने की मशीन	६४,०००	२८,२००
रंगाई और छपाई की मशीनें		
टाइप ए	११४ इकाई	३४ इकाई
टाइप बी	२८० इकाई	८४ इकाई
बुनाई की मशीन (गंजी आदि की)	१६,५६०	४,६७०
सीने की मशीन	३,००,०००	६०,०००

वर्गीकरण	अंतिम लक्ष्य	प्रथम दश वर्षों में जितना पूरा होना चाहिए
(झ) *सार्वजनिक स्वास्थ्य*		
बड़े बड़े सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र	२००	१००
शिएन् (जिला) सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र	२,०००	२,०००
ग्राम सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र	१,६०,०००	८०,०००

(ट) *खान खोदना और खनिज पदार्थों का ज्ञान*
(दशवें वर्ष के अंत में वार्षिक उत्पत्ति का परिमाण)

कोयला	१५,००,००,००० टन
पेट्रोल	१७,७४,००० टन
लोहा और इस्पात	५५,६०,००० टन
ताँबा	२५,००० टन
सीसा	१३,००० टन
जस्ता	२,००० टन
एलुमुनियम	५५,००० टन
कच्चा टङ्गस्टन	२५,००० टन
विशुद्ध एनटिमोनी	२०,००० टन
विशुद्ध टीन	३०,००० टन
विशुद्ध पारा	५०० टन

(ठ) *केमिकल इंजिनियरिंग*
(दशवें वर्ष के अंत में वार्षिक उत्पत्ति का परिमाण)

सलफरिक एसिड	२५,००,००० टन
नाइट्रिक एसिड	१,००,००० टन
हाइड्रोक्लोरिक एसिड	१५०,००० टन
सोडा	१२,५०,००० टन
कॉस्टिक सोडा	६,२५,००० टन
मोटरगाड़ियों के टायर	२०,००,००० टन

कागज	२०,००,००० टन
सिमेंट	६,३,८,५०,००० टन
कांच	१५,००,००० टन
नमक	३७,५०,००० टन
चीनी	१५,००,००० टन
आवश्यक औषधें	१०० तरह की

(ङ) कृषि

(दशवें वर्ष के अन्त में वार्षिक पैदावार का परिमाण)

चावल	७५,६०,००,००० पिकुल*
गेहूँ	८८,२०,००,००० पिकुल
विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ	१,००,३०,००,००० पिकुल
छीमीदार चीजें	६८,६०,००,००० पिकुल
रूई	२,३०,००,००० पिकुल
सन	१,१०,००,००० पिकुल
ऊन	१६,८०,००० पिकुल
कच्चा रेशम	३,००,००० पिकुल
लकड़ी	४,२५,००,००० घन मिटर

तालिका संख्या २

"चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को लागू करने के लिये *प्रथम दश वर्षों* में जितने योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता होगी उनकी तालिका (निम्न सूची उद्योग धंधे तथा कृषि में जो आवश्यकता होगी उन्हीं से संबंध रखती है। उद्योग-धंधे में १८ विषय हैं, जैसे, रेलपथ, सड़क, बन्दरगाह, रेल की इंजिन, मोटर गाड़ियाँ, तिजारती जहाज, मशीनें, विद्युत शक्ति, तार द्वारा होने वाले यातायात, हवाई यातायात, नदियों की रक्षा और सुधार, मकान, कपड़ा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, खान

*चीनी भाषा में इसके लिये 'श-तान्' शब्द है। १ पिकुल = १३३⅓ पौंड के।

खोदना और खनिज पदार्थों का ज्ञान, केमिकल इंजिनियरिंग, खाद्य सामग्रियाँ, और मुद्रण)

(क) विश्वविद्यालयों और टेकनिकल विद्यालयों के स्नातक :

१. सिविल इंजिनियरिंग	६०,७००
२. यांत्रिक (मेकेनिकल) इंजिनियरिंग	४१,६००
३ विद्युत इंजिनियरिंग	१३,७००
४. वायुयान संबंधी इंजिनियरिंग	७,२००
५. पोत संचालन संबंधी इंजिनियरिंग और जहाज चलाना	७,०००
६. नदियों की रक्षा और सुधार	१२,०००
७ स्थापत्य कला	२५,०००
८. कपड़े के उद्योग-धंधे और रंगाई	३,६००
९. औषध	२३२,५००
१०. खान खोदना और खनिज पदार्थों का ज्ञान	८,६००
११. केमिकल इंजिनियरिंग	१६,८००
१२. कृषि	५५,०००
१३. भूगर्भ शास्त्र और भूगोल	२,४००
१४. कला, कानून, कामर्स, अर्थ शास्त्र, और अन्य विषय	३१,०००

(ख) उच्च और प्रारम्भिक दस्तकारी शिक्षा के विद्यालयों के स्नातक :

१. सिविल इंजिनियरिंग	१,३१,७००
२. यांत्रिक (मेकेनिकल) इंजिनियरिंग	६४,५००
३. विद्युत इंजिनियरिंग	२,७३००
४. तार द्वारा होने वाले यातायात	४०,०००
५. वायुयान संबंधी इंजिनियरिंग	१२,०००
६. नदियों की रक्षा और सुधार	२५,०००
७. स्थापत्य कला	२५,१००
८. कपड़े के उद्योग-धंधे और रंगाई	८,२००
९. खान खोदना और खनिज पदार्थों का ज्ञान	२३,३००
१०. केमिकल इंजिनियरिंग	३०,५००
११. मुद्रण कला	१७,०००

१२. कृषि — १,० ७,०००

(ग) हवाई जहाज चलाने की शिक्षा देने वाले विद्यालय के स्नातक — २८,०००

(घ) उच्च माध्यमिक पाठशालाओं और दस्तकारी शिक्षा देने वाली उच्च पाठशालाओं के स्नातक जहाँ उपरोक्त विषयों की पढ़ाई होती है — १०, ३,४००

(ट) निम्न माध्यमिक पाठशालाओं और दस्तकारी शिक्षा देने वाली निम्न पाठशालाओं के स्नातक जहाँ उपरोक्त विषयों को छोड़ अन्य विषयों की पढ़ाई होती है — १,८६,६००

(ठ) उच्च और प्रारम्भिक मेडिकल और नर्सिंग विद्यालय के स्नातक — १०,७०,०००

(ड) धातु शिक्षण विद्यालय के स्नातक — २,२५,०००

कुल योग — २७,०५,५००

तालिका संख्या ३

"चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये *प्रथम दश वर्षों में* जितने आवश्यक सामान की जरूरत है, उनकी तालिका। (इस सूची में रेल पथ निर्माण, सड़क निर्माण, रेल इंजिन, मोटर गाड़ियों, तिजारती जहाजों, मशीन, विद्युत शक्ति, तार द्वारा होने वाले यातायात, हवाई यातायात, नदियों की रक्षा और सुधार, मकान, कपड़े, केमिकल इंजिनियरिंग, दैनिक व्यवहार की चीजों और कृषि में लगने वाले सामान की गणना है)

लोहा	६००७००० टन
इस्पात	२८४६६००० टन
ताँबा	१३८१००० टन
सीसा	१४२६००० टन
एलमुनियम	५,४२,०००

कोयला	५१५८८१००० टन
गैसोलिन	१३८७६००० टन
डिजेल तेल	२८८१५००० टन
मोटर का तेल	११८४००० टन
अलकतरा	७५१,००० टन
रंग और वार्निश	३०८,०० टन
सिमेंट	७०,७३४००० टन
काँच	२७३६००० टन
मोटर गाड़ियों के टायर	२७१०,००० टन
लकड़ी	५११७४६,००० घन मिटर
स्लीपर	३२६०००००

"चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने में तीस से पचास वर्ष लगेंगे। उपरोक्त सूची में जिनका उल्लेख है उनमें तो प्रथम दश वर्षों में जो जो काम करने पड़ेंगे तथा जितने विशेषज्ञों और सामान की आवश्यकता होगी उनका ही समावेश है। देखने में तो यह संख्या बहुत लगती है और उनका पूरा होना कठिन मालूम होता है। पर जब चीन की पैंतालीस करोड़ आबादी और उसके एक करोड़ वर्ग कीलोमिटर भूभाग पर नजर पड़ती है तो उपरोक्त संख्या वास्तव में बहुत ही कम जान पड़ती है। उदाहरण के लिये "कपड़े बुनने की मशीन" शीर्षक की संख्या को ही लीजिए। सम्पूर्ण कार्यक्रम के पूरा हो जाने पर भी हर आदमी केवल १६ मीटर कपड़ा पा सकेगा। प्रथम दश वर्षों में तो कार्यक्रम का केवल $\frac{३}{१०}$ भाग ही पूरा हो सकेगा और इस प्रकार हर आदमी को साल भर में केवल ५ मीटर कपड़ा मिलेगा। फिर मोटर गाड़ियों की संख्या लीजिए। सम्पूर्ण कार्यक्रम के पूरा हो जाने पर १५० व्यक्तियों पर एक मोटर गाड़ी होगी। प्रथम दश वर्षों में मोटर गाड़ी निर्माण कार्यक्रम का दशवाँ भाग ही पूरा होगा, इस प्रकार हर १३०० व्यक्तियों के लिये एक ही मोटर गाड़ी की व्यवस्था हो सकेगी। फिर कार्यक्रम के विभिन्न कामों के विशेषज्ञों की संख्या को लीजिए। अगर ४५ करोड़ आबादी में दश वर्षों के अंदर भिन्न दर्जे के टेकनिकल विद्यालय और दस्तकारी के माध्यमिक पाठशालाओं से कुल २७००००० स्नातक निकलते हैं तो यह संख्या सचमुच ही कोई बहुत बड़ी नहीं है। हम लोग अपनी सेना के

अफसरों की वर्तमान संख्या को उदाहरण के लिये ले सकते हैं। उनमें पाँच लाख से ऊपर ऐसे हैं जिन्हें प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा मिली है और जो टेकनिकल व्यवस्था करने की पूरी योग्यता रखते हैं। जब सेना विघटित होगी तो उन व्यक्तियों को थोड़ी और टेकनिकल शिक्षा देने भर से ही वे हमारे आर्थिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम को चालू करने के प्रधान अवलंब हो जाएंगे। केवल इस उदाहरण से ही हम देख सकते हैं कि हमारे देश में कितने योग्य व्यक्ति हैं। अगर हम विश्वासपूर्वक कार्य में जुट जाएँ तो कोई कारण नहीं कि हम अपने पुनर्निर्माण कार्यक्रम के सभी अंगों में सफलता न प्राप्त कर लें। पर इसके विपरीत अगर हम अभी पहले की तरह ही सफलता प्राप्त करना कठिन मानते हैं तो न हम लोगों ने राष्ट्रपिता की इस शिक्षा को पूरी तरह अपनाया है कि "करना सरल है" और न हमने विश्वासपूर्वक कार्य करने के महत्व को समझा ही है। समान विश्वास और संगठित प्रयत्न द्वारा ही हम लोगों ने थोड़े काल के भीतर तीन हजार वर्ष प्राचीन राजतंत्र को और तीन सौ वर्ष पुराने निरंकुश माँचू शासन को उखाड़ फेंका है और शताब्दी पुरानी असम संधियों के बंधन से छुटकारा पा लिया है। "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम में भी अगर हम उसी तरह के विश्वास और प्रयत्न से पिल पड़े तो कोई कारण नहीं कि हम उसे पूरी तरह कार्यान्वित न कर सकेंगे। हम लोग जापान के साथ चीन की तुलना करें। इस सिलसिले में मुझे वे बातें याद आती हैं जिन्हें डा० सुन् यात्-सन् ने कार्यक्रम की निश्चित सफलता पर उठाई गई मेरी शंका के समाधान में सन् १९१८ (प्रजातंत्रात्मक संवत् ७) में सान् ह-पा के युद्धक्षेत्र में मुझे कहा था। उन्होंने कहा था—"जापान की आबादी और क्षेत्रफल चीन का आठवाँ या दशवाँ भाग है। इसलिये जापान जिस कार्य को आठ से दश वर्षों में पूरा कर सकता है उसे तो अब चीन को एक या दो वर्षों में पूरा करना चाहिए।" अगर हम उनके सच्चे अनुयायी हैं और उनके ठोस प्रमाण तथा स्पष्ट शिक्षाओं पर विश्वास करते हैं तो कोई कारण नहीं कि हममें विश्वास तथा कठिनाइयाँ सहन करने के साहस का अभाव हो। चीन के पुनर्निर्माण कार्य की पिछली असफलताएँ असम संधियों के बंधन तथा दबाव के कारण हुई थीं। अब वे संधियाँ रद्द हो गई हैं। मैं आशा करता हूँ कि अगर हमारे सब लोग दृढ़ता से काम करने लगें तो उपरोक्त तालिका में दश वर्षों के अंदर कम से कम जितने काम करने की योजना है

उसे तो सरलता से पूरा कर आगे बढ़ा जा सकता है और फिर तालिका में निर्दिष्ट संख्या बड़ी नहीं मालूम होगी। अगर हम अपने पिछले अनुभवों तथा राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बाद के दश वर्षों में, जबकि देश बाहरी और भीतरी समस्याओं में उलझा था, रेल पथ तथा सड़क बनाने की अपनी सफलताओं पर विचार करें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस पुनर्निर्माण के कार्यक्रम—रेल पथ, सड़क, हवाई यातायात, बन्दरगाह निर्माण, बाँध निर्माण, सिंचाई और विद्युत शक्ति आदि के कार्यक्रम—से प्राप्त होने वाली निश्चित संख्या से सौ गुणा और अधिक प्राप्त कर लें। साथ साथ पुनर्निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था में एक बार सफलता मिल जाने पर तो हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति में स्वाभाविक रूप से वृद्धि होगी और ठीक उसी तरह हमारी पुनर्निर्माण की योग्यता भी बढ़ेगी। इसके फलस्वरूप पुनर्निर्माण की प्रगति के अनुपात में भी बढ़ती होगी। इसलिये चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को लागू करने का सम्पूर्ण काम निर्धारित समय के पहले भी पूरा हो सकता है।

लेकिन "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" के कार्यक्रम को चालू करने के लिये उपरोक्त सूची के अनुसार जितने योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता होगी उसके लिये हमें अपने उच्च, माध्यमिक और प्राथमिक विद्यालयों से अधिक संख्या में योग्य व्यक्ति मिलने चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये जितने व्यक्तियों की आवश्यकता है उतने हमारे विद्यालय शिक्षित कर सकेंगे? इस प्रश्न के उत्तर के लिये हमें अपने वर्तमान विश्वविद्यालयों, टेकनिकल विद्यालयों उच्च और निम्न माध्यमिक तथा प्राथमिक पाठशालाओं पर ध्यान देना होगा। सन् १९३६—१९४१ के पाँच वर्षों के अंदर हमारे यहाँ ४,७१,७३९ स्नातक हुए। दूसरी योजनाओं में जितने स्नातकों की आवश्यकता होगी उनके अतिरिक्त उपरोक्त कार्यक्रम के लिये केवल दश वर्षों के भीतर हमें २७,००,००० स्नातक चाहिए। अगर प्रयोगात्मक विज्ञान जैसे यांत्रिक इंजिनियरिंग, सिविल इंजिनियरिंग, खान खोदने और खनिक पदार्थों का ज्ञान, रसायन और औषध आदि के विद्यार्थी पदार्थ विज्ञान, प्राणि विज्ञान, और गणित जैसे प्राकृतिक विज्ञान में पूरे दक्ष नहीं हुए तो उनके लिये कोई मौलिक एवं उच्चकोटि का काम करना प्रायः असंभव हो जायगा। इसलिये विद्यालय के पाठ्यक्रम में औद्योगिक कारबार के लिये टेकनिकल शिक्षा देने के अलावा प्राकृतिक विज्ञान की

पढ़ाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक विज्ञान सीखने के लिये दृढ़ आधार मिल जाय। इसलिये इस प्रतिरोध युद्धकाल में तथा उसके बाद के कुछ वर्षों के अंदर हम अपनी शिक्षा प्रणाली दृढ़ करें और अधिक विद्यालय खोलें ताकि हमें काफी संख्या में योग्य व्यक्ति प्राप्त हो सकें। युद्ध के बाद राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य के लिये हर देशवासी को अगर वह किसी तरह का टेकनिकल ज्ञान रखता है तो अपनी सेवा अर्पित करने का सुयोग मिलेगा। वास्तव में इस प्रकार के प्रत्येक व्यक्ति को राज और समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिये दो व्यक्तियों का काम अकेले करना चाहिए और दो दिनों का काम एक दिन में ही पूरा करना चाहिए। यह न आराम से जीवन बिताने का समय है और न दुविधा में पड़कर हिचकिचाने का ही। एक प्राचीन महात्मा ने कहा है—"अगर कोई किसी भले व्यक्ति को देखता है तो उसे भी ठीक उसी तरह भला बनने की चेष्टा करनी चाहिए।" एक और कहावत है—"नदी के किनारे मछली की आशा में व्यर्थ बैठे रहने की अपेक्षा घर जाकर जाल बुनना कहीं अच्छा है।" संसार के विभिन्न देशों द्वारा प्राप्त समृद्धि और शक्ति को देखकर हम लोगों को भी चीनी प्रजासत्तात्मक राज की उसी तरह समृद्धि और शक्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए और दूसरे लोगों की समृद्धि तथा सुख से अधिक नहीं तो कम से कम बराबर सुख और समृद्धि तो अपने लोगों के लिये प्राप्त करना ही चाहिए। आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को लागू करने में हमें अपनी जनता की जीविका को उस अवस्था तक पहुँचाना चाहिए जिसे राष्ट्रपिता ने अपने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत बातों की दूसरी धारा में यों बताया है—"पुनर्निर्माण कार्य में जनता की जीविका में सुधार करना सबसे अधिक आवश्यक है।" जनता की चार दैनिक आवश्यकताओं यानी खाना, कपड़ा, घर और यातायात के साधन के संबंध में सरकार को जनता के साथ सहयोग कर भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये कृषि को बढ़ाना चाहिए और कपड़े की आवश्यकता पूर्ति के लिये बुनाई के उद्योग-धन्धों का विकास करना चाहिए। बड़े पैमाने पर विभिन्न प्रकार के मकान बनवाने चाहिए ताकि मकान की समस्या सुलझ जाय। जनता के लिये यातायात की सुविधा की दिशा में सड़कों और नहरों की या तो मरम्मत होनी चाहिए या उन्हें बनवाना चाहिए। यही हमारे पुनर्निर्माण का प्रथम उद्देश्य है और यह जनता की जीविका में सिद्धान्त की पूर्ति की दिशा में प्रारम्भिक कदम

बढ़ाना है। अगर हम चीन के प्रजासत्तात्मक राज को समृद्ध, शक्तिमान स्वस्थ और सुखी राज बनाना चाहते हैं तो हमें बराबर ध्यान में रखना चाहिए कि "हमें बहुत थोड़े समय में बहुत अधिक करना है।" अगर कोई अपना कर्त्तव्य नहीं भूलता है तो उसे निश्चित रहना चाहिए कि राज भी उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलेगा। अगर कोई स्वयं कार्य करने में दत्तचित्त है तो वह दूसरों को भी समान उद्देश्य के लिये कार्य करने को प्रेरित कर सकता है। मैं आशा करता हूँ कि हमारी जनता दृढ़ होकर स्वयं शक्ति संचय करेगी तथा महान् कार्य की पूर्ति के लिये आपस में एक दूसरे को प्रेरणा देगी। मुझे विशेषकर युवकों से आशा है कि वे दृढ़ संकल्प करेंगे, अपने जीवन उद्देश्य में असंदिग्ध होंगे और तेजी तथा उत्साह के साथ राष्ट्रीय पुनर्जीवन के अपने युगान्तरकारी उद्देश्य की पूर्ति के लिये पुनर्निर्माण कार्य को बढ़ाते जाएँगे।

छठा अध्याय

क्रांति और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आधारभूत समस्याएँ

१

पुनर्निर्माण और क्रांति का उद्देश्य

आज जब हमारी क्रांति को प्रारम्भिक सफलता मिल चुकी है और हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य तत्परता से प्रारम्भ हो गया है तो एक तरफ अपने राज की स्वाधीनता और स्वतंत्रता पाने की खुशी में कहीं हमारे लोग "उद्धत आत्म गौरव" तथा "थोड़े लाभ से संतोष कर लेने की भावना" का तथा दूसरी ओर भविष्य के कर्त्तव्य को लेकर "कठिनाइयों से डर कर पीठ फेर लेने" तथा "भारी काम को छोड़ हल्के काम को उठाने" की मनोवृत्ति के शिकार न हो जाएँ। पिछले अध्याय में इन्हीं दो संभावनाओं की चर्चा मैंने ब्यौरेवार ढंग से की है। इस अध्याय में मैं अनेक आधारभूत समस्याओं का निर्देश करूँगा, जिनके सुलझने पर ही हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की सफलता निर्भर करती है। मैं आशा करता हूँ कि इन समस्याओं की चर्चा से हमारे लोग अंतिम लक्ष्य की पूर्ति के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकताओं को समझेंगे। सब से पहले मैं सन् १९११ की सफलता तथा विफलता से प्राप्त शिक्षाओं की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। अगर हम इन आवश्यक शिक्षाओं को हृदयंगम कर सकें तो हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के अपने कर्त्तव्य में अवश्य सफलीभूत होंगे।

यह सभी जानते हैं कि सन् १९११ की क्रांति द्वारा बहुत कम समय के अंदर ही तीन हजार वर्ष पुरानी राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था के साथ साथ चीन पर होने वाला २६० वर्ष पुराना मांचू अत्याचार भी समाप्त हो गया। बाद में यूआन् शा-खाइ के स्वयं सम्राट बनने का प्रयत्न तथा मांचू सम्राट् को पुनः गद्दी पर बैठाने का चाङ् शुन् द्वारा किया गया षड्यंत्र दोनों ही असफल हुए। इसलिये हम कह सकते हैं कि क्रांति बहुत दूर तक सफल हुई। पर क्रांति के बाद भी हमारा राष्ट्र पहले की तरह ही कमजोर बना

रहा यद्यपि प्रथम महायुद्ध के कारण उसे आत्म विकास का काफी अवसर मिला था। शक्तिशाली होने की अपेक्षा हम बाहरी धमकियों तथा आंतरिक झगड़ों के कारण और भी अधिक परेशान होते रहे। ऐसी हालत में हम क्रांति की असफलता को कैसे इंकार कर सकते हैं? *यह सत्य है कि सन् १९११ की क्रांति को ध्वंसात्मक कामों में सफलता मिली पर यह भी सत्य है वह पुनर्निर्माण कार्यों की दृष्टि से असफल रही।* मांचू राजवंश के अंतिम काल में हमें जो सफलता मिली वह निरंकुश मांचू शासन के विरुद्ध जनता की संगठित इच्छा का परिणाम थी क्योंकि विदेशी शक्तियों ने जो हमारे सार्वभौमिक प्रभुत्व को छिन्न-भिन्न कर डाला था और जिसके परिणाम स्वरूप हमारे राष्ट्र को अपमान उठाना पड़ा उसकी जिम्मेवारी मांचू सरकार पर थी। *जहाँ कहीं भी असफलता मिली उसका कारण यह था कि हमारी जनता ने इस बात को ठीक ठीक नहीं समझा कि क्रांति में रचनात्मक तथा ध्वंसात्मक दोनों कार्य साथ साथ होते हैं। जहाँ लोगों ने इसे समझा भी था वहाँ सबों ने उसमें हाथ नहीं बँटाया।* इस कारण सन् १९११ की क्रांति के उत्कर्ष के बाद हमारे लोग इस कथन को मान गुमराह हो गए कि "क्रांतिकारी शक्तियों को पैदा कर क्रांतिकारी पार्टी नष्ट हो जाती है।" उन्होंने समझा कि रचनात्मक कार्य के लिये क्रांतिकारी पद्धतियों की आवश्यकता ही नहीं है। केवल हमारी जनता को ही नहीं बल्कि क्रांतिकारी दल के हमारे कुछ साथियों को भी वही भ्रम हो गया था। इन परिस्थितियों में युद्ध अधिनायकों और राजनीतिज्ञों को अपने मन का करने की स्वतंत्रता मिल गई। उन्होंने अस्थायी विधान से अपना स्वार्थ पूरा कर पुनः उसे अपने पाँव तले कुचल दिया। अपने मनोनुकूल राजनीतिक पार्टियाँ बना उन्होंने केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध खुले आम अपने अपने स्थानों पर अपना अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। ठीक जब कि हमारे राष्ट्र को अपने उत्थान के लिये बहुत कुछ करना चाहिए था उसी समय हमारे युद्धअधिनायक और राजनीतिज्ञ आलसी बन गैरजिम्मेदारी का जीवन व्यतीत कर रहे थे और विध्वंसकारी संग्राम छेड़े हुए थे। उनके लिये तो कोई भी सजा कम ही थी क्योंकि वे सब के सब इच्छाकृत दुराचरण या स्पष्ट रूप से षड्यंत्र रचने के दोषी थे। जन साधारण और विशेष रूप से शिक्षित तथा विद्वान् लोग एक तरफ तो युद्धअधिनायकों द्वारा सताए गए और दूसरी ओर क्रांति विरोधी लोगों के भ्रष्ट तथा गुमराह

करने वाले प्रचार के शिकार बने जो साम्राज्यवादियों के हाथों के कठपुतले थे। सत्यासत्य को न समझने के कारण या दूसरे शब्दों में कहें तो स्याह और सफेद के अंतर को न जान सकने के कारण वे राष्ट्रपिता के विचारों को नहीं समझ सके और जनता के तीन सिद्धान्तों पर तो उन्हें बहुत ही कम विश्वास हो सका। क्वोमिनताङ् के प्रति वे लोग या तो उदासीन थे या विरोधी थे और यहाँ तक कि खुले रूप से विद्रोह करते थे। वे लोग क्वोमिनताङ् तथा राष्ट्र के जीवन के बीच के अविभाज्य संबंध को नहीं समझ सके। ऐसी परिस्थिति देख राष्ट्रपिता डा० सुन यात-सन् इस नतीजे पर पहुँचे कि सफलता पाने के लिये जनता की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर क्रांति प्रारम्भ करनी चाहिए। राष्ट्रपिता द्वारा बताए गए मानसिक पुनर्निर्माण का मुख्य उद्देश्य तो यह है कि पार्टी के सब सदस्य तथा जनसाधारण दोनों ही इस सिद्धान्त की सच्चाई को समझें कि "समझना कठिन है पर करना सरल है।"

राष्ट्र पिता ने बताया है कि क्रांति को जो ध्वंसात्मक कामों में सफलता मिली पर वह रचनात्मक कामों में जो विफल हुई इसका एकमात्र कारण यह था कि लोगों ने पहले को "समझा" और दूसरे को "नहीं समझा।" राष्ट्रपिता ने कहा है—"क्यों हमारी क्रांति ध्वंसात्मक कामों में सफल रही पर रचनात्मक कामों में असफल रही? इसके कारण को "समझना" और "नहीं समझना" के अंतर में ढूंढ़ा जा सकता है। ध्वंसात्मक कामों के लिये मैंने दश बार क्रांतिकारी प्रयत्न किये पर सब विफल हुए। इसका कारण यह था कि उस समय लोग मांचू राजवंश के गुलाम थे और आलसी तथा गैरजिम्मेवार जीवन व्यतीत करते थे इसलिये क्रांति की बातें उनके हृदय में जम न सकी थीं तथा वे क्रांति को एक बड़ा अपराध समझते थे। पर बाद में क्रांतिकारी विचारों के फैलने से उन्होंने समझा कि मांचू शासन को अवश्य ही उखाड़ फेंकना चाहिए। इसीलिये तो मांचू राजवंश इतनी आसानी से पलट दिया गया। दूसरी ओर, *रचनात्मक कार्य के संबंध में आम जनता तो कुछ भी नहीं जानती थी और क्रांतिकारी दल के सदस्य तक भी उसकी बारीकियों को नहीं समझते थे। क्रांतिकारी कार्यक्रम में ध्वंसात्मक कार्यक्रम से बढ़कर कठिन कुछ नहीं है और रचनात्मक काम से बढ़कर सरल भी कुछ नहीं हैं। फिर भी जो कठिन था वह तो पूरा हो गया और जो सरल था वह विफल हुआ। ऐसा*

क्यों हुआ ? इसके कारण का पता लगाना कठिन नहीं है। चूंकि एक चीज सरल है इसलिये उसकी प्रधानता की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता है अतः विफलता मिलती है। क्यों मैं कहता हूँ कि रचनात्मक कार्य सरल है ? क्योंकि ध्वंसात्मक कार्य के पूरा हो जाने से ही प्रतिरोध दब जाता है और जब प्रतिरोध दब जाता है तो पुनर्निर्माण कार्य के लिये हम जो करना चाहते हैं उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं रह जाती है। रचनात्मक कार्य ध्वंसात्मक कार्य की तुलना में सरल है क्योंकि ध्वंसात्मक कार्य में जरा भी असावधानी होने से उसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। फिर भी जो सरल है वही आसानी से सफल नहीं हुआ। जब हम लोगों ने समझ लिया था कि हमारे राष्ट्र की मुक्ति के लिये क्रांति प्रारम्भ करना और मांचू शासन को उखाड़ फेंकना आवश्यक है तो हम लोग कठिनाइयों और खतरों के होते हुए भी आगे बढ़ते गए। तब विध्वंसात्मक कार्य पूरा हो गया तो हम लोगों ने सोचा कि रचनात्मक कार्य सरल है और उसमें व्यक्तिगत खतरा भी नहीं है तथा वह क्रांतिकारी पद्धतियों के अभाव में भी विभिन्न तरीकों से पूरा होसकता है। *इसीलिये तो हमारा रचनात्मक कार्य विफल हुआ।*" सन् १६११ की क्रांति की सफलता और विफलता के कारण का कितना सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी विश्लेषण है यह ! अफसोस यही है कि उस समय हमारी पार्टी के साथियों तथा जनसाधारण दोनों ही इसे पूरी तरह नहीं समझ सके। क्यों ? इसका उत्तर यही है कि हमारे लोग इस पुराने मत के माया-जाल में फँसे रहे कि "समझना सरल है पर करना कठिन है" और इस तथ्य को नहीं समझ सके कि "समझना कठिन है पर करना सरल है।" राष्ट्र-पिता ने कहा है—"यह पुराना सिद्धान्त विद्वानों के मन में बद्धमूल हो गया और उन्होंने उसे जनता में भी फैलाया है। इस प्रकार क्या कठिन है और क्या सरल है इसको लेकर बड़ी गड़बड़ी मची हुई है। इस प्रकार की विचार धारा से हमारे राष्ट्र में, जिसमें पहले से ही किसी कार्य को स्वतः प्रारम्भ करने की शक्ति तथा साहस का अभाव है, यह प्रवृत्ति पैदा हो गई है कि *जहां कुछ भी कठिनाई नहीं है वहां वह कठिनाई देखता है और जहां कठिनाई है वहां उसे कठिनाईही नहीं दिखाई पड़ती।* इसलिये जो *वास्तव में सरल था उससे लोग दूर रहे और जो वास्तव में कठिन था उसे लोगों ने आसान समझा।* पहले उन्होंने समझने की कोशिश की और तब करने की। पर बाद में जब उन्हें पता लगा कि समझना उनके

बूते के बाहर है तो उन्होंने एक निश्वास फेंक सभी चीजें छोड़ दीं। समय समय पर कुछ दृढ़ इच्छा वाले व्यक्ति भी हुए जिन्होंने किसी खास चीज को "समझने" का भरसक प्रयत्न किया और उसी में सारा जीवन लगा दिया ? पर अपनी इस पूर्व धारणा के कारण कि जो समझा गया है उसे कार्यान्वित करना और भी कठिन है, वे अपने कार्य करने का साहस खो बैठे। इसलिये जिनमें आवश्यक समझ ही नहीं थी उनमें तो काम करने की प्रवृत्ति ही नहीं जगी पर जिन्हें समझ थी उनमें कार्य करने का साहस ही नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप कुछ भी हाथ नहीं लगा। चीन की कमजोरी तथा अवनति का यही कारण है।" *सन् १९११ की क्रांति के बाद जनता तथा क्वोमिनताङ् के सदस्य दोनों ही पुनर्निर्माण की आवश्यकता को न समझ सके; फिर पुनर्निर्माण के लिए क्रांतिकारी पद्धतियों को लागू करने की बात तो दूर रही।* यद्यपि उनके सामने राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् की शिक्षायें पथ प्रदर्शक के रूप में थीं जो उन्होंने पूर्णतया समझ कर दी थीं पर क्वोमिनताङ् के सदस्यों और जनता दोनों के दिलों में तब तक तो वही पुरानी भावना जमी हुई थी कि "समझना सरल है पर करना कठिन है।" उन्होंने कभी पुनर्निर्माण कार्य पर गंभीरता से विचार ही नहीं किया। विशेष कर उन्होंने जनता की जीविका के सिद्धान्त को तो समझा ही नहीं और राष्ट्रीयता के सिद्धान्त तथा जनता के अधिकार के सिद्धान्त का बाहरी रूप मात्र देख कर ही संतोष कर लिया। *इसी कारण से हमारी क्रांति अपने रचनात्मक कार्यों में असफल रही।*

वास्तव में "समझना सरल है पर करना कठिन है।' वाली पुरानी कहावत चीनी दर्शन का कोई ठोस सिद्धान्त नहीं है। यह देखा गया है कि मानव समाज में हर व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अनुसार ही चलता है पर बहुत कम उन नियमों को समझते हैं। इसलिये कनफ्युशस ने कहा है— "लोगों को किसी कार्य में लगा देना सरल है पर उसे वह कार्य समझा देना कठिन है।" इसलिये यह स्पष्ट है कि जो प्रकृति के नियमों को समझते हैं और जो नहीं समझते हैं दोनों ही उनके अनुसार ही कार्य करते हैं। इसलिये मेनसियस (मङ्च) ने कहा है—"बिना कारण समझे ही करना और बिना समझे बराबर करते रहना और जीवन के वास्तविक पथ के स्वरूप को बिना समझे ही उस पर चलते रहना—यही जनसमुदाय का स्वभाव है।" चुङ् युङ् (मध्यम मार्ग का सिद्धान्त) के अनुसार—"महापुरुषों का मार्ग बहुत

विस्तृत होता है पर यह आवश्यक नहीं है कि वे उसे पूरा पूरा समझते हों साधारण स्त्रियों और पुरुषों को चाहे वे कितने भी अनजान क्यों न हों, उसकी कुछ जानकारी हो सकती है पर उसके चरम रूप को तो महात्मा भी नहीं समझते हैं। साधारण स्त्री-पुरुष चाहे उनका चरित्र कितना भी दुर्बल क्यों न हो, कुछ दूर तक उसका आचारण कर सकते हैं पर उसके चरम रूप को तो महात्मा भी अपने जीवन में नहीं उतार सकते हैं।" इसीसे हम समझ सकते हैं कि विश्व में जिस नियम के अनुसार सब प्राणी चलते हैं उसका पालन करना सरल है पर उसे समझना कठिन है।

हमारे पूर्वजों ने जो समझ प्राप्त की थी वह तो बहुत युगों के एकत्रित अनुभव और उनके सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्यपूर्ण कार्यों का परिणाम थी। इसलिये मैं बराबर कहता आया हूँ कि "जो काम नहीं करता है वह समझ भी नहीं सकता है।" उद्देश्यपूर्ण कामों के परिणाम स्वरूप जो समझ प्राप्त होती है वह सच्ची समझ है और एकमात्र सच्ची समझ से ही कार्य करना सरल होता है। कनफ्युशस ने अपने शिष्यों को छः कलाओं की शिक्षा इसीलिये दी कि वे उद्देश्यपूर्ण कार्यों द्वारा सच्ची समझ प्राप्त कर सकें। शिष्टता, संगीत, धनुर्विद्या, रथ संचालन, पढ़ना-लिखना तथा गणित ये छः कलायें ही शिक्षा द्वारा आरम्भ से अंत तक सच्ची समझ के उदाहरण हैं। कनफ्युशस के बाद के युगों के विद्वानों ने यह सत्य मान लिया कि प्राचीन लोगों की समझ तो बहुत युगों के एकत्रित अनुभव तथा उनके सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्यपूर्ण कार्यों का परिणाम थी; इसलिये उन्होंने "समझना सरल और करना कठिन" मान लिया। यह भ्रमपूर्ण धारणा स्वतः जनता के मन में बैठती गई और उससे समझ और कार्य के बीच दुविधा की सृष्टि हुई और इस प्रकार क्या कठिन है और क्या सरल है के संबंध में भ्रम पैदा हो गया। इस गलती को सुधारने के लिये वाङ् याङ् मिङ् ने "ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य के सिद्धान्त का प्रचार किया।" समझना और कार्य करना एक है" यह सिद्धान्त हम लोगों के इस वैज्ञानिक युग के जीवन का मार्ग प्रदर्शक नहीं हो सकता। वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार हर आदमी को अपने कार्य में श्रम के विभाजन तथा किसी चीज में विशेषता हासिल करने के सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए। यद्यपि समझने वाले और करने वाले इन दोनों के बीच घनिष्ट सहयोग की आवश्यकता है फिर भी श्रम का विभाजन तो रहना ही चाहिए। इसलिये राष्ट्रपिता की उक्ति कि "समझना

कठिन है पर करना सरल है" मनुष्य जीवन का पथप्रदर्शक सिद्धान्त है।

मनुष्य की आंतरिक प्रवृत्ति से ही समझ पैदा होती है अतः उसे बाहर नहीं ढूंढ़ना चाहिए। ऊपर-ऊपर से यह जान पड़ता है कि समझ प्राप्ति के लिये हमें अपने पुराने अनुभवों को न भूलते हुए विदेशी विज्ञान और टेकनिक को सीख लेना है। पर वास्तविक रूप में देखें तो जो समझ स्वाभाविक रूप से अंतर से नहीं आती है उसे सच्ची समझ नहीं कहा जा सकता। साथ-साथ सच्ची समझ से काम करने में सुविधा मिलती है। क्यों मांचू राजवंश के अंतिम समय में तथा प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में हमारे शहीद खतरा उठाते थे और धीरतापूर्वक मृत्यु का भी आलिंगन करते थे? इसका कारण यह था कि उन्होंने इसे ठीक-ठीक समझ लिया था अतः उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि एकमात्र क्रांति द्वारा ही देश की रक्षा हो सकती है। इसलिये क्रांतिकारी कामों को बढ़ाने का संकल्प कर वे निर्भीकता से आगे बढ़ते गए और उन्होंने जीवन या मृत्यु, मान या अपमान किसी चीज की परवाह न की। चूंकि उन लोगों की "समझ" उनके आंतरिक स्वभाव से जुड़ी हुई थी और उन्होंने सच्ची समझ प्राप्त कर कार्य प्रारम्भ किया था इसलिये तीन हजार वर्ष प्राचीन राजतंत्रात्मक शासन पद्धति के साथ-साथ दो सौ वर्षों से अधिक काल से चले आते हुए मांचू शासन के निरंकुश अत्याचार को भी उन्होंने मिटा दिया। क्या कारण है कि सन् १९११ की क्रांति की तरह ही पार्टी के सदस्य और जनसाधारण दोनों ही क्रांतिकारी शहीदों के अपूर्ण कार्य को पूरा न कर सके और राष्ट्रपिता के आदेशों का अनुसरण न कर सके? इसका कारण यह था कि उनके मत और सिद्धान्त एकमात्र दूसरों की नकल थे और उन्होंने सच्ची समझ प्राप्ति के लिये कभी आत्मान्वेषण नहीं किया। उनकी "समझ" पूर्ण निष्ठा का परिणाम नहीं थी और उनके कार्य के पीछे कोई महान् उत्साह नहीं था। इसी कारण प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के बाद एक दशाब्दी तक हमारे देश में सामाजिक अशांति और राजनीतिक अराजकता फैली रही और अपने स्वार्थ साधन का स्वतंत्र अवसर पा युद्धअधिनायकों और क्रांतिविरोधियों ने राष्ट्र तथा जनता दोनों पर विपत्ति का पहाड़ ढाह दिया।

भूतकाल की घटनाओं से यद्यपि सही रास्ते का स्पष्ट पता लग गया है फिर भी हमारे लोग उसे क्यों नहीं पहचानते हैं? इसका कारण सहज

ही जाना जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप से देखें तो हमारे लोग तत्परता तथा ईमानदारी से ठीक-ठीक समझने की कोशिश नहीं करते। यहां तक कि जो सत्य सिद्ध हो गया है उसे भी खुले मन से स्वीकार नहीं करते। व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो हमारे लोग गलत ढंग से सोचने तथा उदासीन होकर काम करने के बुरी तरह आदी हो गए हैं। इसके साथ-साथ वे उनके नेतृत्व में चलना भी नहीं चाहते जो "दूसरों की अपेक्षा पहले ही किसी चीज को देख तथा समझ सकते हैं" और न वे दृढ़प्रतिज्ञ होकर किसी काम में जुट ही सकते हैं। जो कुछ हो, उनका गलत सिद्धान्त ठीक-ठीक समझ के अभाव के कारण है। और उनमें उदासीनता की जो मनोवृत्ति आ गई है वह सबल प्रयत्न नहीं कर सकने का फल है। एकमात्र पूर्ण निष्ठा से ही हम असत्य को छोड़ सकते हैं और सच्ची समझ प्राप्त कर सकते हैं। एकमात्र पूर्ण निष्ठा से ही हम अविश्रांत प्रयत्न कर सकते हैं और अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं तथा एकमात्र ठीक-ठीक समझ और अविश्रांत प्रयत्न से ही हम बिना डगमगाए तथा दुविधा रहित होकर आगे बढ़ सकते हैं। चुङ् युङ् (मध्यम मार्ग का सिद्धान्त) के अनुसार "बिना निष्ठा के कुछ भी प्राप्ति नहीं होती।" *जब तक हमारे लोगों के मन तथा अभ्यास में सादगी तथा निष्ठा घर नहीं कर ले तब तक हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।* इसीलिये तो राष्ट्रपिता ने सन् १९११ की क्रांति के बाद के कष्ट और कठिनाइयों को झेलते हुए भी क्वोमिनताङ् के सदस्यों से तथा जन साधारण से भी कहा कि हमारी राष्ट्रीय क्रांति तथा पुनर्निर्माण का पथप्रदर्शक दार्शनिक सिद्धान्त यह है कि "समझना कठिन है पर करना सरल है।" अब से हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की सफलता या विफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे लोग इस दर्शन को हृदयंगम करते हैं या नहीं। अगर हमारे लोग सन् १९११ की क्रांति की शिक्षा से लाभ उठा सके और डा० सुन् यात्-सन् के 'करना सरल है" के दर्शन के अर्थ को ठीक-ठीक समझ सके तथा संगठित् रूप से समान प्रयत्न में लग सकें तो वे एक निश्चित अवधि के अंदर पुनर्निर्माण के पांचों अंगों को कार्यान्वित कर सकेंगे तथा एक आधुनिक राज का निर्माण करेंगे जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति, सुरक्षा और अर्थ व्यवस्था में पूरा-पूरा सामंजस्य रहेगा।

२

सामाजिक और बौद्धिक सुधार की समस्यायें

राज में व्यवस्था या अव्यवस्था का बना रहना तथा राष्ट्र की उन्नति या अवनति होना प्रायः सामाजिक जीवन के ढाँचे तथा गुणों पर निर्भर है जिन्हें हम "सामाजिक दशा" कह सकते हैं। असम संधियों के परिणाम स्वरूप तथा विदेशी रियायती क्षेत्रों में फैले हुए पाप तथा दूषित रीति रिवाज के कारण हमारे सामाजिक जीवन में विभिन्न प्रकार के अस्वस्थ तथा भ्रष्टतापूर्ण व्यसन घुस आए हैं। अब असम संधियाँ तथा रियायती क्षेत्र दोनों ही मिट गए हैं इसलिये "सामाजिक दशा" को उठाना किनका कर्त्तव्य है ?

यह स्पष्ट है कि जब तक भीतर से काम करने की प्रवृत्ति तथा ईमानदारी से काम में जुट जाने की भावना को जगा कर हम अपनी सामाजिक दशा में सुधार नहीं करते तब तक हमें पुनर्निर्माण कार्य के पूरा होने की आशा भी नहीं रखनी चाहिए। इतिहास में ऐसे दृष्टान्त अनेक हैं जब कि कुछ ही राजनीतिज्ञों या शिक्षकों ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्न और प्रभाव से अपने युग की सामाजिक दशा को सुधारने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार के नेता अकस्मात् या भाग्य से नहीं पैदा हो जाते। जब राष्ट्र की हालत एकदम से डाँवाँडोल होने लगती है तो उस कठिन समय में देश तथा जनता को बचाना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझने वाले गिने-चुने लोग जो इस प्राचीन कथन पर विश्वास करते हैं कि "राष्ट्र के उत्थान या पतन में हर नागरिक को उत्तरदायित्व का अपना-अपना भाग उठाना चाहिए" और जो वास्तव में "राज के भविष्य की चिंता करने वाले प्रथम व्यक्ति तथा आनन्द का उपभोग करने वाले अंतिम व्यक्ति होते हैं" तथा जो इस सिद्धान्त को मानते हैं कि "आकाश के नीचे सब कुछ लोक हित के लिये है" वे ही सामाजिक साहस-शक्ति और रीति-रिवाज को सुधारने में सफलीभूत होते हैं। मेनसियस (मङ् च) ने कहा है—"हर व्यक्ति याव् और शुन् हो सकता है।" उन्होंने फिर कहा है—"अपने उत्थान के लिये जो सम्राट वन् (चउ राजवंश के स्थापक) की प्रतीक्षा करते हैं वे साधारण लोग हैं और जो सम्राट वन् की प्रतीक्षा न कर स्वयं कार्य में जुट जाते हैं वे ही वीर हैं।" इनसे हमें शिक्षा मिलती है कि जैसे ही किसी व्यक्ति को अपने देश को मुक्त करने के अपने

कर्त्तव्य का बोध हो उसे तत्क्षण ही उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिये तथा यह भी शिक्षा मिलती है कि अपनी बुद्धि और योग्यता भर अविश्रांत परिश्रम और ईमानदारीपूर्वक कार्य करने से ही सामाजिक दशा में सुधार हो सकता है। राष्ट्रपिता ने कहा है—"महान् प्रतिभा एवं योग्यता वाले व्यक्ति को एक से दश हजार आदमियों तक की सेवा करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये। थोड़ी प्रतिभा और योग्यता वाले व्यक्ति को दश से सौ सहयोगियों तक की सेवा करने का अपनी शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये और जिसमें प्रतिभा तथा योग्यता नहीं के बराबर है उसे अपने अतिरिक्त कम से कम एक और सहयोगी की सेवा करने का शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये।" इसलिये हम लोग कह सकते हैं कि बुद्धि और योग्यता में कम अधिक होने पर भी अगर हम अविश्रांत प्रयत्न और ईमानदारीपूर्वक कार्य कर अपने देश को बचाने का दृढ़ संकल्प कर लें तो ग्राम, जिला यहां तक कि सम्पूर्ण देश की सामाजिक और नैतिक दशा में परिवर्तन लाना संभव हो जायगा। जब तक हमारे यहां कुछ ऐसे व्यक्ति रहेंगे जो दूसरों के लिये दृष्टान्त स्वरूप हो सकते हैं तो ग्राम, जिला यहां तक कि सम्पूर्ण देश के लोग भी अनजाने ही उनका अनुकरण करते रहेंगे। जिस प्रकार हवा के झोंके से घास झुक जाती है उसी प्रकार ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव भी सामाजिक दशा पर पड़ता है।

जब कभी भी हमारे देश के सामने महान् संकट उपस्थित हुआ उस समय हमारे यहां कुछ ऐसे राजनीतिज्ञ एवं शिक्षक हुए जिन्होंने अपने समय के सामाजिक जीवन में सुधार करने के महा कठिन कार्य को अपना कर्त्तव्य समझ कर किया। उदाहरण के लिये देखिये कि पूर्वी हान् राजवंश (सन् २५—२२० ई०) के अंतिम काल में कुछ प्रभावशाली और धनिक परिवारों के हाथों में ही देश की सारी जमीन चली गई थी जबकि कम पैसे वाले तथा गरीब बेघरबार तथा अकिंचन हो गये थे। हमारे दर्शन पर ताओ मत तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ने लगा था और साहित्य में केवल अलंकारिता का छिछलापन भरने की प्रवृत्ति आ गई थी। "पीली पगड़ी"[१] वाला विद्रोह

(१) यह विद्रोह हान् राजवंश के अंतिम दिनों में हुआ था। विद्रोहियों का नारा था कि—"नील आकाश मिट चुका है—अब पीले आकाश की स्थापना जरूर होनी चाहिये।" ये लोग जादू टोने में भी विश्वास करते थे। छाव् छाव् नामक जनरल ने इस विद्रोह को सन् २०२ ई० में दबाया।

फूटने के बाद कुछ युद्धअधिनायक अपने अपने क्षेत्रों में प्रभुत्व जमा बैठे थे और अपनी अपनी प्रधानता स्थापित करने के संघर्ष में लगे हुए थे। संपूर्ण मध्य चीन का तहस-नहस हो गया था केवल शु रियासत (आधुनिक स-चुआन् प्रान्त शु रियासत हान् राजवंश की ही एक शाखा थी।) में ही अपेक्षा कृत सुख-शांति थी। इस काल की सामाजिक उच्छृङ्खलता और धनवानों का प्रभुत्व तो पूर्वी हान् राजवंश के समय से भी बढ़ गए थे। चु को लु होउ (चु को लिआङ्) शु रियासत का प्रधान मन्त्री था और वह दो सम्राटों का लगातार प्रधान मन्त्री रहा था। उसने अपने बारह वर्षों के शासन काल में देश की सुरक्षा के लिये पहले ही दुश्मनों पर आक्रमण कर देने का रण कौशल अपनाया और शासन प्रबंध के लिये सहिष्णुता के साथ साथ कड़े कड़े दंड देने की नीति अपनाई। हान् राजघराने पर बल पूर्वक अधिकार जमा लेने वाले (वह रियासत का राजा छाव् छाव्) से इस अपमान का बदला चुकाने के लिये उसने लोगों के दिलों में छाव् छाव् के विरुद्ध आक्रमण करने की बात बिठाकर उन्हें उत्साहित किया। उसने लोगों में यह भावना पैदाकर कि उन्हें अपने पद के योग्य ही अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये छिछोरेपन तथा गैर जिम्मेवारी की प्रवृत्ति को बढ़ने से रोका। इस प्रकार के प्रयत्नों द्वारा ही उसने पा तथा शु रियासतों (आधुनिक स चुआन् प्रान्त) को जो चीन का एक छोटा सा भूभाग था, सम्पूर्ण मध्य चीन पर अधिकार रखने वाले वइ रियासत के सम्राट छाव् छाव् से बचाया। बाद की पीढ़ी के विद्वानों ने चु को लिआङ् की निंदा इसलिये की कि वह कानून द्वारा शासन प्रबन्ध की नीति पर अत्यधिक ध्यान रखता था। पर यह भुला दिया गया कि चु को लिआङ् का व्यक्तित्व निस्पृहता, शांति, लोकहित की भावना और पूर्ण निष्ठा का मूर्तरूप था जिसकी कल्पना भी वे विद्वान् नहीं कर सकते थे। थाङ् राजवंश के पिछले काल से पांच राजवंशों के अन्त तक के दो सौ वर्षों में देश के विभिन्न भागों में उपद्रव और प्रतिद्वन्द्विता फैली हुई थी। विभिन्न क्षेत्रों के युद्धअधिनायकों को दबाकर सुङ् राजवंश ने चीन को पुनः संगठित किया। पर बौद्ध और ताओ विचार धारा पुनः बढ़ने और फैलने लगी। साहित्य में यमकात्मक शैली की दासता का प्रादुर्भाव हुआ; राजकीय परीक्षा में प्राचीन ग्रन्थों के भाष्य या उन पर प्रबन्ध लिखने पर जोर दिया जाने लगा; शासन प्रबन्ध का भार दकियानूसी कर्मचारियों के हाथों में चला गया और राष्ट्रीय अर्थ

व्यवस्था की यह हालत हुई कि अधिक से अधिक जमीन धनिकों के हाथों में जाने लगी। सैनिक व्यवस्था के संबंध में तो दूर दूर फैले हुए क्षेत्रों की अपेक्षा केवल बड़े बड़े नगर क्षेत्रों की रक्षा पर ध्यान दिया गया जिस कारण बाहरी आक्रमण होने लगे और देश के भीतर अशांति फैल गई। पहले तो फान् चुङ् यन् ने उस समय के पिछड़े विचारों में सुधार करने के लिये "चार निबन्ध" नामक ग्रंथ लिखा। बाद में उसने सम्राट की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा जिसमें दश बातों को कार्यान्वित करने का सुझाव था। उसने अन्य बातों के साथ साथ यह सुझाव भी रखा था कि विद्यालय स्थापित कर ऐसे व्यक्तियों को शिक्षित किया जाय जो अर्थ व्यवस्था, शासन प्रबन्ध और राजस्व प्रबन्ध के कार्यों को कर सकें तथा अर्थशास्त्री और शासन प्रबन्धक को चुनने के लिये राजकीय परीक्षा प्रणाली में भी सुधार हो। उस काल में साहित्य के क्षेत्र में औउ याङ् शिउ और सु श और प्राचीन विद्या के क्षेत्र में हु युआन् और सुन् फु ने बड़ी प्रगति की। जिसके फलस्वरूप योग्य व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या पैदा हो गई और एक नई सामाजिक दशा का विकास हुआ। इसके बाद ही तो चाङ् चाय, छङ् हाव् और छङ् इ के तार्किक सम्प्रदाय और वाङ् चिङ् कुङ् (वाङ् आन् श) के राजनीतिक सुधार के कार्यक्रम बने और उनकी प्रगति हुई। मिङ् राजवंश के अन्तिम काल में शासन प्रबन्ध दरबारी हिजड़ों के हाथों में चला गया और सामाजिक जीवन में छिछोरापन तथा उच्छृङ्खलता आ गई। चु शि सम्प्रदाय छोटी छोटी ब्योरेवार बातों पर अधिक ध्यान देने लगा और वाङ् याङ् मिङ् (वाङ् शोउ-जन्) सम्प्रदाय की शिक्षायें अस्पष्ट और रहस्यवादी होती गई। चाङ् चू चङ् के हाथों में चौदह वर्षों तक अधिकार रहा और उस बीच उसने "व्यावहारिक ज्ञान और व्यावहारिक प्रयोग" पर जोर देकर जनता की विचार धारा को ठीक दिशा में मोड़ा तथा "जीवन में अपनी स्थिति के अनुसार अपने कर्त्तव्य को पूरा करने" की बात का प्रचार कर सरकारी अफसरों में अनुशासन की भावना भर दी। वह जनसाधारण को आदिम सादगी के आदर्श पर ले जाने को दृढ़ प्रतिज्ञ था। सच्चे विश्वास, दृढ़ संकल्प और साहसपूर्ण कार्य के कारण वह अपने को व्यक्तिगत सफलता या विफलता तथा लोगों की निंदा या प्रशंसा से परे रख सका। उसका व्यक्तित्व तो चु को होवु उ (चु को लिआङ्) और फान् चुङ्-यन् के समकक्ष या उनसे अधिक ऊँचे दर्जे का था। मांचू राजवंश (छिङ् राजवंश)

के ताव् कुआङ् तथा शिएन् फङ् (सन् १८५०-१८६१) के राजत्वकाल में छङ् कुओ-फान्, हु लिन्-इ, चो चुङ् थाङ्, लि हुङ् चाङ् तथा इनकी ही तरह और व्यक्ति हुए जिन्होंने उस काल की सामाजिक दशा में सुधार करना अपना कर्त्तव्य समझा। छङ् कुओ-फान् (छङ् वन् चङ्) कानून को पालन करने-कराने में बड़ा कठोर था और उसने सरकारी नौकरी के लिये ऐसे व्यक्तियों के चुनाव पर जोर दिया जिनमें गरम लहू का जोर हो (=जिनमें प्रतिष्ठा की भावना, दूरदर्शिता और निर्णय करने की योग्यता हो)। वह हान् तथा सुङ् दोनों काल की विद्याओं से प्रेरणा ग्रहण करता था पर वह पूर्ण निष्ठा को ही किसी चीज का चरमस्रोत मानता था। आत्मविकास और व्यक्तिगत चरित्र के लिये वह एकान्त में अपने विषय में सावधान रहना, श्रद्धा, उदारता और कठिन परिश्रम" इन चार सिद्धान्तों का पालन करता था। अतः हुनान् और ह-नान्[1] सैनिकों को जो सफलता मिली वह दैविक घटना नहीं थी।

चीनी इतिहास में ऐसे दृष्टान्त भरे पड़े हैं जब कि विचारकों और विद्वानों द्वारा सामाजिक जीवन में किए गए परिवर्तन का गहरा प्रभाव हमारी परम्परागत संस्कृति और राष्ट्रीय भावना पर पड़ा है। "रियासती कलह काल"[2] (Period of the Warring States) के प्रारम्भिक दिनों में व्यक्तिवाद और उपयोगितावाद ये दोनों विचारधारायें देश में फैली हुई थीं। "याङ् चु और मो च् की शिक्षायें साम्राज्य भर में फैली हुई थीं" और "साम्राज्य भर में लोग या तो याङ् चु के मत का पालन करते थे या मो च् के मत का।" कनफ्युशस की शिक्षा के आधार पर मेनसियस ने न्याय और उपयोगिता के बीच तथा शक्ति से शासन करने और सद्गुणों से शासन करने के बीच विभेद किया। उसने "शब्दों के ठीक अर्थ समझने" तथा "भद्रभावना को जगाने" की प्रधानता पर जोर दिया तथा मनुष्य की सहानुभूति लज्जा तथा विनय सही और गलत की भावना को ही दया, न्याय औचित्य और ज्ञान के सिद्धान्तों का आधार माना तथा उनकी उन्नति पर

(१) ये सैनिक दस्तों के नाम थे जिन्होंने थाइ फिङ् विद्रोह का दमन किया था।

(२) ४७३–२२१ ई० पू० का काल 'रियासती कलह काल' कहलाता है क्योंकि उस समय चीन कई रियासतों में बंटा था और सब के सब अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिये आपस में बराबर संघर्ष करते रहते थे।

जोर दिया क्योंकि इनके द्वारा ही मनुष्य और पशु में भेद किया जाता है। उसने याङ् चु और मो च की शिक्षाओं का खंडन कर जनता के दिलों से दूषित भावनाओं को दूर किया। इस तरह उसने चीन में नैष्ठिक विचारों वाले सम्प्रदाय की स्थापना की जो तीन हजार वर्षों से अविछिन्न रूप में विकसित होता आ रहा है। पूर्वी हान् राजवंश के अंतिम दिनों में जब कि बौद्ध धर्म और लाव् च की शिक्षायें प्रचलित हुई और उन्होंने कनफ्युशस सम्प्रदाय के विचारों को ढक लिया तो उस समय वाङ् थुङ् पीली नदी और फन् नदी के आसपास के भूभागों में अपने मत का प्रचार कर रहे थे। वे बौद्ध धर्म और लाव् च की शिक्षाओं का खंडन करते थे और शिआ (चीनी) तथा यि (बर्बर, विदेशी) शिक्षाओं के बीच विभेद करने पर बहुत जोर देते थे। इसलिये थाङ् राजवंश के प्रारम्भिक दिनों के महान् राजनीतिक संस्थान और उन्नतिशील कला तथा विज्ञान पर उनके मत का काफी प्रभाव पड़ा। थाङ् राजवंश के मध्यकाल में उस काल की साहित्यिक शैली में हान् तुइच (हान् यु) ने क्रांति ला दी, बौद्ध धर्म और लाव् च की शिक्षाओं का विरोध किया और युद्धअधिनायकों द्वारा देश के भिन्न भिन्न क्षेत्रों पर अधिकार जमा लेने की निंदा की तथा राजशक्ति के केन्द्रीयकरण पर जोर दिया। इस प्रकार उन्होंने उत्तर सुङ् राजवंश (सन् ६६०-११२६ ई०) के समय नव उत्तरी कनफ्युशस सम्प्रदाय की स्थापना के लिये रास्ता साफ कर दिया। बाद में जब इस सम्प्रदाय का बहुत ही विकास हो गया तो इसके अनुयायी लोगों ने इसके असली महत्त्व को भुला दिया और वे प्रकृति तथा कारण के व्यर्थ विवाद में पड़ गए तथा पारिभाषिक शब्दों के बाल की खाल निकालने वाले बकवाद में फंस गए। इसलिये वाङ् याङ् मिङ् (वाङ् शोउ जन्) ने "ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य" तथा "सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिये सत्य की गहराई की छानबीन करने की आवश्यकता" के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वाङ् याङ्-मिङ् की शिक्षा उनके समय में ही परिव्याप्त हो गई। मिङ् राजवंश के अंतिम काल से मांचू राजवंश के प्रारम्भ होने तक के बीच कु तिङ् लिन् (कु यन्-वु), ह्वाङ् लि-चोउ (ह्वाङ् चुङ्-शि), वाङ् छुआन्-शान् (वाङ् फु-च) लि अर्-छू, यन् शि-चाय् (यन् युआन्) फु छिङ्-चु (फु शान्) जैसे बड़े बड़े विद्वान पैदा हुए। इन सबों ने ज्ञान के दुर्बोध होने के सिद्धान्तों की निंदा की तथा ज्ञान को व्यावहारिक बनाने का समर्थन किया। राष्ट्र को संकट से उबारने के लिये उन लोगों ने अर्थशास्त्र और

शासनप्रबन्ध की शिक्षा पर जोर दिया तथा लोगों के चिंतन को ठीक राह पर ले जाने के लिये मानव स्वभाव तथा जीवन के अध्ययन का समर्थन किया। इस प्रकार तब से चीनी जनता में राष्ट्रीयता और प्रजातंत्रात्मक भावनाओं की जड़ जमी और दो सौ वर्षों से अधिक समय के बाद सन् १९११ की क्रांति हुई जिसने मांचू लोगों के निरंकुश शासन को उलट दिया और चीन के प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना की।

इन राजनीतिज्ञों और विचारकों ने हमारी राष्ट्रीय भावना को सुरक्षित रखने तथा उन्हें बढ़ाने और हमारे परम्परागत गुणों को दृढ़ करने की दिशा में बड़ा ही अमर कार्य किया है। इसलिये राष्ट्रपिता ने कहा है—"मनुष्य को अपने क्षणभंगुर जीवन के कुछ बीसियों को अपने राष्ट्र की स्थायी नींव देने के लिये बलिदान कर देना चाहिए।" ये राजनीतिज्ञ और विचारक राष्ट्र निर्माण तथा संसार की मुक्ति के कार्य के लिये हमारे आदर्श हैं। हममें से जिनमें प्रतिभा और योग्यता है उन्हें उनके पद चिह्नों पर चलने का कार्य "सत्य की खोज" और "शब्दों की सच्ची समझ" से प्रारम्भ करना चाहिए। हम क्रांतिकारियों को बराबर यह ध्यान रखना चाहिए। कि हम जो भी काम कर रहे हैं चाहे वह कितना ही बड़ा या छोटा क्यों न हो, हमें उसकी परख "सत्य की खोज" के सिद्धान्त के अनुसार करनी चाहिए तथा हमारे ध्यान में जिस किसी प्रकार के सिद्धान्त या मत क्यों न आएँ उनकी भी परख हमें सावधानीपूर्वक "शब्दों की सच्ची समझ" के सिद्धान्त के अनुसार करनी चाहिए। "सत्य की खोज" का अर्थ यह है कि हमें वास्तविकता की स्पष्ट धारणा हो, अपनी परिस्थिति की यथार्थ जानकारी हो, हम चीजों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण कर सकें और समस्या की बारीकियों को ठीक ठीक समझ सकें ताकि कुछ भी अस्पष्ट तथा भ्रमपूर्ण नहीं रहे। "शब्दों की सच्ची समझ" का मतलब है किसी सिद्धान्त या प्रस्ताव से जुड़े अभिप्राय या अर्थ की गहरी छानबीन करना, सिद्धान्त के अन्वेषण की पद्धति का अध्ययन करना और आंकड़े संबंधी प्रमाण की जाँच करना, न कि हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना या दूसरों का अंधानुकरण करना। ऐसा होने से ही हम किसी सिद्धान्त के तथ्यातथ्य का विवेचन कर सकेंगे, उसके लाभ और हानि को तथा उसके व्यावहारिक परिणाम को जान सकेंगे चाहे वह कितना ही भ्रमपूर्ण क्यों न हो और चाहे वह कितने ही

सूक्ष्म तरीकों से क्यों न प्रकट किया गया हो। विशेष रूप से ध्यान रखने की बात यह है कि जो सिद्धान्त या मत देश के लिये जितना ही अहितकर होता है अक्सर उसके समर्थन में उतना ही वाग्जालपूर्ण तर्क पेश किया जाता है। कनफ्युशस ने लु रियासत के न्याय मंत्री होने के सातवें दिन ही शाव् चङ्-माव् को प्राणदंड दिया। उन्होंने कहा—"चोरी और डकैती को छोड़ आकाश के नीचे पाँच प्रमुख बुराइयाँ हैं। पहली, विश्वासघात और दुष्टता, दूसरी पतित और दुर्दमनीय चरित्र, तीसरी मिथ्या वाक्चातुरी, चौथी अनुचित मार्ग में विद्वता का उपयोग और पाँचवीं खराब काम को चालाकी से छिपाना। अगर किसी व्यक्ति में इन पाँच बुराइयों में एक भी है तो न्यायवान् मनुष्य द्वारा वह अवश्य दंड पायगा। फिर शाव् चङ्-माव् में तो पाँचों बुराइयाँ हैं। जहाँ कहीं वह जाता है वह अपने पीछे एक दल इकट्ठा कर लेता है; वह जहाँ कहीं बोलता है लोगों की केवल चापलूसी करता है, उसमें यह योग्यता है कि जो चीज सही है उसके ठीक उलटा करता है फिर भी अपने को पाक-साफ बनाए रखता है। यह वास्तव में एक पक्का बदमाश है और इसे सजा मिलनी चाहिए।" इसीसे हम देख सकते हैं कि अहितकर काम और छिछले सिद्धान्त अक्सर चातुरीपूर्ण तर्क और मीठे-मीठे शब्दों में छिपाए जाते हैं। पर चाहे वे कितनी ही अच्छी तरह से क्यों न प्रकट किए जाएँ, उनके आन्तरिक ऐब और बुराइयाँ पूर्ण रूप से कभी नहीं छिपतीं। मेनशियस ने कहा है—"पक्षपातपूर्ण शब्द पापी मन को, संयमहीन शब्द पक्षपातपूर्ण मन को, बुरा शब्द पथ-विचलित मन को और कपटपूर्ण शब्द बुद्धि रहित मन को सूचित करता है। जब इस प्रकार की बुराइयाँ मन में उठती हैं तो उनका बुरा प्रभाव सार्वजनिक शासन-व्यवस्था (नीति) पर पड़ता है और इस प्रकार जो बुरा प्रभाव पड़ता है उसका परिणाम फिर सब कामों पर बड़ा भयंकर होता है। उदाहरण के लिये फासिस्टवाद, नाजीवाद और तथाकथित विश्वबन्धुत्ववाद के सिद्धान्त को लीजिए। ये सब के सब वाग्मिता के साथ तथा युक्तिपूर्ण तर्क द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। अगर हम लोग इन सिद्धान्तों के पीछे छिपे अभिप्राय को देखें और इनके द्वारा किस प्रकार विभिन्न देशों की राष्ट्रीय भावना और विचार मिट गए हैं उनका अध्ययन करें तो हमें तुरत पता चलेगा कि इन सिद्धान्तों के चीन में प्रचार करने का अर्थ वही है जैसा कि मेनसियस ने कहा है कि "जहाँ इस प्रकार की बुराइयाँ मन में उठती हैं

तो उनका बुरा प्रभाव सार्वजनिक शासन व्यवस्था (नीति) पर पड़ता है और इस प्रकार जो बुरा प्रभाव पड़ता है उसका परिणाम फिर सब कामों पर बड़ा भयंकर होता है ।" नाजीवाद, फासिस्टवाद तथा विश्व-वन्धुत्ववाद के फैलाने का अभिप्राय क्या है इसके संबंध में राष्ट्रपिता ने कहा है कि "संसार के कुछ देश साम्राज्यवादी तरीकों से दूसरे लोगों पर विजय प्राप्त कर अपना विशेष स्थान बनाये रखना चाहते हैं तथा संसार के मालिक बने रहना चाहते हैं अतः वे विश्वबन्धुत्ववाद का प्रचार करते हैं ताकि संपूर्ण संसार उनकी आज्ञा का पालन करता रहे ।" राष्ट्रीयता की भावना को मिटा देने की सत्य सत्य घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है—"जब एक राष्ट्र दूसरे पर विजय प्राप्त करता है तो वह स्वभावतः ही विजित के दिल में स्वतंत्रता की भावना नहीं पनपने देता । उदाहरण के लिये जापान को देखिए जिसके अधीन कोरिया है । कोरिया पर अधिकार करने के वाद से जापान कोरिया निवासियों का मन बदलने के प्रयत्न में है । इसके लिये कोरिया की पाठ्य पुस्तकों से सब प्रकार की राष्ट्रीय भावना संबंधी बातें निकाल दी गई हैं । अब से तीस वर्षों के वाद कोरिया के जो बच्चे होंगे वे यह भी नहीं जान पाएँगे कि कोरिया नाम का भी कोई देश है और वे कोरिया के निवासी हैं ।" इसलिये 'राष्ट्रीयता का सिद्धान्त' पर दिए गए तीसरे व्याख्यान में राष्ट्रपिता ने राष्ट्रीयता छोड़ विश्वबन्धुत्ववाद के लिये बड़बड़ाने वाले व्यक्तियों की तुलना उस कुली[1] से की है जिसने लाटरी जीतने का समाचार सुनकर अपने उस डंडे को फेंक दिया जिसके भीतर लाटरी का टिकट रखा हुआ था । फासिस्टवाद नाजीवाद या विश्वबन्धुत्ववाद के लिये राष्ट्रीयता को छोड़ देना अपने राष्ट्र और जाति को मिटा देने के समान है । "सत्य की खोज और शब्दों की सच्ची समझ" की प्रधानता के संबंध में इतना ही कहना यथेष्ट है । यह अफसोस की बात है कि पिछले बीस वर्षों में कितने ही योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे सिद्धान्तों के भ्रमपूर्ण तर्क के शिकार बने जो हमारी राष्ट्रीय परम्परा और समय की गति के विपरीत हैं और उन्होंने अपनी बुद्धि का दुरुपयोग किया तथा अपने जीवन को भी नष्ट किया । यह वास्तव में देश की बड़ी हानि है और

(१) इस कुली की पूरी कहानी के लिये देखिये 'जनता के तीन सिद्धान्त' नामक पुस्तक में राष्ट्रीयता पर डा० सुन् यात् सन् का तीसरा व्याख्यान ।

हमारी क्रांति का अभाग्य है। पर यह तो भूतकाल की बात है। मैं आशा करता हूँ कि अबसे हमारे लोग खासकर आने वाली पीढ़ी के लोग जिन्होंने अभी तक अपने जीवन उद्देश्य को निश्चित नहीं किया है, "सत्य की खोज" और "शब्दों की सच्ची समझ" की आवश्यकता का अनुभव करेंगे। यह उनके जीवन की सफलता या विफलता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये हर युवक को अपने अध्ययन तथा अपने कामों में इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा कर वे अपने गंतव्य दिशा को और भी स्पष्ट रूप से देख सकेंगे तथा ठीक-ठीक विचार कर सकेंगे—उन्हें पथ-भ्रष्ट होने का खतरा या पीछे पश्चाताप करने का कोई कारण नहीं रहेगा।

मांचू राजवंश के प्रारम्भ से अब तक के २६० वर्षों में पैदा हुए दूषित रीति-रिवाजों तथा दुर्व्यसनों के फलस्वरूप हमारे देश को बहुत दुःख भोगना पड़ा है। विशेषकर बड़े-बड़े शहरों में जहाँ विदेशी निवास क्षेत्र और रियायती क्षेत्र थे और जहाँ बहिर्देशीय अधिकार का उपयोग किया जाता था वहाँ तो एक शती से भी अधिक समय से उच्छृङ्खलता और अनियमित जीवन को बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा है। वहां की गरीब जनता निराश हो गैर कानूनी काम करने लगी और धनिक उच्छृङ्खल जीवन बिता दिवालिये हो गये। इसी स्थिति का परिणाम हुआ कि हमारे सरकारी अफसर लोभी तथा सैनिक अफसर कायर हो गये। जनता अफसरों को बुराइयों का गढ़ समझने लगी। अफसर लोग स्वयं रंगमंच की कठपुतली के अनुरूप व्यवहार करने लगे, सरकारी कागज-पत्रों को देखने का बहाना बनाने लगे और अपनी तरक्की के लिये चापलूसी करने में लगे रहने लगे। मांचू राजवंश के अंतिम समय से प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों तक तो यह परिस्थिति खराब से खराब होती गई। आज भी लोगों का हृदय नहीं बदला है और सुधार करने की पूर्ण जागरूकता उनमें नहीं आई है। वास्तव में हमारा सार्वजनिक जीवन बड़ा घिनौना हो गया है। इस लज्जा को मिटाने के लिये, जनता में विश्वास की भावना जगाने के लिये तथा सरकार की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिये सब सरकारी और सैनिक अफसरों को स्वयं अपने से पूछना चाहिए कि क्या वे राष्ट्रपिता डा० सुन् यात्-सन् की शिक्षाओं पर चल सकेंगे, हृदय परिवर्तन के उनके आदेशों का पालन कर सकेंगे और क्या वे संकल्प कर सकेंगे कि वे छिछोरेपन को छोड़

सदा ईमानदार बने रहेंगे ? इस प्रकार की आत्म-जिज्ञासा के बाद अगर वे अपने को ठीक समझें तब उन्हें दूसरों की प्रशंसा या निन्दा पर, क्षणिक मान या अपमान पर ध्यान नहीं देना चाहिये या इस बात के लिये नहीं डरना चाहिए कि वे ऊपरी बातों के लिये असली कामों का बलिदान कर देंगे। इस प्रकार की आत्म-जिज्ञासा के बाद अगर उन्हें अपने आप पर भरोसा न हो तो इसके लिये उन्हें पूर्ण अनुशोचन करना चाहिए और उन गलतियों को पुनः नही दुहराना चाहिए जिनके कारण युद्धअधिनायकों और दूषित अफसरों का पतन हुआ।

हमें यह जानना चाहिए कि यद्यपि इस प्रतिरोध युद्ध काल में हम दिन प्रति दिन मजबूत होते जाते हैं तथा हमें असम संधियों से छुटकारा मिल गया है पर हमारी भूमि पर के अभी तक आक्रमणकारी हटे नहीं हैं। अपने खोए हुए भूभाग को लौटाने के लिये, अपने भाइयों को कठिनाइयों से बचाने के लिये तथा अपनी जनता के लिये वास्तविक स्वतंत्रता और अपने राज के लिये वास्तविक स्वाधीनता की पुनः प्राप्ति के लिये हमें अभी और भी अधिक प्रयत्न करना है तथा अधिक बलिदान चढ़ाना है। यूरोप तथा प्रशान्त क्षेत्र में युद्ध छिड़ जाने के बाद से संसार के सैनिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। *अतः चीन के लिये अंधकारपूर्ण या उज्ज्वल भविष्य दोनों ही संभावनायें साथ-साथ हैं।* आज संयुक्त राज अपने रक्षात्मक रणकौशल की अपेक्षा आक्रमणात्मक रणकौशल प्रारम्भ करने को पूर्ण समर्थ हैं और आक्रमणकारी राजों के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। इसी तरह हमारे प्रतिरोध युद्ध की विजय भी देखने में आ रही है। चीन पुनः स्वाधीन तथा स्वतंत्र हो गया है अतः संसार के प्रति उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। सम्भवतः यह वर्त्तमान विश्व युद्ध अब से दो वर्षों के अंदर ही समाप्त हो जायगा और सन् १९४३ का वर्ष ही अंतिम निर्णय को बताने वाला वर्ष होगा। चीन की स्वतंत्रता या परतंत्रता के भविष्य का तथा उसके मान या अपमान का निर्णय जैसा कि प्रथम महायुद्ध के बाद के वाशिंगटन सम्मेलन में हुआ था, इस बार नहीं होगा। स्पष्ट कहें तो *इस बार चीन के भाग्य का निर्णय युद्ध के बाद होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में नहीं होगा बल्कि वह तो अभी जैसे जैसे युद्ध का अंत निकट आता जा रहा है, इस युद्ध के दौरान में ही हो रहा है।*

हमारे लोग चाहे वे उच्च या निम्न किसी भी स्थिति के क्यों न हों अपने निजी प्रयत्न से एक नया अध्याय प्रारम्भ कर सकते हैं या नहीं, यह तो इस बात पर निर्भर है कि वे अपने सामाजिक जीवन की दशा में तथा अपनी जनता की जीविका में सुधार कर सकते हैं या नहीं; ताकि वे इस आधुनिक युग में योग्य नागरिक की तरह रह सकें। सब से प्रधान कार्य तो यह है कि हमें अपने प्रतिरोध युद्ध की निश्चित विजय और अपने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की निश्चित सफलता के लिये सब कुछ करना चाहिए। तभी हम इस स्थिति में होंगे कि अपने भाग्य का स्वयं निर्णय कर सकें और जनता के तीन सिद्धान्तों को लागू कर सकें जिसका उद्देश्य है "विजित को उठाना और गिरे को पुनः स्थापित करना" तथा "कमजोर की सहायता करना और डगमाते को सहारा देना।" अगर हम प्रथम महायुद्ध के बाद की तरह ही दुविधा में पड़े रहे, दूसरों पर निर्भर रहे और गैरजिम्मेवार बने रहे तो हम अपने खोए अधिकार को पुनः नहीं प्राप्त कर सकेंगे या अगर प्राप्त भी कर सके तो उसकी रक्षा न कर सकेंगे। संक्षेप में चीन का भाग्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी जनता अपने पाँवों पर खड़ी हो सकती है या नहीं और वह अपने युद्ध कालीन तथा पुनर्निर्माण कार्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने प्रयत्न से शक्ति संग्रह कर सकती है या नहीं। अपने राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने तथा अपने प्रयत्नों द्वारा शक्ति संग्रह करने के लिये हमारे लोगों को चाहे वे उच्च या निम्न जिस स्थिति में भी हों, अपनी बुराइयों के विषय में गंभीर अनुशोचन की भावना के साथ नया जीवन प्रारम्भ करना चाहिए। *उन्हें छिछलेपन और गैरजिम्मेवारी को मिटाने तथा ईमानदारीपूर्वक और साहस से कार्य करने का संकल्प कर लेना चाहिए। हमें विचार में व्यावहारिक होना चाहिए, जीवन में अनुशासन लाना चाहिए, अपना कर्त्तव्य ईमानदारीपूर्वक निभाना चाहिए और अपने कार्य में व्यवस्था लानी चाहिए। हमें सत्यनिष्ठ और अटल होना चाहिए तथा सदा अभ्युदय की ओर दृष्टि रखना चाहिए।* एकमात्र तभी हम उस आधुनिक चीन की दृढ़ नींव डाल सकेंगे जो राष्ट्रों के परिवार में अपना उचित स्थान ग्रहण करेगा तथा विश्व शांति और मानव हित का उत्तरदायित्व पूरा कर सकेगा।

राजनीतिक जीवन और उसकी विशेषताओं में परिवर्तन होना सामाजिक जीवन और उसकी विशेषताओं के परिवर्तन होने पर

निर्भर है। और सामाजिक जीवन तथा उसकी विशेषताओं की प्रधान प्रेरक शक्ति शिक्षा है। बौद्धिक शिक्षण और राजनीतिक परिवर्तन के बीच परस्पर घनिष्ट संबंध है। विचारों में होने वाले परिवर्तन का केवल समाज एवं राजनीति पर ही प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि साहित्यिक सुधार में भी उसकी गहरी छाप पड़ती है। एक प्राचीन महात्मा का कथन है—"साहित्यिक परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तन से जुड़ा हुआ है।" हमारे इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। हान् और वह् राजवंशों के बीच के काल में साहित्यिक शैली में कृत्रिमता की बाढ़ आ गई और परिश्रम से लिखी गई रचनाओं की उपेक्षा हुई। जिसके फलस्वरूप बुद्धिजीवी वर्ग में पारस्परिक विश्वास और सहयोग का अभाव हो गया। उत्तरी सुङ् राजवंश के मध्यकाल में साहित्यिक शैली में पुनः सादगी और गंभीरता आ गई तथा उत्साह एवं परिश्रम से पुनः काम करने की प्रवृत्ति जगी। मिङ् और मांचू राजवंशों के समय संदर्भाष्टक निबंध लिखने में ही लोगों की बुद्धि लगी रही और जो सरकारी अफसर थे उन्होंने शासन-प्रबंध चलाने की बात सीखने का कष्ट नहीं किया। इस प्रकार वास्तविक प्रभुत्व छोटे छोटे कर्मचारियों के हाथों में चला गया। संक्षेप में कहें तो, बौद्धिक शिक्षा का राष्ट्र के भाग्य पर बड़ा असर पड़ता है। इतिहास की इस शिक्षा पर न तो संदेह किया जा सकता है न इसे अस्वीकार ही किया जा सकता है।

हमें समझना चाहिए कि इस वर्त्तमान विश्व युद्ध का चरम परिणाम सांस्कृतिक क्षेत्र में ही होगा। इसलिये इसे सांस्कृतिक युद्ध कहा जा सकता है। इसके द्वारा गत साढ़े तीन सौ वर्षों के बीच यूरोप तथा अमेरिका में जिस प्रकार की राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र और साम्यवाद का विकास हुआ है उनके भाग्य का निपटारा होगा। इस अवसर पर चीन की पाँच हजार वर्ष प्राचीन संस्कृति तथा नैतिक गुणों के वास्तविक मूल्य का भी पता लगेगा। संयुक्त राज्यों द्वारा अंतिम विजय प्राप्त करने के बाद सभ्यता एक नये उज्ज्वल युग में प्रवेश करेगी और चीनी संस्कृति और भी ऊँची उठेगी तथा सम्मानित होगी। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि विद्वत् समाज के लोग इसे अच्छी तरह समझ लें कि *हमारी संस्कृति अपने भव्य भूत और उज्ज्वल भविष्य के साथ अपने इतिहास के सब से अधिक संकट के सामने खड़ी है, जहाँ यह निर्णय होने जा रहा है कि वह कायम रहेगी या नष्ट हो जायगी।* माँचू शासन के अंतिम दिनों में सुधार का जो निष्फल प्रयत्न हुआ था उस

समय से सन् १६११ की क्रांति तक, सन् १६११ की क्रांति से ४ मई सन् १६१६ के आन्दोलन तक, ४ मई के आन्दोलन से राष्ट्रीय क्रांति तक इन सब कालों के बीच विभिन्न विचार धाराओं के फैलने के कारण हमारे बौद्धिक जीवन में क्रमिकरूप से परिवर्तन हुआ है। उदारवाद, राष्ट्रवाद, समाजवाद, अराजकवाद ये सभी विचार-धारायें जो दूसरे देशों में फैली हुई थीं, हमारे देश में भी कम या अधिक रूप में फैलीं। जाँच करने से पता चलेगा कि हमारे समाज में कितनी ही प्रगतिवादी विचार धारायें फैली हुई हैं, पर पूर्ण निष्ठा से तथा ईमानदारीपूर्वक सोचने तथा कार्य करने का अभी भी हमारे यहाँ अभाव है। जो बौद्धिक कामों में लगे हुए हैं उनमें अभी तक भी ईमानदारी से काम करने की भावना नहीं आई है। कुछ तो बिना अध्ययन के ही सोचने लगते हैं, वास्तविकता की ओर से आँखें बंद कर लेते हैं और खोखले वादविवादों में फँसे रहते हैं या अपनी इच्छानुसार सिद्धान्त रचते रहते हैं। इन सबों के फलस्वरूप बहुत से राजनीतिक दल बन गए हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो बिना सोचे ही अध्ययन में जुटे हुए हैं, यहाँ-वहाँ की नकल करते हैं तथा स्वयं निर्णय करने की शक्ति के अभाव में दूसरों के मतों को दुहराते फिरते हैं। चीन के प्रतीचीकरण के पक्षपाती जो कुछ विदेशी हैं उनके अंधानुकरण करने की गलती करते हैं। चीन के परम्परागत विचारों के पक्षपाती यह गलती करते हैं कि वे आत्म-गौरव में डूबे रहते हैं तथा बाहरी संसार में जो कुछ हो रहा है उससे अपने को अलग रखते हैं। शिक्षित-वर्ग के नेता बिना किसी उत्तरदायित्व के अनुचित विचार प्रकट करते हैं या लोकप्रिय ख्याति प्राप्ति के लिए जनसाधारण की राह का अनुसरण करते हैं। वे व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति को प्रथम स्थान देते हैं और उसे ही "स्वतंत्रता" कहते हैं। वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि पर ही अधिक ध्यान देते हैं तथा अपने को "प्रजातंत्रवादी" कहते हैं। वे राज के कानून का पालन करना अपने लिये लज्जा की बात समझते हैं और सरकारी आज्ञाओं का विरोध करने में गर्व अनुभव करते हैं। वे युवकों की कमजोरियों से फायदा उठाते हैं और "युवकों के शिक्षक" बनने का ढोंग रचते हैं। वे गंदे प्रचार में लगे रहते हैं पर अपने को "ऊँचे दर्जे का पंडित" मानते हैं। अगर इस तरह की बातों की अति हो गई तो इनसे देश में भयंकर उत्पात मचेगा और हमारे राष्ट्र का पतन होगा। ऐसी परिस्थिति में बहुत कम लोग हैं जो "राष्ट्र के

उत्थान या पतन को अपना निजी उत्तरदायित्व समझते हैं।" जो अध्ययन तथा शिक्षण कार्य में लगे हुए हैं उनकी तो यही चाल है। ऐसी हालत में सामाजिक और राजनीतिक दशा के सुधार होने की आशा रखना उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे "मछली पकड़ने के लिये वृक्ष पर चढ़ना"। अब से हमारे विद्वानों तथा विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को राष्ट्रीय क्रांति में भाग लेने वाले की हैसियत से अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर तो मैं इससे पहले के अध्याय के मानसिक पुनर्निर्माण शीर्षक में दे चुका हूँ। मैं उनसे जो आशा रखता हूँ वह एकमात्र यह है कि वे अपने अध्ययन को दैनिक जीवन के लिये कार्य-कारी बनाने का प्रयत्न करेंगे और संस्कृति के घेरे में जितनी भी चीजें आती हैं उन्हें राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की आवश्यकताओं की दृष्टि से करेंगे। उन्हें राष्ट्रपिता के "करना सरल है" के सिद्धान्त के अर्थ को अच्छी तरह समझना चहिए और उन्हें ईमानदारी से कार्य करने के महत्त्व को क्रांति के सिद्धान्त की तरह समझना चाहिए। बौद्धिक तथा नैतिक शिक्षा पर समान रीति से जोर देना चाहिये। नागरिक और सैनिक कामों के बीच सामंजस्य लाना चाहिए। समझने और कार्य करने की एकता के साथ आदमी को अपना दिमाग तथा हाथ दोनों ही लगाना चाहिए। इस तरीके से ही हमारे इस वर्तमान सामाजिक और बौद्धिक जीवन में बुनियादी सुधार हो सकता है और गंदगी, ढोंग, छिछोरापन तथा डींग मारना आदि सभी पिछले दुर्गुणों का नाश हो सकता है। एकमात्र तभी हमारे लोगों में परम्परागत गुणों तथा प्रतिभा का पुनः संचार होगा, हमारे राष्ट्र की प्रतिष्ठा पहले की तरह ही पुनः होगी और हमारे देश की नींव अधिक ठोस और मजबूत होगी।

राष्ट्रपिता ने कहा—"एक मकान भी एक दिन में नहीं बन सकता, फिर राष्ट्र की तो बात ही क्या! राष्ट्र निर्माण के लिये बहुत ही उच्च कोटि की दृढ़ प्रतिज्ञता और अटलता की अपेक्षा होती है।" इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञता और अटलता तो ईमानदारी से कार्य करने के बौद्धिक वातावरण में तथा सादगी और ईमानदारीपूर्ण सामाजिक जीवन में ही हो सकती है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य में सरकारी अफसर तो इंजिनियर की तरह हैं और अध्यापकों को अपनी योग्यता भर कार्यकर्त्ताओं को शिक्षित करना चाहिए ताकि वे पुनर्निर्माण कार्य करने के योग्य बन सकें। इसलिये हमारे सामाजिक

तथा राजनीतिक जीवन को अधिक से अधिक अच्छा बनाने की जिम्मेवारी का अधिक भाग औरों की अपेक्षा हमारे अफसरों और अध्यापकों को उठाना चाहिए। अब से अगर प्रत्येक सरकारी अफसर तथा अध्यापक अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो और जिम्मेवारी उठाने का दृढ़ संकल्प कर ले तथा वे एक समाज सुधारक की तरह कार्य में हाथ बटाएँ तो दृढ़ प्रतिज्ञता और अटलता की भावना लोगों में पैदा हो सकती है और फिर हमारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य भी पूरा हो सकता है। राष्ट्रपिता ने कहा है "सफलता से हमारा अभिप्राय किसी व्यक्ति या दल विशेष की सफलता से नहीं है बल्कि चीन के प्रजासत्तात्मक राज की स्वाधीनता और सबलता से है, जिनके साथ राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्मान की भावना जुड़ी है।" सम्पूर्ण देश के शिक्षाविदों को चाहिए कि वे अपने देश को बचाने तथा उसे शक्तिशाली बनाने के लिये राष्ट्रहित की प्रगति को अपने कार्यों का लक्ष्य बनाएँ तथा एक नई राष्ट्रीय चेतना पैदा करने पर सबसे पहले ध्यान दें। हमारे संपूर्ण देश के अध्यापकों को इसी दिशा में प्रयत्न करना चाहिए तभी वे हमारे राजनीतिक जीवन के पुनर्गठन तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की स्थायी और ठोस नींव डालने में जनता का नेतृत्व कर सकेंगे।

३

स्वतंत्रता और कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की ठोस धारणाओं के विकास की समस्यायें

अपने सामाजिक जीवन के सुधार में हमें अपने लोगों के कानून तथा स्वतंत्रता संबंधी धारणाओं में मौलिक परिवर्तन लाना चाहिए।

मनुष्य स्वभावतः समाजप्रिय प्राणी है। व्यक्ति समाज से पृथक नहीं रह सकता। इसलिये मानव इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही व्यक्ति समाज बनाकर ही रहा है, प्रगति की है और अपना अस्तित्व बनाए हुए है और एक दिन के लिये भी वह अपने को समाज से पूर्ण रूप से पृथक नहीं रख सका है और न वह एक दम अकेला रह ही सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति समाज का अंग है और समाज की प्रगति पर ही व्यक्ति की प्रगति निर्भर है। मानव-समाज में स्वाभाविक रूप से नियम और व्यवस्था हैं जिन्हें

हर व्यक्ति की एक दूसरे से या समूह के साथ संबंध बनाए रखने के लिये समान रूप से पालन करना होता है ताकि सामाजिक जीवन बना रहे और उसका विकास हो। ऐसे नियम और व्यवस्था में नैतिक आदर्श और कानून दोनों ही आते हैं। सामाजिक संगठन का प्रसार परिवार से कुल तक और कुल से राष्ट्र तक होता है। जो समाज जितना ही बड़ा होता है उसके नैतिक आदर्श तथा कानून उतने ही पेचीदे होते हैं। जनमत के कारण ही नैतिक आदर्शों का लोग पालन करते हैं और सरकार—जो जनता के कामों की देख-रेख करती है - जनता से सम्मति प्राप्त कानून को लागू करने का साधन है।

चीन के राजनीतिक दर्शन में नैतिकता और कानून के बीच से संबंध पर बहुत अध्ययन और विश्लेषण हुआ है। चीन के राजनीतिक दार्शनिकों ने नैतिक आदर्शों और कानून दोनों के साथ साथ पालन करने की बात कही है। पर उन्होंने साफ साफ बताया है कि नैतिक आदर्श कानून की अपेक्षा अधिक बुनियादी हैं। चिआ इ ने कहा है—"औचित्य कार्य करने से पूर्व ही संयम का पाठ पढ़ाती है कर कानून कार्य हो चुकने के बाद उपचार का काम करता है।" तुङ् चुङ्-शु ने कहा है—"नैतिक प्रभाव का स्थान दंड से पूर्व ही है।" दोनों ने कानून की अपेक्षा नैतिकता को प्रथम स्थान दिया है पर कानून की उपेक्षा कर एकमात्र नैतिकता पर ही जोर नहीं दिया है। राष्ट्रपिता द्वारा प्रतिपादित "जनता के तीन सिद्धान्त" में इसी बात का और भी अधिक पाण्डित्यपूर्ण विवेचन है। वास्तव में "जनता के तीन सिद्धान्त" की जड़ तो हमारे राष्ट्र के परम्परागत नैतिक दर्शन में है। सीधे शब्दों में कहें तो क्रांति का बुनियादी सिद्धान्त "उपयोगितावाद" है तथा "दया और प्रेम" संसार की मुक्ति की कुंजी है। "आकाश के नीचे सब कुछ लोक हित के लिये है" यही सबसे महान् सिद्धान्त है जिसमें "उपयोगितावाद" तथा "दया और प्रेम" दोनों ही सन्निहित हैं। पर यह महान सिद्धान्त "जनता के तीन सिद्धान्त" में सन्निहित है और सामाजिक पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय क्रांति का सबसे ऊँचा आदर्श है। पर "जनता के तीन सिद्धान्त" को कार्यान्वित करने के लिये हमें कानून के अनुसार व्यवस्थित होकर चलना पड़ेगा। इस प्रकार सैनिक शासन काल में सैनिक कानून लागू करना आवश्यक है; राजनीतिक संरक्षण काल में अस्थायी विधान को लागू करना आवश्यक है और जब

वैधानिक शासन काल आएगा तो विधान को लागू करना आवश्यक होगा। *इसलिए "जनता के तीन सिद्धान्त" के अनुसार राजनीतिक पद्धति का आधार नैतिकता है और वह कानून द्वारा लागू की जाती है।*

हमारे चीन के राजनीतिक दर्शन में लोगों द्वारा शासन-व्यवस्था करने और कानून द्वारा शासन-व्यवस्था करने के बीच के संबंध का ब्यौरेवार विश्लेषण हुआ है। मेनसियस ने कहा है—"राज में कानून होना चाहिए जिस पर वह स्थिर रह सके" और "कानून विशेषज्ञ तथा योग्य सलाहकार भी होने चाहिए जिन पर विश्वास किया जा सके।" उन्होंने यह भी कहा है—"कानून स्वतः नहीं लागू होता है।" इस कथन का अर्थ है कि राज की शासन व्यवस्था बिना कानून के नहीं हो सकती पर कानून लागू करना आदमियों के हाथों में है। वाङ् चिङ् कुङ् ने भी यही कहा है—'कानून नियम व्यवस्था की बात बताता है पर नियम-व्यवस्था को लागू करना आदमियों के हाथ है।" यही बात चाङ् चिआङ् लिङ् ने कही है—"कानून द्वारा शासन-व्यवस्था करना आदमियों के हाथों में निर्भर है।" हमारी राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य है कि चीन कानून द्वारा शासित राज हो। पर कानून द्वारा शासन-व्यवस्था का चरम स्रोत जनता की इच्छा शक्ति में है। इसलिये राष्ट्रपिता ने कहा है—"लोग अक्सर कहते हैं कि चीन के चालीस करोड़ लोग बिखरे बालू के ढेर की तरह हैं। इस चालीस करोड़ बिखरे बालू को कानून द्वारा शासित प्रमुख तथा सुसंगठित राज बनाने का उपाय कहां है? इसका उत्तर यह है कि हमें अपने दिल को साफ करने तथा अपने अभिप्राय को सुधारने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। एकमात्र इसी रीति से हम अपना चरित्र निर्माण करने में, अपने परिवार को नियमित करने में, देश की शासन-व्यवस्था ठीक तरह से चलाने में और संसार में शांति तथा एकता स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।" उन्होंने फिर कहा है—"जनता की संगठित इच्छा शक्ति से ही राज का निर्माण होता है। राज की शासन-व्यवस्था का अधिकार तथा जो उस अधिकार को ग्रहण करते हैं दोनों को जनता की संगठित इच्छा शक्ति पर अपने मार्ग प्रदर्शन तथा समर्थन के लिये निर्भर रहना चाहिए।" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय क्रांति का उद्देश्य जनता की संगठित इच्छा शक्ति द्वारा कानून से शासित राज की स्थापना करना है और *उसी इच्छा शक्ति के सहारे कानून कड़ाई से लागू किया जा सकता है।*

हमारे चीन के राजनीतिक दर्शन में भावना, तर्क और कानून के पारस्परिक संबंध पर विशेषरूप से विचार किया गया है। चीन के राजनीतिक दर्शन में यह बात मानी गई है कि न्याय के लिये भावना और तर्क को कानून का अनुसरण करना चाहिए। इसलिये चु को लिआड् ने कहा है—"कानून लागू हो जाने के बाद ही जनता दया के महत्त्व को समझ सकती है।" उन्होंने यह भी कहा है—*"मेरा मन तराजू की तरह है जो विभिन्न व्यक्तियों के तौलने में भारी या हलका नहीं हो सकता।"*—(यानी हमें व्यक्ति विशेष पर आस्था नहीं है)। दूसरी तरफ चीन का राजनीतिक दर्शन इस बात पर भी जोर देता है कि कानून को व्यावहारिक बनाने के लिये उसका आधार भावना और तर्क पर होना चाहिए। इसलिये लु शिन् चु (लु खुन्) ने कहा—"कानून स्वाभाविक तर्क और मानवीय भावनाओं के आधार पर बनता है।" उन्होंने यह भी कहा है—"कानून ही वह रूप है जिसके भीतर तर्क लागू किया जाता है।" हमारे "जनता के तीन सिद्धान्त" में केवल भावना, तर्क और कानून ही सन्निहित नहीं हैं बल्कि उनमें तीनों पर बराबर जोर दिया गया है। मैंने "जनता के तीन सिद्धान्त की पद्धति और कार्यक्रम" शीर्षक अपने निबंध में कहा है—"हम मानव मात्र जिस कारण से पशुओं से भिन्न हैं तथा निरन्तर प्रगति और सुधार की योग्यता में उनसे बढ़े हैं वह यह है कि हमारे पास भावना तर्क और कानून हैं। मानव मात्र का अस्तित्व बनाए रखने तथा उसकी प्रगति के लिये भावना, तर्क और कानून की नितान्त आवश्यकता है। इन तीनों में एक को भी नहीं छोड़ा जा सकता है। जब हम किसी विषय की चर्चा करते हैं तो उसकी सफलता का यही अर्थ होता है कि वह हमारी भावना, तर्क और कानून के अनुकूल पड़ती है। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की दृष्टि से सभी मानवीय भावनाओं में राष्ट्रीयता की भावना सबसे प्रधान है क्योंकि राष्ट्र प्राकृतिक शक्तियों के जोर से ही बनता है। हमें अपने राष्ट्र की एकता के लिये प्रकृति प्रदत्त इस भावना पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। जनता के अधिकार के सिद्धान्त (प्रजातंत्र का सिद्धान्त) की दृष्टि से जनता द्वारा संगठित सरकार ही सबसे अच्छा राजनीतिक संस्थान है क्योंकि इस पद्धति में जनता ही सार्वभौमिक अधिकार को काम में लाती है। अपने नागरिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को निर्धारित करने में हमें नियमबद्ध कानून और अनुशासन की भावना को अपनी कसौटी माननी चाहिए। जनता की

जीविका के सिद्धान्त की दृष्टि से मानवीय भरण-पोषण का सबसे तर्क संगत संस्थान वह है जिसमें उत्पीड़न और शोषण रहित आर्थिक समानता है, जिसमें सभी के स्वार्थ सन्तुलित हैं ताकि इस निम्न कथन में उल्लिखित उद्देश्य की प्राप्ति हो कि "जहाँ समान वितरण है गरीबी नहीं रह सकती, जहाँ एकता है वहाँ संघर्ष नहीं हो सकता और जहाँ संतोष है वहाँ अस्थिरता नहीं रह सकती।" इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये केवल भावना या कानून पर ही निर्भर रहना यथेष्ठ नहीं है बल्कि इसके लिये तर्क से प्रेरणा ग्रहण करना चाहिए जिसके द्वारा मनुष्य सही या गलत; लाभदायक या अहितकर के भेद को जानता है। इसी कारण से मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीयता का सिद्धान्त मानवीय भावना से पैदा होता है, जनता के अधिकार का सिद्धान्त कानून पर आधारित है और जनता की जीविका का सिद्धान्त तर्क पर स्थापित है। राष्ट्रीयता की भावना को जगा कर ही हम राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं, कानून लागू कर ही हम जनता के अधिकार को कार्यान्वित करने की नींव डालना चाहते हैं तथा व्यक्तिगत और सामाजिक अर्थ-व्यवस्था को सन्तुलित रखने के लिये न्यायसंगत और समरूप उपायों द्वारा हम जनता की जीविका की समस्याओं को हल करना चाहते हैं। इस प्रकार भावना, तर्क और कानून का अपना अपना विशिष्ट क्षेत्र है और यही कारण है कि दूसरे सिद्धांतों की अपेक्षा 'जनता के तीन सिद्धान्त' अधिक पूर्ण और व्यापक, अधिक महान् और टिकाऊ तथा अधिक व्यावहारिक हैं।" उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि *'जनता के तीन सिद्धान्त' में भावना, तर्क और कानून पर समान जोर दिया गया है और उसमें हरेक का अपना अपना विशिष्ट क्षेत्र है।* संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुछ विद्वानों की यह धारणा नितान्त गलत है कि चीन का राजनीतिक दर्शन कानून द्वारा शासन-व्यवस्था के विपरीत सत्यनिष्ठता पर अधिक जोर देते हुए आदमियों द्वारा शासन-व्यवस्था करने की बात का समर्थन करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि जनता के तीन सिद्धान्त में कानून द्वारा शासन-व्यवस्था संबंधी विचार को प्रमुख स्थान प्राप्त है और उसे महत्त्वपूर्ण कार्य करना है।

असम संधियाँ होने के बाद से चीन के बुद्धिजीवी वर्ग तथा पंडित लोग आत्म विश्वास खो बैठे और उनमें विदेशी विचारों को ठीक मानने तथा उनका अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति आ गई। ऐसे लोग भी थे

जिन्होंने चीनी क्रांति के लिये अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में यूरोप में प्रचलित सिद्धान्तों को अपनाया। रूसो (Rousseau) के "मानव का प्राकृतिक अधिकार" के सिद्धान्त को पढ़कर वे झट इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चीन की क्रांति तथा अठारहवीं और उन्नीसवी शती में यूरोप में हुई क्रांतियाँ दोनों ही "स्वतन्त्रता" के लिये लड़ी जाने वाली क्रांति के अंग हैं। वे लोग यह नहीं समझ सके कि रूसो का सिद्धान्त ऐतिहासिक तथ्यों से असंगति रखता है। राष्ट्रपिता ने बताया है—"हम जब ऐतिहासिक विकास का तर्कपूर्ण अध्ययन करते हैं तो हमें पता चलता है कि आदमी के अधिकार स्वर्ग से नहीं आए बल्कि समय की गति और घटनाचक्र के कारण उत्पन्न हुए हैं। हम मानव जाति के विकास में रूसो के सिद्धान्त के समर्थन में एक भी तथ्य नहीं पाते।" रूसो का दर्शन ऐतिहासिक बुनियाद के अभाव में भी अठारहवीं और उन्नीसवी शती में हुए यूरोप के स्वतंत्रता संघर्ष का मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त क्यों कर हुआ इसका कारण यह था कि "यूरोप में निरंकुशवाद चरम सीमा तक पहुँच चुका था और यूरोप की बहुत दिनों से सताई गई जनता ने "स्वतंत्रता" नहीं होने के दुःख का तीव्र अनुभव किया। इसलिये दुःख से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय 'स्वतंत्रता' के लिये संग्राम करना था। अतः जब किसी ने 'स्वतंत्रता' की बात उठाई कि सबों ने उत्साह के साथ उसका समर्थन किया।" पर हमारे चीन में विभिन्न राजवंशों की सरकार ने बराबर जनता के प्रति सहिष्णुता का रुख रखा था और लोगों का कर देने के अलावा सरकारी अफसरों से कुछ भी संबंध नहीं रहता था। *"चीनी जनता बिना संघर्ष किए ही बहुत दिनों से बहुत मात्रा में स्वतंत्रता का उपभोग करती रही है।"* इसलिये राष्ट्रपिता ने *कहा है कि चीन की क्रांति का उद्देश्य यूरोप की क्रांति से सर्वथा विपरीत है। चूंकि यूरोप में एकदम "स्वतंत्रता" नहीं थी इसलिये वहाँ के लोगों ने "स्वतंत्रता" प्राप्ति के लिये संघर्ष किया। पर हम लोगों को बिना संगठन और विरोध करने की शक्ति के बहुत अधिक मात्रा में स्वतंत्रता प्राप्त है और हम बिखरे बालू के ढेर की तरह हो गए हैं इसलिये हमें विदेशी साम्राज्यवादियों के आक्रमण का शिकार होना पड़ता है।.........विदेशी अत्याचार का विरोध करने के लिये हमें 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के विचार को त्याग देना चाहिए और जिस तरह बालू सिमेंट से मिल कर ठोस बन जाता है उसी प्रकार हमें*

संगठित होकर सबल और सशक्त हो जाना चाहिए।" दूसरे शब्दों में कहें तो अगर हमें चुङ् हा राष्ट्र को राष्ट्रीय सुरक्षा की मजबूत इकाई के रूप में दृढ़ करना है *तो हमारे लोगों को निश्चय ही अत्यधिक मात्रा में बालू सदृश "स्वतंत्रता" का उपभोग नहीं करना होगा।* और भी स्पष्ट कहें तो अगर हमें इस प्रतिरोध युद्ध में अंतिम विजय प्राप्त करना है और युद्धोत्तर काल में संसार के दूसरे स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ मिलकर विश्व की स्थायी शांति की रक्षा करना तथा मानव मात्र की मुक्ति के लिये प्रयत्न करना है तो हमें स्वयं अपनी सबल राष्ट्रीय सुरक्षा की इकाई का निर्माण करना चाहिए। इसलिये राज और व्यक्ति के बीच के संबंध की दृष्टि से इस युद्ध काल में तथा युद्ध समाप्ति के बाद भी अत्यधिक "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" को प्रोत्साहन नहीं दिया जायगा क्योंकि इससे व्यक्ति बिखरे बालू के ढेर की तरह हो जाता है।

व्यक्तियों के परस्पर संबंध की दृष्टि से स्वतंत्रता और कानून द्वारा शासन-व्यवस्था दोनों ही अविभाज्य हैं। चीन का राज तो चीन की ४५ करोड़ जनता के संगठित प्रयत्न से बना है। अगर हम ४५ करोड़ लोगों में हरेक को 'स्वतंत्रता' का उपभोग करने दें तो हमें हर व्यक्ति की 'स्वतंत्रता' को सीमित करना होगा ताकि हर व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का उपभोग करते हुए दूसरे की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप न करे। इस तरह की 'स्वतंत्रता' ही वास्तविक स्वतंत्रता कही जा सकती है। अपने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण काल में हमें सभी कार्यकारी उपायों द्वारा 'स्वतंत्रता' की इस ठोस भावना को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि हमारे देश का हर नागरिक वास्तव में 'स्वतंत्रता' का उपभोग कर सके। कानून की सीमा के अंदर ही स्वतंत्रता रह सकती है। सीमा के बाहर जाने से ही जीवन उच्छृङ्खल और अव्यवस्थित हो जाता है; जिसमें अनिवार्य रूप से सबल दुर्बलों के अधिकार पर हस्तक्षेप करते हैं और बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों को दबाते हैं। जब हरेक व्यक्ति ठीक ठीक कानून के अनुसार चलता है तभी सबों को 'स्वतंत्रता' रहती है और जब सबों को स्वतंत्रता रहती है तभी हम कह सकते हैं कि राज की शासन-व्यवस्था कानून द्वारा होती है। इसलिये कानून द्वारा शासित राज में उच्छृङ्खल और अनियमित जीवन, सबल का दुर्बलों के अधिकार पर हस्तक्षेप तथा बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों का दमन पूर्ण रूप से प्रतिषिद्ध रहता है। अतः यह युक्तिसंगत नहीं है कि जो स्वयं कानून का

उल्लंघन करते हों वे राज से कानून द्वारा रक्षा पाने की याचना करें और जो स्वयं कानून का पालन न करते हों वे राज की इसलिये आलोचना करें कि राज कानून द्वारा शासन व्यवस्था नहीं करता है। ऐसी हालत में ही जनता के कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की धारणा में भ्रम पैदा होता है और कानून उल्लंघन करने की उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है। जब तक यह बुराई दूर नहीं होती कानून द्वारा शासित राज की स्थापना का कार्य सफलता पूर्वक नहीं हो सकता।

संसार के लोगों में सब से असंगठित तथा अनुशासन हीन लोग जिप्सी (Gypsies) हैं। हम सभी जानते हैं कि जिप्सी लोगों की स्वतंत्रता उनका खानाबदोश और घुमक्कड़ जीवन है। जिस प्रकार उनमें कानून की कोई धारणा या राष्ट्रीयता की भावना एकदम नहीं है उसी तरह वे नहीं जानते कि किस प्रकार संगठित होकर वे बाहर वालों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। इसलिये वे संसार के सब से नीच और पिछड़े लोग हैं और जहाँ कहीं भी जाते हैं लोग उनसे घृणा करते तथा उनकी अवहेलना करते हैं। अतः हम चीनी लोग एक तरफ तो जिप्सी सदृश स्वतंत्रता की मनोवृत्ति रखें और दूसरी ओर आधुनिकता तथा कानून द्वारा शासन व्यवस्था की ऊँची-ऊँची बातें करें ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते। हमें यह समझना चाहिए कि हमें पूर्वजों से अपना राज विरासत में मिला है और राष्ट्र ही बेटे—पोतों (भावी संतान का) का आधार है। प्रतिरोध युद्ध में भाग लेना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एक महान् कार्य है। हमें एक क्षण के लिये भी अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलना चाहिए और न बालोचित तथा गैरजिम्मेवार काम ही करना चाहिए। *इसके विपरीत हमें कानून को सचाई के साथ मानना चाहिए और उसे अपनी इच्छा से ही पूरा-पूरा कार्यान्वित करना चाहिए।* हम अपने को जिप्सी की श्रेणी में तो नहीं रख सकते।

गत सौ वर्षों से चीन में कानून द्वारा शासन-व्यवस्था के प्रति जो उदासीनता और कानून को बराबर उपेक्षा की दृष्टि से देखने की जो मनोवृत्ति पैदा हो गई है उनका प्रधान कारण है चीन में विदेशी रियायती क्षेत्रों, सैनिक निवास क्षेत्रों का कायम होना और सामंतशाही प्रवृत्ति वाले युद्धअधिनायकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों पर अधिकार जमा लेना। विदेशी रियायती क्षेत्रों और सैनिक निवास क्षेत्रों पर तो चीनी कानून लागू नहीं हो

सकता था अतः ये स्थान उनके लिये आश्रय स्थल हो गए थे जो उच्छृङ्खल जीवन विताते थे, अपने कथन या कार्य द्वारा खुले आम कानून का उल्लंघन करते थे तथा राज के अधिकार की अवज्ञा करते थे। जैसे-जैसे समय वीतता गया इस दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था के कारण जनसाधारण में ऐसी आदत पड़ी कि एक तरफ़ तो वे गैरजिम्मेवार होते गए और दूसरी ओर वे कानून का उल्लंघन करने लगे। ये कानून उल्लंघन करने वाले अभी भी अपनी गलती स्वीकार नहीं करते वल्कि इस पर जोर देते हैं कि वे ठीक ही कर रहे हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों पर युद्ध अधिनायकों का जो प्रभुत्व जम गया था वह तो और भी हानिकारक था। इसके कारण कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की भावना तथा लोगों के कानून पालन करने की आदत लुप्त हो गई। युद्धअधिनायक औरराजनीतिज्ञ एक को दूसरे से भिड़ा देने का जुआ खेलते थे और बराबर एक मालिक को छोड़ दूसरे मालिक के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते थे। उन्हें कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की कुछ भी जानकारी नहीं थी बल्कि उल्टे वे कानून उल्लंघन करने और सार्वजनिक शांति भंग करने में गर्व अनुभव करते थे। ऐसी परिस्थिति में कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की ठोस धारणा कैसे जम सकती है? कानून पालन करने की आदत कैसे वन सकती है?

अब असम संधियाँ रद्द हो गई हैं, विदेशी रियायती क्षेत्र और सैनिक निवास क्षेत्र का अस्तित्व नहीं रहा है तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों पर स्थापित युद्ध अधिनायकों का प्रभुत्व भी मिटा दिया गया है। इसलिये हमारे लोगों को पिछली बातों के लिये पूर्ण रूप से पश्चाताप करना चाहिए और उन्हें आपस में एक दूसरे को इसके लिये उत्साहित करना चाहिये कि कानून का पालन करना एक सद्गुण है और जिम्मेवारी उठाना प्रतिष्ठा की बात है। हमें राज की भलाई की उपेक्षा कर व्यक्तिगत लाभ उठाने तथा दूसरों की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप कर अपनी 'स्वतंत्रता' का दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिये। 'स्वतंत्रता' की खोज में हमें पहले 'स्वतंत्रता' के वास्तविक अर्थ को समझ लेना चाहिए और कानून द्वारा शासन-व्यवस्था कायम करने के लिये पहले हमें कानून पालन का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। कानून के आधार पर अपने राज को स्थापित करने के कार्य की पूर्ति के लिये तथा चीन को मजबूत राष्ट्रीय सुरक्षा की इकाई बनाने के लिये पहले हमारे पैंतालीस करोड़ में से हरेक को 'स्वतंत्रता' तथा कानून द्वारा शासन-व्यवस्था की उपरोक्त भावना को बढ़ाना चाहिए। तभी हम दूसरे स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्रों के साथ मिलकर विश्व-शांति की रक्षा और मानव मात्र की मुक्ति के उत्तरदायित्व को निभा सकेंगे।

सातवाँ अध्याय

चीन की क्रांति और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की प्राणशक्ति

तथा

उसके भाग्य के निर्णायक तथ्य

अब तक जो कुछ कहा गया है उससे हम जानते हैं कि हमारे सामाजिक जीवन में परिवर्तन होने से ही हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण को सफलता मिलेगी और सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाना उन लोगों पर निर्भर करता है जिनमें दूरदर्शिता, दृढ़ इच्छाशक्ति, नैतिक विश्वास और जिम्मेवारी निभाने की भावना है और जो अपनी बुद्धि तथा प्रयत्न से नगर, जिला, प्रांत या संपूर्ण देश की जनता को एक नये पथ पर तब तक ले जाते है जब तक वह (जनता) उस पथ से पूर्ण परिचित न हो जाय। जैसा कि मैंने पहले ही बताया है कि हमारा राष्ट्रीय और सामाजिक पुनर्निर्माण आसानी से पूरा हो सकता है अगर संपूर्ण राष्ट्र के युवक इस बात के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हों कि दूसरे लोग जिस काम को करने का साहस नहीं कर सकते उसे वे करेंगे, दूसरे लोग जिन क्लेशों को नहीं सह सकते उन्हें वे सहेंगे तथा राष्ट्रीय और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एवं जनता के जीवन को सुखमय बनाने के लिये वे खतरे और कठिनाइयों को झेलते हुए भी सीमा प्रान्तों तथा देश के भीतरी भागों में जाकर लोगों का मार्ग प्रदर्शन करेंगे। यहां मैं इस बात की चर्चा जरा विस्तार से करना चाहता हूँ। सामाजिक जीवन में सुधार करना तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को कार्यान्वित करना राष्ट्रीय पुनर्जागरण की प्रक्रिया के सबसे मुख्य कार्य हैं और इनके लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता है। अगर लोग व्यक्तिगत रूप से प्रयत्न करने लगें तो उसका परिणाम न तो बड़ा होगा और न स्थायी ही। इसलिये नगर, जिला, प्रान्त या संपूर्ण देश भर के बालिग नागरिकों तथा उत्साही युवकों का एक समान संगठन होना चाहिए, जिसके पास सब सदस्यों को एक सूत्र में संगठित करने की सुव्यवस्थित योजना हो तथा एक प्रधान कार्यालय हो जो सदस्यों के पुनर्निर्माण के सम्मिलित कार्यों तथा व्यक्तिगत

सफलता को आगे बढ़ाए। इस प्रकार के केन्द्रीय संगठन के अधीन कार्य कर हर व्यक्ति राष्ट्रपिता की इस शिक्षा का पालन कर सकता है कि "इस क्षणभंगुर जीवन के कुछ बीसियों को अपने राष्ट्र का स्थायी शिलान्यास करने के लिये बलिदान कर देना चाहिए।"

अतीत में ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमारे चीन के बालिग नागरिक बहुत मात्रा में या लम्बे काल तक संगठित रह सके हों। उनकी तुलना "बिखरे बालू के ढेर" से कर या उन्हें "केवल पाँच मिनट का जोश" रखने वाला कह उनकी खिल्ली उड़ाई गई है। संगठित न हो सकने की असमर्थता का कारण स्वार्थ है और स्वार्थ को मिटाने की सबसे अच्छी दवा है "लोक हित" की भावना। ढोंग के कारण ही एकता स्थायी नहीं होती है और ढोंग मिटाने का सबसे अच्छा तरीका है "निष्ठा"। सार्वजनिक सेवा की भावना होने से आदमी "सब मनुष्यों को अपना संबंधी समझता है और सब वस्तुओं से अपनी एकता स्थापित करता है।" निष्ठा होने से आदमी अध्यवसायी होता है और अन्त में उसे सफलता मिलती है। एक मात्र "जनता के तीन सिद्धान्त" ही ऐसा सिद्धान्त है जिसका आधार लोक हित और पूर्ण निष्ठा पर है। अतः क्वोमिनताङ् का आदर्श बहुत व्यापक है और वह सर्वोत्तम कार्यों के करने में दृढ़ रहती है। इन बातों की चर्चा मैंने क्वोमिनताङ् के पुनः संगठन संबंधी विवरण में साफ-साफ की है।

आज जो हमारे नवयुवकों में तरह तरह की बुराइयाँ घुस गई हैं, उनका "जीवन बेकार जा रहा है" और उन्हें "किसी काम में सफलता नहीं मिलती है"। इसका बुनियादी कारण यह है कि उन्हें बड़ी खोखली शिक्षा मिली है। चूंकि वे अपने अध्यापकों के बताए मार्ग पर नहीं चलते हैं, अपने जीवन की सफलता या असफलता के लिये "संगठन" के महत्व को नहीं समझते हैं और वे यह भी नहीं जानते कि "स्वतंत्रता" और "अनुशासन" का क्या अर्थ है इसलिये वे अपने व्यवहार में गैर जिम्मेवार होते हैं तथा उनका सोचना अव्यावहारिक होता है। समाज में जब वे प्रवेश करते हैं तो अपने में किसी व्यावहारिक कार्य करने की क्षमता तथा विश्वास का अभाव पाते हैं फिर सामाजिक और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य की बात तो दूर रह जाती है। वे कठिनाई तथा उत्तरदायित्व उठाने की क्षमता प्राप्त कर सकें तथा सामाजिक और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण कार्य के योग्य बन सकें इसके लिये आवश्यक है कि वे अपने विचारों का विकास वैज्ञानिक ढंग से करें

और अपने आचरण को कड़े अनुशासन में रखें। इसीलिये प्रतिरोध युद्ध प्रारम्भ होने के तुरत ही बाद मैंने "सान् मिन् चु इ युवक संघ" का संगठन किया ताकि संपूर्ण देश के युवक-युवतियों की आवश्यक मांगों की पूर्ति हो, क्वोमिनताङ् को नवजीवन प्राप्त हो और चुङ्हा राष्ट्र में एक नई गतिशील शक्ति पैदा हो।

संपूर्ण देश की जनता का क्वोमिनताङ् के साथ के संबंध के विषय में राष्ट्रपिता ने कहा है—"हर चीनी नागरिक का क्वोमिनताङ् का सदस्य होना केवल अधिकार ही नहीं है बल्कि उसका कर्तव्य भी है।" ठीक यही बात चीन के सब नवयुवकों पर "सान् मिन् चु इ युवक संघ" के संबंध में भी लागू होती है। हमें जानना चाहिए कि क्रांति और पुनर्निर्माण का कार्य इतना विराट है कि सम्पूर्ण देश को इसमें योग देना चाहिए। क्वोमिननाङ् और "सान् मिन् चु इ युवक संघ" दोनों ही इस कार्य के संचालन के केन्द्र हैं। हर बालिग को क्वोमिनताङ् का और हर युवक को "सान् मिन् चु इ युवक संघ" का सदस्य बन जाना चाहिए। एकमात्र इसी रीति से हम जनता की भलाई कर सकते हैं और राष्ट्र के पूर्ण स्वार्थ की रक्षा कर सकते हैं और एक मात्र इसी रीति से राष्ट्र की स्थायी सुरक्षा की योजना बनाई जा सकती है। इसलिये हर चीनी नागरिक का यह अधिकार तथा कर्तव्य है कि वह अपनी अवस्था के अनुसार क्वोमिनताङ् तथा "सान् मिन् चु इ युवक संघ" का सदस्य बने। इसी तरह क्वोमिनताङ् तथा "सान् मिन् चु इ युवक संघ" को यह अधिकार है कि सभी उच्च अभिलाषा वाले, उत्साही तथा राष्ट्रीय भावना वाले चीन के वयस्कों तथा युवकों को वे सदस्य बनने कहें और उनका यह कर्त्तव्य भी है कि जो सदस्य बनना चाहते हैं उन्हें सदस्य बनाएँ। हमें यह ख्याल रखना चाहिये कि शताब्दियों से हमें जो अपने पूर्वजों द्वारा विरासत मिली है उसकी समृद्धि तथा उसे उपयोगी बनाने का भार क्वोमिनताङ् और "सान् मिन् चु इ युवक संघ" के ऊपर है तथा उन्हें ही राष्ट्रीय नींव डालने तथा उसे ठोस बनाने का कार्य करना है जिसे हमें अपनी आने वाली संतानों के लिये छोड़ जाना है। अतीत की अच्छी बातों को ठीक ठीक बचाए रखने के लिये तथा नव भविष्य का मार्ग दिखलाने के लिये क्वोमिनताङ् और "सान् मिन् चु इ युवक संघ" को यह अधिकार है कि वे जिम्मेवारी निभाने के लिये सभी नागरिकों का आह्वान करें और साथ साथ

उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सभी नागरिकों को क्रांति के समान कार्य में योग देने का अवसर दें।

राष्ट्रीय प्रतिष्टा और शक्ति की पुनः प्राप्ति की आवश्यकता को हमारे संपूर्ण देश के लोगों ने समझ लिया है पर राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की नीति तथा पद्धतियों पर अभी भी लोग एक मत नहीं हो सके हैं। असम संधियों के रद्द हो जाने से हमें प्रारम्भिक सफलता मिल गई है और जनता के तीन सिद्धान्तों तथा राष्ट्रीय क्रांति से जो प्राप्ति हुई है वह हमारी जनता के सामने है। अतः मुझे विश्वास है कि अब वह दिन आ गया है जब सभी देशभक्त और क्रांति के समर्थक गम्भीरतापूर्वक विचार कर 'जनता के तीन सिद्धान्त' पर श्रद्धा रखेंगे और क्वोमिनताङ् पर विश्वास रख उसके विश्वासी सदस्य बनेंगे। वर्त्तमान काल बड़ा ही नाजुक है पर साथ साथ बड़े ही मौके का है। स्पष्ट कहें, तो भूतकाल में चीन का भाग्य असम संधियों के रद्द होने या नहीं होने पर निर्भर था और यही मुख्य बात थी जिससे उसके भाग्य का निर्णय होता। अब चूँकि असम संधियां रद्द हो गई हैं इसलिये उसके सामने प्रश्न यह है कि चीन राजनीतिक दृष्टि से संगठित हो सकता है या नहीं और उसकी राष्ट्रीय शक्ति सुदृढ़ की जा सकती है या नहीं। *अतीत में चीन का भाग्य कूटनीति पर निर्भर था और वह विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ में था। भविष्य में चीन स्वयं अपने भाग्य का निपटारा करेगा और वह उसके अपने लोगों के हाथ में रहेगा।* अगर हम आपस में राजनीतिक दृष्टि से संगठित हो जाएँ और हमारी राष्ट्रीय शक्ति पूर्ण रूप से सुदृढ़ हो जाय और साथ-साथ अगर हमारे लोग सम्मिलित रूप से प्रयत्नशील हों तो चीन का भाग्य "हम लोगों के परस्पर में हार्दिक इच्छा से संगठित होने, कर्त्तव्य पूरा करने तथा कानून मानने" की सफलता पर निर्भर होगा। अगर हमारी जनता यह कर सकी तो चीन का भाग्य एक स्वाधीन और स्वतंत्र राष्ट्र के भाग्य की तरह होगा। अन्यथा अतीत की तरह "अविश्वास, पाखंड, अराजकता और अव्यवस्था" बनी रहेंगी जबकि विभिन्न क्षेत्रों पर सेना द्वारा प्रभुत्व जमाए हुए युद्ध अधिनायक हमारे संगठन तथा पुनर्निर्माण के प्रयत्न को विफल कर देते थे। तब चीन का भाग्य एक पतनशील और गुलाम राष्ट्र का भाग्य होगा। चीन केवल अर्द्धऔपनिवेशिक हालत में ही नहीं रह जायगा बल्कि चीनी जनता स्थायी रूप से गुलामी और दासता के बन्धन में बँध जायगी तथा

उसकी मुक्ति और पुनर्जागरण की आशा भी नहीं रहेगी। *चीन अपने भाग्य निर्णय की रेखा के किनारे खड़ा है। उसके भविष्य का निर्णय इस प्रतिरोध युद्ध के दौरान में ही होगा और वह भी अधिक से अधिक आज से दो वर्षों के भीतर ही।* चीन के पुनर्जागरण की नींव पिछले पचास वर्षों के जनता के क्रांतिकारी आन्दोलन तथा गत साढ़े पांच वर्षों के प्रतिरोध युद्ध के प्रयत्न से पड़ी हैं और यह नींव प्रतिक्रियावादी शक्तियों के जोर से नहीं हिल सकती। आज चीन उस अवस्था में है जिसका वर्णन चीनी दर्शन में "चरम विपद के बाद अनुकूल परिवर्तन" वाक्य से किया गया है। हम सभी जानते हैं कि नान् चिङ् संधि पर हस्ताक्षर हुए ठीक सौ वर्ष, चीन जापान युद्ध में हुई हमारी अपमानजनक हार को ठीक पचास वर्ष और सन् १९१३ (प्रजातंत्रात्मक संवत् २) को द्वितीय क्रांति की असफलता को ठीक एक पीढ़ी यानी तीस वर्ष हो रहे हैं। ये कथन कि "बीमारी के बाद अत्यधिक अशक्तता बनी रहती है" और "एक चक्कर के पूरा होने पर दूसरा चक्कर शुरू होता है" सार्वभौमिक और अपरिवर्तनीय नियम को सूचित करते हैं तथा जनता की भावनाओं को जमाये रखने वाले किसी भी राष्ट्र पर लागू हो सकते हैं। यद्यपि चीन का पुनरुद्धार अब एकदम निश्चित है फिर भी वह हमारे लोगों विशेषतः क्रांतिकारियों के प्रयत्नों और जागरुकता पर निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो "कोई भी चीज आदमी के प्रयत्न पर निर्भर है।" किसी कार्य में निष्क्रिय आशा से सफलता नहीं मिलती। दुविधा और कायरता से अवसर नहीं मिलता—अवसर तो मनुष्य स्वयं निकालता है। अगर हम लोग साहसपूर्वक, जोश और उत्साह के साथ बढ़ते चलें तो सभी भौतिक बाधाओं को पार कर लेंगे और सामाजिक दशा में भी सुधार कर सकेंगे। अन्यथा हम अवसर खो देंगे और हम सदा के लिये तहस नहस हो जाएँगे। हम लोगों के ही कामों तथा इच्छा पर राष्ट्र का उत्थान या पतन और समाज या व्यक्ति की सफलता या विफलता निर्भर है। हमें किसी चीज को भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उससे हमारे कार्य की संभावनायें नष्ट होती हैं और यहाँ तक कि हम अपने जीवन के सच्चे अर्थ को भी भूल जाते हैं। इसलिये मैंने बराबर अपना यह विचार व्यक्त किया है कि "विश्व में नये जीवन के निर्माण में सतत प्रयत्नशील होना जीवन की सार्थकता है और मानव मात्र के जीवन को सुखमय बनाना ही जीवन का उद्देश्य है।" इससे मेरा अर्थ यह है कि

इस संसार में जीवन के सभी नये-नये ढंग आदमियों द्वारा ही बनाये जाते हैं और राष्ट्र के भाग्य का निर्माण सम्पूर्ण देश की जनता के हाथों होता है। सन् १८४२ में पहली असम संधि हुई और उसके बाद से हमारे राष्ट्र का जो पतन हुआ है तथा हम जो दासता के बन्धन में रहे हैं इसमें हमारा ही दोष है। अब जो असम संधियाँ रद्द हो गईं और हमें समानता तथा स्वतंत्रता मिलीं वे भी हमारे अपने प्रयत्न के फल हैं। जब जीवन का उद्देश्य इतना महान् है तथा जनता की शक्ति इतनी विशाल है तो कैसे हम साहस, आत्म प्रतिष्ठा, आत्म निर्भरता तथा शक्ति प्राप्त करने से चूक सकते हैं? मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे राष्ट्र का पुनरुद्धार होगा तथा उसकी समृद्धि होगी। अब से जनहित विरोधी तथा प्रतिगामी युद्धअधिनायकों की विभिन्न क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की मनोवृत्तियों तथा प्रतिक्रियावादी सामंतशाही शक्तियों को पनपने का मौका तो मिलेगा ही नहीं बल्कि उनका अस्तित्व भी मिटा दिया जायगा। अगर उन्हें सफलता मिल जाती है तो हमारा राष्ट्र तहस-नहस हो जायगा। आप ही बताइए कि पैंतालीस करोड़ आबादी वाला हमारा राज जिसने इस महान् युग में अपना स्थान बना लिया है तथा जिसके पास राष्ट्रपिता के 'जनता के तीन सिद्धान्त' सा राष्ट्रीय क्रांति का मार्गप्रदर्शक सिद्धान्त है वह भला कैसे इस संसार से मिट सकता है?

हमारे देश भाइयो! राष्ट्र का जीवन या मरण, जनता की उन्नति या अवनति आपके सामने स्पष्ट है। यह समय हम लोगों के निर्णय करने का है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और संसार का घटनाचक्र इस प्रकार है कि हम दुविधाजनक और अनिश्चित हालत में अपने को नहीं रख सकते। इसलिये हमारे लोगों को खासकर सभी निष्ठावान देशभक्त तथा क्रांतिकारियों को एक उद्देश्य से जनता के तीन सिद्धान्त वाले क्वोमिनताङ् के झंडे के नीचे एकत्रित होना चाहिए और अपने देश की स्वाधीनता तथा अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये, अपने अपमान को धोने तथा अपने राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिये हमें एक नागरिक की हैसियत से अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य को निभाना चाहिए ताकि भविष्य की हमारी संतान को दासता के बंधन का दुःख न भोगना पड़े।

इनके अलावा संपूर्ण देश के युवकों को "सान् मिन् चु इ युवक संघ" का ठीक ठीक और स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। अगर अब से संपूर्ण

देश के हमारे युवक क्रांति के लिये महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं या राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के काम में भाग लेना चाहते हैं तो उन्हें समझना चाहिए कि "सान् मिन् चु इ युवक संघ" का सदस्य होना एक रास्ता है जिसके द्वारा वे अपनी उन्नति तथा राज की सेवा कर सकते हैं। असम संधियों के रद्द हो जाने के कारण तथा प्रतिरोध युद्ध में होने वाली विजय के बाद चीन का एकमात्र कार्य एक नव राष्ट्र का निर्माण करना होगा जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति, अर्थ व्यवस्था और सुरक्षा ये तीन बातें घनिष्ठ रूप से एक में जुड़ी रहेंगी। पुनर्निर्माण संबंधी चीन का बुनियादी कार्यक्रम राष्ट्रपिता के "चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास" की योजना पर आधारित है जिसे पूरा करने के लिये बहुत बड़ी संख्या में योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। इस बुनियादी कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये हमारे विद्यालयों में पढ़ने वाले या हाल में ही स्नातक होकर निकले युवक और युवतियाँ भर्ती की जाएँगी। इसलिये हमारे युवक और युवतियाँ पढ़ने-लिखने या उन्होंने जो कुछ सीखा है उन्हें व्यवहार में लाने में जो एक एक मिनट समय लगा रही हैं वह नव जीवन लाने या राष्ट्र में स्फूर्ति भरने का उनका प्रयत्न है। इस द्वितीय महायुद्ध काल में संसार की घटनाओं के युगान्तरकारी अभिनय में भाग लेने, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण संबंधी उच्च और महान् कार्यों को करने और चीन की स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता के इतिहास का प्रथम पृष्ठ लिखने में योग देने का कितना बड़ा सौभाग्य हमारे नवयुवकों को मिला है! हमारे नवयुवकों को जीवन के प्रारम्भ में ही वह सुअवसर मिला है जो हजार वर्षों में कहीं एक बार आता है। इसलिये उन्हें आधुनिक राज की आवश्यकताओं को ठीक ठीक समझना चाहिए और अपने जीवन-कार्य की योजना सोच-समझ कर बनानी चाहिए ताकि उन्हें अतीत की तरह ही पुनः दूसरों का अंधानुकरण नहीं करना पड़े और भूल से गलत राह पकड़ अपने जीवन को बरबाद कर बराबर के लिये पछताना न पड़े। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि 'जनता के तीन सिद्धान्त' में केवल चीन की प्राचीन सभ्यता और उसकी जनता के उच्च सद्गुणों का ही समावेश नहीं है बल्कि आधुनिक युग की विश्व-घटना की अनिवार्य प्रवृत्ति भी उसमें सन्निहित है। "सान् मिन चु इ युवक संघ" जनता के तीन सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास रखने वाले सभी चीनी युवकों की केन्द्रीय संस्था है। अपने लक्ष्य को ठीक ठीक बनाए रखने के लिये तथा इस खतरे से बचने के लिये कि अपनी तथा राष्ट्र की हानि न

हो सभी युवक-युवतियों को संघ का नेतृत्व स्वीकार कर लेना चाहिए। एकमात्र-संघ के नेतृत्व में काम करते हुए वे अपने जीवन-कार्य को ठीक दिशा में ले जाने को निर्णय कर सकते हैं। संघ के सदस्यों को ठीक ढङ्ग से शिक्षा दी जाएगी और उन्हें कड़े अनुशासन में रखा जायगा। वे जनता के जीवन के सभी अंगों की उन्नति में लगेंगे और सम्पूर्ण राष्ट्र के स्वार्थ की रक्षा करेंगे। देश को असंगठित होने तथा पतन से बचाना, राष्ट्रीय अपमान को धोना, राष्ट्र को पुनः शक्तिशाली बनाना, राज के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते रहना तथा राष्ट्र के प्रति संतानोचित कर्त्तव्य का पालन करना ही उनका उद्देश्य होना चाहिए। उन्हें अपने इतिहास के ऋषियों और वीरों के पद चिह्नों का अनुसरण करना चाहिए तथा अपने को जनता की जीवन शक्ति और राष्ट्र का आधार बनाना चाहिए। संपूर्ण देश के नवयुवकों को संघ को केवल अपना जीवन-कार्य प्रारम्भ करने का स्थान मानकर ही उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहिए वल्कि संघ का सदस्य होने में उन्हें अपनी प्रतिष्ठा समझनी चाहिए। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि संघ के आदेश संपूर्ण राष्ट्र के युवकों के सम्मिलित जीवन को पुष्ट करने की दृष्टि से हैं और संघ का संगठन मजबूत होने से वे अपने समान उद्देश्य की प्राप्ति कर सकेंगे। यह समान उद्देश्य है—चीन के पुनर्निर्माण तथा पुनर्जीवन के लिये राष्ट्रीय क्रांति को सफल बनाना तथा उस सफलता का चरम रूप है जनता के तीन सिद्धान्त को कार्यान्वित करना।

इस बात की अधिक चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है कि क्वोमिनताङ् और 'सान् मिन् चु इ युवक संघ' ये दोनों ही हमारे राष्ट्र के प्रधान अंग हैं। पर एक बात हमें अपने देश भाइयों से पुनः कह देना है कि क्वोमिनताङ् हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का प्रधान कार्यालय है जो सब के लिये खुला है और जिसका उपभोग सभी कर सकते हैं। हमारे राष्ट्र की स्वाधीनता क्वोमिनताङ् द्वारा परिचालित क्रांति की सफलता पर निर्भर है। क्वोमिनताङ् के बिना चीन का विस्तार नहीं है। एक शब्द में कहें तो चीन का भाग्य क्वोमिनताङ् के ऊपर है। अगर क्वोमिनताङ् द्वारा परिचालित क्रांति असफल होती है तो चीन के पास एक राष्ट्र की हैसियत से कुछ भी नहीं बचता है जिस पर वह टिक सके और फिर चीन की गिनती संसार में चार प्रमुख राष्ट्रों में तो नहीं ही होगी बल्कि वह दूसरे देशों की दया का भिखारी हो जायगा। संसार के नकशे से चीन के प्रजासत्तात्मक

राज का नाम मिट जायगा। अतः हम सब इस बात को ध्यान में रखें कि जीवन की दृष्टि से यदि हमारा राज एक शरीर की तरह है तो *'जनता के तीन सिद्धान्त' को हमें उसकी आत्मा समझना चाहिए* क्योंकि इसके अभाव में हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का मार्ग प्रदर्शन नहीं हो सकेगा। कार्य की दृष्टि से यदि हमारा राज एक शरीर की तरह है तो *क्वोमिनताङ् उसमें जीवन रुधिर (धमनी) की भांति है और "सान् मिन् चु इ युवक संघ" के सदस्य उसमें नवरक्त कीटाणु की तरह हैं।* क्वोमिनताङ् के नहीं रहने से चीन की केन्द्रीय शक्ति जाती रहेगी। अगर देश की सभी क्रांतिकारी शक्तियाँ और उत्साही युवक देश के भाग्य को अपना भाग्य समझते हैं और राष्ट्र के कार्य को अपना कार्य तथा राष्ट्रीय जीवन को अपना जीवन मानते हैं तो उन सबों को क्वोमिनताङ् में या "सान् मिन् चु इ युवक संघ" में सम्मिलित हो जाना चाहिए। ऐसा कर वे अपने महान् कर्त्तव्य का पालन करेंगे और जीवन के सबसे ऊँचे आदर्श की प्राप्ति करेंगे। तभी जाकर हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का महान् उद्देश्य पूरा होगा।

मैंने ऊपर जो कुछ कहा है उससे हमारे देशवासियों पर दो तरह की प्रतिक्रियायें हो सकती हैं—एक तो यह कि मैंने जो कुछ कहा है वह इसलिये कहा है कि क्वोमिनताङ् के बाहर के लोगों को उत्साह मिले और वे क्वोमिनताङ् के सदस्य बन जाएँ। दूसरी प्रतिक्रिया एक कदम और आगे बढ़कर यह हो सकती है कि मैंने निगूढ़ भाव से क्वोमिनताङ् के बाहर की विभिन्न संस्थाओं और पार्टियों को धमकी देने के रूप में सब बातें कहीं हैं और उन्हें दबाने के लिये मेरे पास कोई निश्चित योजना है या उनके मार्ग में मेरे द्वारा बाधाएँ डाली जाएँगी। पहली प्रतिक्रिया के संबंध में मैं साफ साफ कहता हूँ कि मेरी इच्छा है कि देश भर की समस्त क्रांतिकारी शक्तियाँ और निष्ठावान युवक क्वोमिनताङ् और "सान् मिन् चु-इ युवक संघ" में सम्मिलित हो जाएँ क्योंकि इससे उन्हें लाभ ही नहीं होगा बल्कि यह उनका कर्त्तव्य भी है। जब तक उनके दिल में राष्ट्र को मुक्त करने की भावना है वे अपनी प्रेरणा से ही सम्मिलित होंगे; उन्हें मेरी प्रेरणा की अपेक्षा नहीं है। इसकी प्रतिक्रिया के संबंध में भी मैं साफ साफ कहता हूँ कि जब तक चीन में विभिन्न मत या संस्थायें शक्ति द्वारा चीन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभुत्व जमाने या क्रांति के विरुद्ध खुला विद्रोह करने का कार्य नहीं करती हैं और जब तक वे शस्त्र द्वारा प्रतिरोध युद्ध में बाधा नहीं डालती तथा जब

तक वे क्रांति और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के स्वार्थ की दृष्टि से कार्य करते हैं तब तक मेरा इरादा उन पर प्रतिबंध लगाने का तो नहीं ही है बल्कि इसके विपरीत मैं उनकी प्रगति और सफलता की कामना करता हूँ। सार्वजनिक और व्यक्तिगत कर्त्तव्य से बंधे हुए होने के कारण मैं अपने देश और अपने सिद्धान्त के लिये, अपनी जनता के लाभ और अपने मित्रों की भलाई के लिये यह साफ साफ और हार्दिक राय अपने देश के विभिन्न मत मानने वाले तथा विभिन्न संस्थाओं को दे रहा हूँ।

मैं पहले अपने उन मित्रों से पूछता हूँ जो क्वोमिनताङ् के विपक्ष में हैं—क्या आप क्वोमिनताङ् का इसलिये विरोध करते हैं कि उसके सिद्धान्त लचर हैं? या इसलिये कि उसकी नीति ठीक नहीं है? अगर हम क्वोमिनताङ् को वास्तविकता की दृष्टि से देखें, उसके अतीत के कामों की छानबीन ऐतिहासिक दृष्टि से करें, उसके वर्त्तमान के कामों की संसार की बदलती परिस्थितियों की दृष्टि से जांच करें, उसके भविष्य को अपनी राष्ट्रीय संभावनाओं की दृष्टि से आंकें तो मुझे विश्वास है कि हम सभी एक मत होंगे कि चीन के लिये 'जनता के तीन सिद्धान्त' ही एक मात्र ऐसे सिद्धान्त हैं जो एक साथ ही व्यापक तथा ठोस भी हैं और हम लोगों के अनुसरण करने के लिये क्रांति ही एकमात्र महान् और प्रशस्त पथ है। हम सबों को यह समझना चाहिए कि क्वोमिनताङ् ही क्रांतिकारी कामों की प्रमुख संस्था है जिसने प्रजातन्त्रात्मक राज की स्थापना की है तथा वह हमारे राष्ट्रीय पुनरुद्धार और पुनर्निर्माण की प्राणशक्ति है। अगर आप मानते हैं कि इसकी नीति ठीक है और इसके सिद्धान्त ठोस हैं, अगर आप स्वीकार करते हैं कि इसने जो क्रांति प्रारम्भ की है वह राष्ट्र की भलाई के लिये है तो आपको क्वोमिनताङ् में सम्मिलित होकर उसके सिद्धान्त की पूर्ति और उसकी नीति के उत्कर्ष के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए। पर अगर आप समझते हैं कि केवल इसके काम और रुख में कुछ दोष है तो आपको सुझाव देकर उसे ठीक करने का प्रयत्न करना चाहिए। *केवल इतने के लिये ही आपको क्वोमिनताङ् का विरोध नहीं करना चाहिए या इसे मिटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए क्योंकि क्वोमिनताङ् को मिटाने की कोशिश करना चुङ् हुा राष्ट्र के संपूर्ण जीवन को मिटाने की कोशिश करना है। अपने राष्ट्र के जीवन को नष्ट करना अपने जीवन तथा भविष्य की अपनी संतानों के जीवन को नष्ट करना है। इस प्रकार के फल की कामना*

करना बड़ा ही खतरनाक है। आज के इस सैनिक शासन काल तथा राजनीतिक संरक्षण काल में क्वोमिनताङ् के बाहर का कोई व्यक्ति किसी बहाने या किसी तरकीब से अगर सैन्य संगठन कर किसी क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है या प्रतिरोध युद्ध तथा राष्ट्रीय एकता में बाधा डालता है तो उसे युद्ध अधिनायक अगर नहीं तो कम से कम सामंत तो समझना ही चाहिए। क्या यह नये ढंग का सामंतवाद, इस नये रूप में युद्ध अधिनायकतंत्र हमारे राष्ट्र और क्रांति के लिये लाभदायक होगा या हानिकारक? हम लोग अतीत के युद्ध अधिनायकों का तिरस्कार इसलिये करते हैं कि उन लोगों ने व्यक्तिगत रूप से सेना खड़ी कर रखी थी और विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभुत्व जमा लिया था। हम कैसे विश्वास करें कि यह नये ढंग का सामंतवाद, इस नये रूप में युद्ध अधिनायकतंत्र मौलिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करते हैं? शस्त्र के जोर से भिन्न भिन्न क्षेत्रों पर प्रभुत्व जमाए रखने का प्रतिक्रियावादी प्रभाव और सामंतवादी युद्ध अधिनायकतंत्र जब तक बने रहते हैं तब तक अपने राजनीतिक जीवन को नियमित अवस्था में लाना या सैनिक शासन काल को समाप्त करना असंभव है, राजनीतिक संरक्षण काल तथा वैधानिक शासनकाल की तो बात ही क्या। इससे राष्ट्र और क्रांति की प्रगति में बड़ी बाधा पड़ेगी और राष्ट्र को अपरिमित हानियां उठानी पड़ेंगी। इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि सोवियत युनियन, ग्रेटब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्र जैसी महान् शक्तियाँ यह चाहती हैं कि हमारा राष्ट्र मुक्त हो तथा उन्नति करे और हमारा राज स्वाधीन तथा स्वतंत्र हो। इसलिये उन लोगों ने गत सौ वर्षों के बीच चीन में जो विशेष अधिकार तथा सुविधायें प्राप्त की थीं उन्हें अपनी इच्छा से छोड़ दिया। उन लोगों ने सभी असम संधियाँ रद्द कर दी हैं जिनसे चीन बुरी तरह जकड़ा हुआ था। तब क्यों हमारे अपने ही देश के राजनीतिक दल शस्त्र द्वारा चीन के भूभाग को काटकर अलग करने के विनाशक कामों को तथा सामंती और युद्धअधिनायक तंत्र की भावनाओं को नहीं छोड़ना चाहते? कैसे उन दलों के सदस्य चीन के सच्चे नागरिक समझे जाएँ? कैसे उनके दल को राजनीतिक दल की संज्ञा दी जाय? जब देश की सरकार विदेशी आक्रमण के विरुद्ध सशस्त्र प्रतिरोध में लगी हो और राष्ट्रीय अस्तित्व के जीवन-मरण के संग्राम में फंसी हो तो संसार के किस दूसरे देश में ऐसा राजनीतिक दल है जो उस समय राष्ट्र के प्रति अपनी भक्ति न प्रदर्शित करता है तथा अपनी शक्ति भर राष्ट्र हित के

कामों में योग न देता है बल्कि उल्टे उस अवसर का लाभ उठाकर अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाता है, राष्ट्रीय भूभाग का एक बड़ा हिस्सा छीन कर सशस्त्र प्रतिरोध की योजना को ठीक रीति से लागू करने में बाधा देता है तथा सरकार की अवज्ञा करने और कानून भंग करने में लगा रहता है और इस प्रकार मातृभूमि की एकता नष्ट करता है और राष्ट्र में नियमित राजनीतिक विकास को असंभव बनाता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि अगर इस तरह की हालत अनिश्चित काल तक बनी रही तो इसका अवश्यम्भावी फल यह होगा कि राष्ट्रों के परिवार में चीन की प्रतिष्ठा घट जायगी, हमारी जनता का दम घुट जायगा, हमारा राष्ट्र मिट जायगा और हमारी जाति लुप्त हो जायगी। क्या यह एक नृशंस कार्य नहीं है? क्या यह प्रतिक्रियावाद का सूचक नहीं है? क्या यह हमारी क्रांति के लिये बाधक नहीं है? जो लोग इस तरह की बाधायें देते हैं अगर उन्होंने स्वयं अपनी इच्छा से बाधाओं को नहीं हटाया तो इनसे देश, जनता तथा स्वयं बाधा डालने वाले पर आने वाला खतरा नहीं रुक सकता। देश में फैले हुए विभिन्न राजनीतिक मत-मतान्तर तथा झगड़ों के संबंध में मैंने बराबर यह ध्यान रखा है कि राष्ट्रीय सरकार उन्हें उदारतापूर्वक देखे और तर्क संगत तरीकों से समाधान करने की चेष्टा करे। पर अगर वे लोग अपने सामंती तथा युद्ध अधिनायकवादी तरीकों से काम करना छोड़ने तथा विभिन्न क्षेत्रों पर कायम किए अपने सशस्त्र प्रभुत्व का त्याग करने को तैयार नहीं हैं तो सरकार के लिये कोई भी काम करना व्यर्थ होगा चाहे वह कितना ही उदार और तर्क संगत क्यों न हो। मुझे विश्वास है कि हम सभी लोग अपने देश से प्रेम करते हैं, अतः राज के जीवन तथा जनता के भविष्य के लिये हम सबों को अपने व्यक्तिगत पक्षपात तथा गलत-फहमी को त्याग देना चाहिए—चाहे अतीत में कितना भी एक का दूसरे के विरुद्ध मत क्यों न रहा हो या चाहे एकने दूसरे के प्रतिकूल कितना भी काम क्यों न किया हो। यह चीन की वास्तविक एकता की दिशा में और शीघ्र से शीघ्र उसकी राजनीतिक दशा को नियमित करने में बड़ा ही सहायक होगा ताकि विदेश के लोग फिर हमारे देश को पिछड़ा हुआ न कह सकें और हमें निम्न जाति का समझ कर हमसे घृणा न करें। मुझे विश्वास है कि हम सभी चाहते हैं कि राजनीतिक संरक्षण काल में शांति से प्रगति हो तथा यथासंभव शीघ्र वैधानिक शासन की स्थापना हो और हम यह भी आशा करते हैं कि दूसरे राष्ट्रों के समकक्ष ही चीन एक स्वाधीन राष्ट्र हो

और हम सब स्वतंत्र तथा स्वाधीन राज के नागरिक की तरह रहें। यही हमारा प्रमाण होगा कि हम चुङ् हा राष्ट्र की समर्थ संतान हैं और प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली में राजनीतिक दल गठन कर सकने के योग्य हैं। हम क्रांतिकारियों को अपने कथन और कार्य में सच्चा होना चाहिए। हमें ख्याल रखना चाहिए कि "सच्चा उपदेश सुनने में अप्रिय लगता है जिस प्रकार लाभदायक दवा पीने में कड़वी होती है।" मैं इस बात को मानता हूँ कि जिन संस्थाओं के संबंध में ऊपर चर्चा हुई है वे यद्यपि क्रांति के नाम पर स्थापित हुई हैं पर वास्तव में क्रांति के लिये घातक हैं, यद्यपि देशभक्ति के नाम पर उनका अस्तित्व कायम हुआ है पर वास्तव में वे देश को भयंकर हानि पहुँचाती हैं। उनके सभी कार्य केवल राष्ट्र और जनता के लिये, क्रांति और पुनर्निर्माण के लिये ही घातक नहीं हैं बल्कि उनके हर सदस्य के भविष्य के लिये भी घातक हैं और अन्ततः उनका असफल होना निश्चित है। अतः मेरी फिर से स्पष्ट और हार्दिक सलाह है कि "अगर हम लोगों ने अपना वही पुराना रुख तथा काम करने का वही पुराना रास्ता बनाए रखा तो हम लोग स्वयं अपने भविष्य को धक्का पहुँचाएँगे और अपने जीवन की प्रगति में बाधा देंगे। इस प्रकार के रुख और काम करने के तरीकों से हमारी राष्ट्रीय शक्ति का पूर्ण संगठन न हो सकेगा और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य भी संतोषजनक ढंग से नहीं हो सकेगा। इससे किसी व्यक्ति विशेष को तो लाभ होगा ही नहीं उल्टे संपूर्ण राष्ट्र और जनता की हानि होगी।" हमें समझना चाहिए कि चीन का भाग्य अभी जीवन और मरण के बीच की डाँवाडोल स्थिति में है! किसी भी उपयोगी आदमी को व्यर्थ के कामों में अपनी इच्छा से एकदम नहीं लगना चाहिए और न बिना प्रयोजन के रत्ती भर भी अपनी शक्ति का व्यय करना चाहिए। मुझे आशा है कि अपने देश की भलाई के लिये सब कोई एक होकर तथा एक इच्छा से जनता के तीन सिद्धान्त और क्वोमिनताङ् के झंडे के नीचे इकट्ठे होंगे। यह हम लोगों का कर्त्तव्य है तथा यही हमारे हित की भी बात है। इस प्रकार की सलाह देने में मुझे एकमात्र क्वोमिनताङ् के स्वार्थ का ही नहीं बल्कि सबों के स्वार्थ का ध्यान है। मेरा न कोई गुप्त अभिप्राय है न किसी के प्रति अनिष्ट भावना ही। हम सबों को यह भी समझना चाहिए कि गत पचास वर्षों के भीतर विभिन्न दलों द्वारा विरोध एवं बाधा उपस्थित करते रहने पर भी क्वोमिनताङ् ने

कभी भी अपने क्रांतिकारी प्रयत्नों में शिथिलता नहीं आने दी और यही कारण है कि उसे प्रारम्भिक सफलता भी मिली है। अब से विरोध और बाधाओं के रहते हुए भी यह राष्ट्र निर्माण के कार्यक्रम को न तो बंद करेगी और न उसमें देरी ही करेगी। अंतिम सफलता नहीं पाने तक यह अपना प्रयत्न जारी रखेगी। गत पचास वर्षों के भीतर क्वोमिनताङ् विरोधी सभी दलों को चाहे वे कितने भी सबल क्यों न रहे हों और चाहे उनकी सैन्यशक्ति कितनी ही प्रबल क्यों न रही हो, असफलता ही मिली है— खासकर उन सैनिकवादियों और अवसरवादियों को तो और भी असफलता मिली जिन्हें साम्राज्यवादी शक्तियों का सहारा था। वे इसलिये असफल नहीं हुए कि *क्वोमिनताङ् की शक्ति अति असाधारण थी बल्कि उनकी असफलता का कारण तो क्वोमिनताङ् का अपूर्व मिशन है जो घटना-चक्र और समय की गति से विकसित हुआ है। इस मिशन में बाहरी शक्तियाँ न तो बाधा डाल सकती हैं और न उसे नष्ट कर सकती हैं।* जितना ही कड़ा विरोध होगा क्वोमिनताङ् को उतनी ही जल्दी सफलता मिलेगी। उसे नष्ट करने का जितना ही सबल प्रयत्न किया जायगा क्वोमिनताङ् उतनी ही अधिक शक्तिशाली होगी। मैंने अक्सर कहा है— अगर क्वोमिनताङ् की असफलता का कोई प्रच्छन्न कारण है तो वह बिना बाहरी विरोध के ही स्वतः उसके लिये आपत्ति खड़ी कर देगा। अगर इस तरह का कोई कारण नहीं है तो बाहर से कितना ही विरोध या ध्वंस करने का प्रयत्न क्यों न हो उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिये दूसरे दलों के विरोध से अन्ततः उसका क्रांतिकारी प्रयत्न न तो छिन्न-भिन्न होगा या न उसमें बाधा पड़ेगी। अगर क्वोमिनताङ् के विरोध करने का या उसे ध्वंस करने का प्रयत्न होता है तो मुझे डर है कि उसका बुरा प्रभाव हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा चीन की स्वाधीनता और समानता की प्रतिष्ठा पर पड़ेगा जिसे हमारी जनता ने बहुत कठिनाइयों और बलिदान के बाद प्राप्त किया है। अगर इस देश के बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विशाल कार्य में अपनी संगठित शक्ति लगाने से चूक गए, अगर उन्होंने अपने ज्ञान और योग्यता को गलत रास्ते में लगा कर पुनर्निर्माण के इस बेजोड़ अवसर को हाथ से जाने दिया तो यह उनके लिये सबसे अधिक पश्चाताप का विषय होगा और क्वोमिनताङ् तो समझेगी कि वह उनके प्रति अपने कर्त्तव्य और जिम्मेवारी को नहीं निभा

सकी। इसलिये मैं पुनः एक बार अपने देशवासियों से निवेदन करता हूँ कि वे एक समान उद्देश्य के लिये कार्य करें। मुझे विश्वास है कि हमारे लोग मेरी इन बातों को मेरी अन्तरात्मा की पुकार समझेंगे।

आठवाँ अध्याय

चीन का भाग्य और संसार का भविष्य

हम सब जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान और टेकनिकल ज्ञान की दौड़ में पिछड़ जाने के कारण ही चीन की अवनति हुई है। अतः गत सौ वर्षों से चीन पश्चिम के विज्ञान और टेकनिकल ज्ञान की प्राप्ति की ओर झुका और धीरे धीरे विदेशी संस्कृति और दूसरी विदेशी चीजों का भी भक्त बन गया। यहाँ तक कि वह अपनी परम्परागत राष्ट्रीय भावनाओं और राष्ट्रीय चरित्र की अच्छाइयों और खूबियों को भी भूल गया। चीन का अपना राजनीतिक दर्शन, उसके परम्परागत आदर्श, विशेषकर उसकी परम्परागत भावनाओं की उपज है। यह दर्शन हमें सिखाता है कि युद्ध और उत्पादन की टेकनिक जन हित के लिये है पर जनता को उसका गुलाम नहीं बन जाना चाहिए। महात्मा मेन्शियस ने कहा है—"भौतिक पदार्थों की इच्छा रखो पर मनुष्य से प्रेम करो।" इसका अर्थ यह है कि राज लोक हित के लिये भौतिक पदार्थों के उपभोग की व्यवस्था करे पर मनुष्य को भौतिक पदार्थों का गुलाम न बनने दे। "महा विद्या" नामक ग्रन्थ में कहा गया है—"जहाँ मनुष्य है वहाँ भूमि भी है; जहाँ भूमि है वहाँ धन भी है और जहाँ धन है वहाँ उसका उपभोग भी है।" इसका अर्थ यह है कि कोई भी उत्पादन प्रणाली क्यों न हो उसका प्रयोग जनता की जीविका को सुलभ बनाने के लिये होना चाहिए न कि मनुष्य के चरित्र को गिराने के लिये। पिछले तीन हजार वर्षों से इस राजनीतिक दर्शन और इस आर्थिक सिद्धान्त से ही चीनी जनता की मनोभावना प्रभावित होती रही है और उनके आंतरिक चरित्र पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। यह पहले ही कहा गया है कि हम चीनी लोगों के परम्परागत चरित्र का निर्माण आठ नैतिक गुणों और चार स्थायी सिद्धान्तों से हुआ है जिनसे हम में मान-अपमान के प्रति सहिष्णुता, उत्तरदायित्व उठाने की क्षमता, ईमानदारी से काम करने का ज्ञान, और प्रतिष्ठा की भावना का उदय हुआ है। इन गुणों से युक्त चरित्र के कारण ही चीनी जनता न तो किसी के प्रबल आक्रमण से घबराती है और न दुर्बल को हानि ही पहुँचाती है; बल्कि उल्टे परम्परागत

अपनी उदारता की नीति बरतती है और दूसरों के साथ उसी तरह का व्यवहार करती है जैसा व्यवहार वह अपने लिये दूसरों से चाहती है। इसीलिये हजारों वर्षों से "पराजित को पुनः प्रतिष्ठित करना और गिरे को उठाना; दुर्बलों की सहायता करना और डगमगाते को सहारा देना" के सिद्धान्त को लेकर वह एशिया का प्रकाश स्तंभ रहा है। चीन ने अपनी समृद्धि और प्रभुत्व के दिनों में भी न तो एशिया के दूसरे लोगों का आर्थिक शोषण ही किया और न उन पर राजनीतिक प्रभुत्व ही जमाया। संसार ने यह कभी नहीं देखा कि चीन का किसी देश के साथ साम्राज्य और उपनिवेश का सा संबंध रहा हो। इस तरह का राजनीतिक दर्शन और इस तरह की राजनीतिक खूबियाँ आजकल के यूरोपीय समाज में न तो हैं और न लोग इन्हें पसन्द ही करते हैं। इसीलिये वहाँ के पूंजीवादी मानव जीवन को अपने लाभ के लिये उत्पादन का गुलाम बना रहे हैं और साम्राज्यवादी अपना उपनिवेश कायम करने के लिये उस जीवन को युद्ध कौशल में लगा रहे हैं। इन दोनों सिद्धान्तों के गठबंधन से ही हर राष्ट्र के अंदर वर्ग संघर्ष चल रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कलह मचा हुआ है और इनसे आज के इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के बाद जब युद्ध की पीड़ा कम हुई तो लोग उस पीड़ा के कारण के बारे में सोचने लगे। युद्धविरोधी समीक्षक विज्ञान को ही युद्ध का एकमात्र कारण बताकर उसे कोसने लगे। उनका कहना था कि विज्ञान द्वारा ही जन संहारक यंत्रों की तरक्की हुई है और इस प्रकार मानव मात्र को युद्ध की विभीषिका और क्रूरता का शिकार बनना पड़ रहा है। वे यह नहीं समझ सके कि युद्ध की जड़ को काटने के लिये युद्ध के आधारभूत कारणों को मिटाना होगा; युद्ध संबंधी यंत्रों के नियंत्रण से यह कार्य न हो सकेगा। मेनसियस ने कहा है—"क्या लाठी से मारे जाने और तलवार से मारे जाने में कोई अंतर है?" यदि मनुष्य अपनी बुद्धि और अपने चरित्र बल को युद्ध रोकने में नहीं लगा सकता तो तीर-धनुष से युद्ध करने और हवाई जहाज या बन्दूक से युद्ध करने में क्या कोई विशेष अंतर है? ये समीक्षक यह नहीं समझ सके कि विज्ञान की प्रगति का मूल ध्येय मानव मात्र की सेवा करना है। वैज्ञानिक आविष्कार और मानव समाज द्वारा विज्ञान की उन्नति इन दोनों के दुरुपयोग से अगर संसार में निर्दयता बढ़ गई है तो इसके लिये असल में विज्ञान दोषी नहीं है। गलती तो यह है

कि संसार में चीन के महान् तथा उच्च राजनीतिक दर्शन को ठीक ठीक नहीं समझा गया और न उसके गंभीर तथा चिरस्थायी राजनीतिक आदर्शों और सिद्धान्तों को कार्यान्वित ही किया गया। मेरा विचार है कि इस द्वितीय महायुद्ध के अंत होने के साथ साथ आजकल के उन विचारों और पद्धतियों का भी अंत होना चाहिए जिन्होंने मानव जीवन को विज्ञान तथा टेकनिक का गुलाम बना रखा है। तभी हम लोग स्थायी विश्व-शांति की नींव डाल सकते हैं और सच्चे विश्वबंधुत्व की ओर अग्रसर हो सकते हैं। यह हमें करना ही होगा अन्यथा इस वर्तमान आक्रमण युद्ध के विरुद्ध में लड़ी जाने वाली हम लोगों की इस लड़ाई का न कोई वास्तविक मूल्य होगा और न कोई वास्तविक अर्थ ही।

ब्रिटेन के एक राजनीतिज्ञ ने कहा था—"अगर हम युद्ध का उच्छेदन नहीं करेंगे तो युद्ध हमारा उच्छेदन कर देगा।" यह बात बड़ी ही तर्कपूर्ण और सची है। हमारे यहाँ के दार्शनिक लाव् च ने बताया था कि "अच्छे योद्धाओं का होना दुर्भाग्य ही है।" चीन के एक दूसरे दार्शनिक ने कहा है कि युद्ध की नीति "दुर्वलों की सहायता करना तथा सबलों को संयत रखना" तथा युद्ध का वास्तविक उद्देश्य "युद्ध का उच्छेदन करने के लिये युद्ध करना" होना चाहिए। "अच्छे योद्धाओं का होना दुर्भाग्य ही है" इस प्राचीन शिक्षा के अनुसार सैनिकवाद के प्रचारक मानव की सत्यनिष्ठता और न्याय के सामने अवश्य ही नष्ट होंगे। "युद्ध का उच्छेदन करने के लिये युद्ध करना" इस उद्देश्य के अनुसार तथा "दुर्वलों की सहायता करना तथा सबलों को संयत रखना" इस नीति के अनुसार सैनिकवाद के विरोधी तथा आक्रमण विरोधी हम मित्र राष्ट्रों को इस वर्त्तमान युद्ध को समाप्त करने के साथ-साथ अपनी शक्ति भर सम्मिलित रूप से युद्ध के कारणों को भी मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। अगर युद्ध का मूल कारण नहीं नष्ट हुआ तो इस द्वितीय महायुद्ध के बाद तृतीय महायुद्ध उसी तरह निश्चित है जिस तरह प्रथम महायुद्ध के बाद यह द्वितीय महायुद्ध आ पहुँचा है। तो लड़ाई का कारण क्या है? लड़ाई का मूल कारण है किसी भी राष्ट्र या राज के अंदर की यह प्रवृत्ति कि वह दूसरे राष्ट्र या राज पर राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक आक्रमण करे। वे सब संघ, संघठन, संबंध और प्रणालियाँ भी युद्ध के कारण हैं जो उपरोक्त प्रवृत्ति को पूरा करने के लिये बनाई गई हैं। स्पष्ट शब्दों में कहें तो साम्राज्यवाद ही लड़ाई का मूल कारण है। इसलिये

मैं सोचता हूँ कि द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथ-साथ साम्राज्यवाद का भी अंत होना चाहिए। तभी संसार में स्थायी शांति कायम होने की आशा की जा सकती है।

चीन बहुत दिनों से दूसरे राष्ट्रों द्वारा बुरी तरह सताया गया है, इसलिये चीन के लिये स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति करना भी अति आवश्यक है। संसार के सामने अपनी स्वतंत्रता और समानता की मांग प्रस्तुत करते हुए चीन का यह इरादा कदापि नहीं है कि "चीन एशिया का नेतृत्व चाहता है", जैसा कि चीन पर संदेह करने वालों ने अनुमान किया है। ऐसे लोगों को जान लेना चाहिए कि पाँच हजार वर्षों के चीन का इतिहास बताता है कि चीन अपने पड़ोसी राष्ट्रों से केवल आत्म रक्षा की तथा "पराजित को पुनः प्रतिष्ठित करना और गिरे को उठाना" की "धर्म संगत लड़ाई" लड़ा है और दूसरे राष्ट्रों के विरुद्ध आक्रमण करने के लिये उसके पास कभी भी "अच्छे योद्धा" नहीं रहे। गत सौ वर्षों से चीन में अपने अपमान को धोने तथा अपने को शक्तिशाली बनने का जो आन्दोलन है वह चीनी जनता की सर्वसम्मत माँग का फल है। पर इस आन्दोलन के दो अर्थ हैं जिन्हें स्वयं चीन को तथा संसार के हर देश को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। पहली बात यह है कि चीन के स्वतंत्र और सबल होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह दूसरे राष्ट्रों को उसी तरह सताए जिस तरह वह स्वयं सताया जाता रहा है। चीन एकदम नहीं चाहता है कि जापानी साम्राज्यवादियों को हटाकर वह उन्हीं का चोगा—चपकन पहन "एशिया के नेतृत्व" का मनसूबा बांधे। दूसरी बात यह है कि चीन के स्वतंत्र और सबल होने की माँग का अर्थ केवल यह है कि चीन स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है। इसके लिये चीन को आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तरह की स्वतंत्रता और स्वाधीनता चाहिये और उसे राष्ट्रीय सुरक्षा, अर्थ-व्यवस्था, राजनीति और संस्कृति के क्षेत्रों में उन्नति और विकास का प्रयत्न करना चाहिये। चीन की स्वतंत्रता और स्वाधीनता की माँग केवल उसके अपने स्वार्थ को लेकर ही नहीं है। इसलिये चीन की स्वतंत्रता स्वाधीनता, उन्नति और विकास का अर्थ संसार के दूसरे देशों के साथ "कंधे से कंधा भिड़ाकर" चलना है और फिर संसार के सब राष्ट्रों के साथ मिलकर स्थायी विश्व शांति की जिम्मेवारी को निभाने और मानव मात्र की मुक्ति के कर्त्तव्य को पूरा करना है। दूसरे शब्दों में कहें तो चीन के स्वतंत्र

और स्वाधीन होने की इच्छा कर्त्तव्य परायणता और उत्तरदायित्व निभाने की दृष्टि से है न कि प्रभुत्व के लोभ और भौतिक लाभ की दृष्टि से है। इसलिये चीन इस संसार के ऊपर छाए साम्राज्यवाद के विरुद्ध है और वह साम्राज्यवादियों की नीति का अनुसरण कर पुनः उनके द्वारा की गई गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता है।

गत सौ वर्षों के कटु अनुभवों के कारण तथा अपनी परम्परागत कर्त्तव्यपरायणता और उत्तरदायित्व निभाने की भावना से प्रेरित हो तथा साम्राज्यवाद के अस्तित्व को ही संसार की लड़ाई का मूल कारण समझ हमें एशिया की जनता की स्वतंत्रता और समानता पर अवश्य ही ध्यान देना होगा। एशिया का क्षेत्रफल संसार के क्षेत्रफल का चौथाई है और उसकी जनसंख्या संसार की जनसंख्या की तिहाई से भी अधिक है। एशिया की हर जाति को चीन की तरह ही बहुत दिनों से बुरी तरह सताए जाने का कडुआ अनुभव है। अगर चीन स्वतंत्र और स्वाधीन न हो सका तो एशिया की हर जाति उसकी तरह शत्रुओं द्वारा क्रूरता के साथ पददलित होती रहेगी और विश्व शांति की स्थायी नींव नहीं पड़ सकेगी। इसलिये चीन की स्वतंत्रता और स्वाधीनता पर एशिया की शांति-सुरक्षा निर्भर है और एशियाई राष्ट्रों की स्वतंत्रता और समानता विश्व की स्थायी शांति तथा विश्व युद्ध के कारण के उन्मूलन के लिये आवश्यक है ताकि युद्ध रूपी दानव पुनः मानव जाति की सुख-शांति और सुरक्षा पर विपत्ति न ढाह सके।

युद्धोत्तरकालीन अन्तर्राष्ट्रीय शांति-संगठन में राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्त को प्रमुख स्थान देना चाहिये। इस सिद्धान्त की उपेक्षा के कारण ही प्रथम महायुद्ध के बाद गठित राष्ट्र संघ (league of Nations) अन्ततः असफल हुआ। इस द्वितीय महायुद्ध के बाद संगठित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय शांति-संघ में "विश्व शक्ति" और "प्रभाव क्षेत्र" संबंधी गलत विचारों तथा इन पर आधारित पद्धतियों को एक दम स्थान नहीं देना चाहिए।

संसार की आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति और पुनर्जागरण के लिये राष्ट्रों की स्वतंत्रता और समानता का सिद्धान्त अवश्य अमल में आना चाहिए। संसार की आर्थिक उन्नति के लिये हर राष्ट्र अपने यहाँ मिलनेवाली चीजों से दूसरे राष्ट्रों की मदद करे और उनके बीच आपस में स्वतंत्र व्यापार चालू हो। *परन्तु इससे भी महत्त्व की बात यह है कि सब*

राष्ट्रों की उत्पादन शक्ति परस्पर संतुलित रहे। जापानी साम्राज्यवादियों की महत्त्वाकांक्षा है कि वे एशिया में "उद्योग प्रधान जापान और कृषि प्रधान एशिया" की योजना को चरितार्थ करें जो नाजी जर्मनी के "बृहत्तर यूरोप की योजना" के समान ही भयंकर है। यदि संसार के हर देश की उत्पादन शक्ति समानरूप से विकसित नहीं हुई तो आर्थिक विभिन्नता का प्रभाव राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता पर पड़ेगा ही और यहाँ तक कि ये आर्थिक दबाव के कारण नष्ट भी हो जाएँगे। विश्व-संस्कृति की दृष्टि से राष्ट्रों की स्वतंत्रता और स्वाधीनता के लिये सांस्कृतिक स्वाधीनता और स्वतंत्रता आवश्यक हैं। साम्राज्यवादी जापान का तथाकथित "महा जापानवाद (pan Japanism)" और नाजी जर्मनी का तथाकथित "आर्य जाति की श्रेष्ठता का सिद्धान्त" ये दोनों ही धारणायें विश्वशांति के लिये घातक हैं। अब से विश्व-शांति की सुरक्षा के लिये हमें सांस्कृतिक और जातीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त को सदा के लिये तिलांजलि दे देना चाहिए।

उपरोक्त आदर्शों को चीन ने अपने प्रतिरोध युद्ध के प्रथम दिन से ही व्यावहारिक रूप देना शुरू कर दिया है। यूरोप और प्रशांत क्षेत्र युद्ध छिड़ने के बाद चीन का मित्र राष्ट्रों के साथ हुए सैनिक आर्थिक और वैदेशिक संबंध से तथा उनके बीच सांस्कृतिक और बौद्धिक विचारों के आदान प्रदान से उपरोक्त विचारों को व्यावहारिक रूप देने में और भी मदद मिली है। पर इन आदर्शों की पूर्णप्राप्ति के लिये अभी भी सम्पूर्ण चीन की जनता को राष्ट्रीय क्रांति के पथ का अनुसरण करना चाहिए, प्रतिरोध युद्ध और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रम का पालन करना चाहिए और इस भयंकर तथा कठिन संघर्ष को निरन्तर जारी रखना चाहिए।

उपसंहार

इन पिछले अध्यायों में जो कुछ कहा गया है संक्षेप में उनकी सार बातों के दो पक्ष हैं। पहला—ऐतिहासिक दृष्टि से गत सौ वर्षों में राष्ट्रीय अपमान के कारण जो असम संधियाँ हुई उनके कारण संपूर्ण देश की जनता ने एक स्वर से उस अपमान को धोने तथा राष्ट्रीय शक्ति के विकास करने की माँग की तथा उस क्रांति का भी यही कारण था जिसने माँचू राजवंश को उखाड़ फेंका और यही कारण है जिससे कि हम प्रतिरोध युद्ध तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में लगे हैं। अपने राष्ट्रीय अपमान को धोने तथा सबल होने के आन्दोलन के दौरान में घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि राष्ट्रीय क्रांति ही सब से सही और सब से उपयुक्त रास्ता है। आज तक राष्ट्रीय क्रांति को केवल प्रारम्भिक सफलता ही मिली है। इसलिये अब से यह चीनी जनता का काम है कि वह इस सही रास्ते पर चले ताकि वह उस उद्देश्य और आदर्श की प्राप्ति कर सके जिनके लिये प्रतिरोध युद्ध और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण ये दोनों ही हो रहे हैं। दूसरा—विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों की दृष्टि से इस द्वितीय महायुद्ध के दौरान में चीन के प्रतिरोध युद्ध के जारी रहने से आक्रमण विरोधी कार्यों के प्रति दूसरे एशियाई लोगों का विश्वास और दृढ़ होगा तथा सभी एशियाई लोगों का आक्रमण विरोधी कार्यों में समर्थन प्राप्त करना संयुक्त राष्ट्रों के लिये इस भयानक संग्राम में अंतिम विजय पाने के हेतु आवश्यक है। जब वर्तमान लड़ाई का अंत होगा तो एशियाई लोगों को स्वतंत्रता और समानता का दर्जा देकर ही स्थायी शांति और मानव मात्र की मुक्ति के कार्य का श्रीगणेश करना चाहिए। चीन की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता दूसरे एशियाई राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और समानता की अग्रगामी है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब चीन स्वतन्त्र और स्वाधीन रहेगा तभी एशिया में शांति और सुरक्षा रहेगी तथा उसे स्वतन्त्रता और समानता का दर्जा प्राप्त होगा। एशिया की शांति और सुरक्षा संसार की शांति का प्रमाण है और एशिया के लोगों की मुक्ति का अर्थ मानव मात्र की मुक्ति है।

असम संधियों के रद्द हो जाने से अब चीन ने स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का पद पा लिया है। इस नये पद की प्राप्ति की प्रतिक्रिया के

फलस्वरूप चीनी लोगों में कर्त्तव्यपरायणता और जिम्मेवारी उठाने की भावना बढ़नी चाहिए। इससे राष्ट्र का कर्त्तव्य और नागरिकों की जिम्मेवारी निश्चय ही बढ़ गई है और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य की पूर्ति तथा उसके आदर्श की प्राप्ति के लिये और भी अधिक प्रयत्न और व्यक्तिगत बलिदान की आवश्यकता है।

"आकाश के नीचे (संसार में) कोई चीज सरल नहीं है फिर भी कोई चीज कठिन भी नहीं है।" अगर हम लोगों को अपने राष्ट्र पर पूरी आस्था हो, अगर हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के आधारभूत सिद्धान्तों यानी जनता के तीन सिद्धान्तों का हार्दिक समर्थन करें और उत्साहपूर्वक तथा ईमानदारी से उन्हें कार्यान्वित करें तथा राष्ट्रीय क्रांति के आधारभूत उद्देश्य और अभिप्राय को पूरा पूरा समझ कर इस दिशा में संगठित प्रयत्न करें तो हमारी राह में चाहे किसी तरह की बाधा क्यों न आए हम निश्चय ही सफल होंगे। मेरे देश भाइयो! असम संधियाँ रद्द हो गई हैं! पिछले सौ वर्षों में अपने पर बीते दुःख और कठिनाइयों को सोचकर हमें और भी अधिक उत्साहित होकर राष्ट्र के लिये अपने जीवन का बलिदान करने वाले असंख्य देशभक्त सैनिकों और क्रांतिकारी शहीदों की अपूर्ण अभिलाषा की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए। हमें अपनी परम्परागत भावनाओं को स्थायी बनाना चाहिए जिनके कारण पिछले पांच हजार वर्षों से हमारा राष्ट्र अपना अस्तित्व बनाए हुए है और हमें चीनी जनता में विशिष्ट सद्गुणों को पुनः लाने की चेष्टा करनी चाहिए। सबसे अधिक आवश्यकता यह है कि हम एक मन और एक अभिप्राय लेकर सच्ची लगन से काम करने की चेष्टा करें तथा अधिकाधिक पूर्णता प्राप्ति के लिये प्रयत्न करें तथा राष्ट्रपिता के "समझना कठिन है पर करना सरल है" दर्शन का पालन करें। हममें से हरेक स्त्री-पुरुष को अपनी स्थिति और योग्यता के अनुसार अपने सामाजिक रीति-रिवाज और आदतों में सुधार करने, बौद्धिक जीवन में उन्नति लाने और स्वतंत्रता तथा कानून द्वारा शासन व्यवस्था की भावनाओं को बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिए। इस प्रकार संगठित होकर हम अपने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के पंचमुखी कार्यक्रम के लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे जिसमें हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था और सुरक्षा मिली हुई इकाई के रूप में होगी और अन्त में हम अपने मित्र राष्ट्रों के साथ संसार के पुनर्गठन तथा मानव मात्र की शांति और स्वतंत्रता की रक्षा के महान् कार्य में अधिक योग्यता के साथ योगदान कर सकेंगे।

परिशिष्ट 'क'

टिप्पणियाँ

१. *त्रिक राज*—हान् राजवंश के पतन (सन् २२० ई०) के बाद से चिन् राजवंश प्रारम्भ (सन् २६५ ई०) होने के पहले तक का काल 'त्रिक राज काल' कहलाता है। क्योंकि इस काल में संपूर्ण चीन एक शासन के अधीन नहीं रहा। छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ) के उत्तर वइ राज (सन् २१०-२६५ ई०), दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में शु-हान् राज (सन्२२१-२६४ ई०) और दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में वु राज (सन् २२६-२८० ई०) स्थापित हुए। ये तीनों राज सम्मिलित रूप से चीन के इतिहास में 'त्रिक राज' कहलाते हैं।

२. *उभय हान् राजवंश*—हान् राजवंश का काल ई० पू० २०६—सन् २२० ई० है। पर ईस्वी सन् पूर्व की पहली शती के अंत में इस राजवंश की हालत कमजोर पड़ गई। इस कमजोरी का लाभ उठाकर राजघराने के वाङ् माङ् नामक एक व्यक्ति ने सम्राट् को विष देकर मार डाला और एक बालक को सम्राट् बना स्वयं संरक्षक होकर राज करने लगा। पइ ई० पूर्व ६ में वह स्वयं सम्राट् हो गया तथा शिन् (=नया) राजवंश की स्थापना की। पर सन् २५ ई० में हान् राजकुमार की सेना के सामने वाङ् माङ् ठहर नहीं सका और मारा गया। हान् राजकुमार ने उसी साल लो याङ् शहर में पुनः हान् राजवंश की स्थापना की और तब से लो याङ् ही हान् राजवंश की राजधानी हुई। इसके पहले छाङ् आन् शहर में हान् साम्राज्य की राजधानी थी। छाङ् आन् में जब तक राजधानी रही (यानी ई० पू० २०६-सन् २५ ई० तक) तब तक का हान् राजवंश "पश्चिम हान् राजवंश या अगला हान राजवंश" कहलाया। जब तक लो याङ् में राजधानी रही (यानी सन् २५-२२० ई० तक) तब तक का हान् राजवंश

"पूर्व हान् राजवंश या पिछला हान् राजवंश" कहलाया। इन दोनों का सम्मिलित नाम ही "उभय हान् राजवंश" है।

३. *पश्चिम चिन् राजवंश*—त्रिक राज में वइ सबसे शक्तिशाली हुआ। वु राज अंशतः वइ के नियंत्रण में रहा। वइ ने शु हान् को जीतकर उसे अपने राज में मिला लिया। सन् २६५ ई० में वइ के मंत्री ने वइ राजा से गद्दी छीन ली और स्वयं राजा बन बैठा और चिन् राजवंश की स्थापना की। कुछ वर्षों के बाद (सन् २८० ई० में) चिन् राजा ने वु राज को भी जीत कर अपने में मिला लिया और इस प्रकार चीन को एक शासन के अधीन संगठित किया। चिन् राजवंश की राजधानी उत्तर चीन के छाङ् आन् और लो याङ् शहरों में थी। चिन् राजवंश पर बर्बर कबीलों के आक्रमण हुए और चिन् सम्राट् सन् ४३६ ई० में छाङ् चिआङ् के पार चले आए और नान् चिङ् (नानकिंग) में अपनी राजधानी स्थापित की। उत्तर चीन बर्बर कबीलों के अधिकार में चला गया। चिन् राजवंश की राजधानी जबसे नान् चिङ् में हुई उसका नाम (राजवंश का) *'पूर्व चिन् राजवंश'* पड़ा। जब राजधानी छाङ् आन् और लो याङ् में थी तब तक का राजवंश 'पश्चिम चिन् राजवंश' कहलाने लगा। पश्चिम चिन् राजवंश सन् २६५-३१६ ई० तक और पूर्व चिन् राजवंश सन् ३१७-४२० ई० तक रहा। इन दोनों का सम्मिलित नाम लिआङ् चिन् (लिआङ्=उभय, दो) यानी 'उभय चिन् राजवंश' कहलाता है!

४. वु हु—वु=पाँच; हु=बर्बर—पाँच बर्बर। पश्चिम चिन् राजवंश के समय चीन पर बर्बर कबीलों का आक्रमण हुआ। ये कबीले चीन के उत्तर, उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में रहते थे। इन बर्बरों के आक्रमण से ही चिन् राजवंश उत्तर चीन से दक्षिण चीन चला गया था। उत्तर चीन पर बर्बर लोग सुइ राजवंश की स्थापना (सन् ५८१ ई०) होने के पहले तक राज करते रहे। उन बर्बरों में पाँच प्रसिद्ध हैं जो चीन के इतिहास में वु हु के नाम से विख्यात हैं। वे तुर्की, मंगोल और तिब्बती नस्ल के थे। पाँच बर्बरों का ब्यौरा यों है—पहला हुङ्नु

(हूण) की एक शाखा था, दूसरा भी हूण की ही एक शाखा था जो "चिए" कहलाता था। तीसरा छिआङ् कबीला था जो आज के छिङ् हाइ, स चुआन् और तिब्बत में रहता था। चौथा छिआङ् की ही एक शाखा था जो 'ति' कहलाता था और जिसने उत्तर-पश्चिम चीन में लगभग सन् ३५१ ई० में राज स्थापित किया था। पांचवां शिएन् पि कबीला था।

५. शिएन पि या पइ—यह कबीला हूण राज के उत्तर पूर्वी साइबेरिया में रहता था। हान् राजवंश के समय यह हूणों के अधीन था। पर जब हान् सम्राट् के आक्रमण के कारण हूण राज कमजोर पड़ गया तो शिएन् पि लोगों ने हान् सम्राट् के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित की। तीसरा शती में जब हूण पूर्व से एकदम निकाल दिए गए और वे मध्य एशिया के पार चले गये तो उनके भूभाग में आकर शिएन् पि लोग बस गये। शिएन् पि का एक परिवार चीनी महान् दीवार के दक्षिण आकर बसा। चिन् राजवंश (सन् २६५—४२०) के समय उत्तर चीन में चीन के सम्राट् का प्रभुत्व घट रहा था और उससे लाभ उठाकर उस शिएन् पि परिवार ने चीन के उत्तर पूर्व जिले में जिसमें आज पइ फिङ् (पिकिङ) शहर है, अपना आधिपत्य कायम किया। उस परिवार की स्त्रियों ने उस जिले की स्त्रियों का मस्तक आभूषण अपनाया जो 'पु याव्' कहलाता था। इसलिये शिएन् पि के दूसरे परिवार वाले इस परिवार को 'पु याव्' नाम से पुकारने लगे, जिसका चीनी उच्चारण बाद में 'मु युङ्' हो गया और सारा शिएन् पि कबीला ही 'मु युङ्' नाम से पुकारा जाने लगा। शिएन-पि लोगों की शक्ति उत्तर चीन में बढ़ती ही गई और अन्त में उसी कबीले के 'तो—बा' या 'तो पा' परिवार ने उत्तर चीन में 'उत्तर वइ राजवंश' की स्थापना सन् ३८६ ई० में की। कालान्तर में शिएन-पि लोगों ने चीनी रीति-रिवाज अपनाया और वे चीनी लोगों में ही एकदम घुलमिल गये। उन्होंने 'तो बा' या 'तो पा' की जगह अपने घराने के लिये चीनी नाम 'यूआन' रखा। अतः "उत्तर वइ राजवंश" "यूआन् वइ

राजवंश" भी कहलाता है।

६. फु छिन्—पांच वर्बर कबीलों में चौथा छिआङ् कबीले की 'ति' शाखा था। इसने सन् ३५१ ई० में उत्तर-पश्चिम में अपना राज कायम किया। इसने धीरे-धीरे उत्तर चीन पर भी अधिकार जमा लिया और वहां 'छिन्' नामक राज कायम किया। यह शाखा फु घराने की थी इसलिये इसका नाम 'फु छिन्' पड़ा। उत्तर चीन में वर्बरों द्वारा स्थापित सोलह राजों में इसकी भी गिनती है। इसने दक्षिण चीन में राज्य करने वाले समकालीन पूर्व चिन् राजवंश को हटाकर सम्पूर्ण चीन पर दखल जमाना चाहा। पर सन् ३८६ ई० में फइ नदी के किनारे हुए युद्ध में फु छिन् बहुत बुरी तरह हारा और उसके बाद धीरे-धीरे उसका उत्तर चीन का राज भी समाप्त हो गया।

७. यूआन् वइ—शिएन् पि कबीले ने उत्तर चीन में सन् ३८६ ई० में उत्तर वइ राजवंश की स्थापना की और अपने घराने का नाम तो बा या तो पा की जगह 'यूआन्' रखा। अतः यह 'यूआन् वइ' राजवंश भी कहलाने लगा। (देखिए—टिप्पणी सं० ५ भी।)

८. वइ— 'त्रिक राज' में से एक राज। यह त्रिक राजों में सबसे अधिक शक्तिशाली था। इसने सन् २२०—२६५ ई० तक राज किया। (देखिए—टिप्पणी सं० १ भी।)

९. चिन्—देखिये टिप्पणी सं० ३

१०. *उत्तर राजवंश*—उत्तर चीन में 'उत्तर वइ राजवंश' ने सन् ५३५ ई० तक राज्य किया। दरअसल उत्तर वइ सम्राट् तो सन् ५२६ में ही गद्दी से उतार दिये गये थे। इसके बाद छः वर्षों तक गृह-युद्ध होता रहा। अन्त में यह 'पश्चिम वइ' और 'पूर्व वइ' दो भागों में विभक्त हो गया। पश्चिम वइ की राजधानी छाङ् आन् में रही और पूर्व वइ की लो याङ् में। पर दोनों आपस में लड़ते रहे। अन्त में सन् ५५० ई० में पूर्व वइ के एक सेनापति ने पूर्व वइ के राजा को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन 'उत्तर छि' राजवंश की स्थापना की। छः वर्षों के बाद यानी सन् ५५६ ई० में पश्चिम वइ के

प्रधान मंत्री ने भी अपने राजा को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन 'उत्तर चउ' राजवंश की स्थापना की। इसने सन् ५५७ ई० में 'उत्तर छि' राजवंश के राज पर भी चढ़ाई कर उसे दखल कर लिया और संपूर्ण उत्तर चीन पर राज्य करने लगा। सन् ५८१ ई० में 'उत्तर चउ राजवंश' के प्रधान मंत्री याङ् चिएन् ने (यह हान् यानी चीनी जाति का था) उत्तर चउ की गद्दी पर अधिकार कर बर्बरों के राज को चीन से समाप्त किया और सुइ राजवंश की स्थापना की। उत्तर वइ (सन् ३८६—५३५ ई०) पूर्व वइ (सन् ५३४—५५० ई०), पश्चिम वइ (सन् ५३५—५५६ ई०), उत्तर छि (सन् ५५०—५५७ ई०) और उत्तर चउ (सन् ५५६—५८१ ई०) ये पांच राजवंश सम्मिलित रूप से *"उत्तर राजवंश"* कहलाते हैं क्योंकि ये उत्तर चीन में कायम हुए थे। इनके समकालीन कई राजवंश दक्षिण चीन में हुए जो 'दक्षिण राजवंश' कहलाए।

११. *दक्षिण राजवंश*—चिन् राजवंश को हटाकर बर्बरों ने उत्तर चीन पर अधिकार जमाया और चिन् सम्राट् छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) के पार दक्षिण चले गये और नान् चिङ् को अपनी राजधानी बनाया। यहां चिन् राजवंश 'पूर्व चिन् राजवंश' कहलाने लगा और सन् ३१७—४२० ई० तक उसका राज रहा। सन् ४२० ई० में एक जेनरल ने चिन् सम्राट् को गद्दी से उतार दिया और स्वयं सम्राट् बन गया और 'सुङ् राजवंश' की स्थापना की। सन् ४७९ ई० में एक सैनिक नेता ने सुङ् राजा को भी गद्दी से उतार कर 'छि' नामक राजवंश स्थापित किया। सन् ५०२ ई० में 'छि' राजवंश का राजा अपने एक योग्य सेनापति को राजगद्दी सौंप कर राज-काज से हट गया। इस सेनापति ने लिआङ् नामक राजवंश की स्थापना की। सन् ५५७ ई० में लिआङ् राजवंश भी समाप्त हो गया और छन् राजवंश स्थापित हुआ। यह छन् राजवंश उत्तर चीन में स्थापित सुइ राजवंश द्वारा सन् ५८९ में मिटा दिया गया। इस प्रकार सुइ राजवंश के

अधीन पुनः संपूर्ण चीन एक शासन के अधीन संगठित हुआ। सुङ् राजवंश (सन् ४२०—४७६ ई०), छि राजवश (सन् ४७६—५०२ ई०), लिआङ् राजवश (सन् ५०२—५५७ ई०) और छन् राजवंश (सन् ५५७—५८६ ई०) ये चार राजवंश सम्मिलित रूप से चीन के इतिहास में *दक्षिण राजवंश* कहलाते हैं क्योंकि ये दक्षिण चीन में स्थापित हुए थे और इनका प्रभुत्व भी दक्षिण चीन तक ही सीमित था। दक्षिण राजवंश का समकालीन उत्तर चीन में 'उत्तर राजवंश' था।

१२. *छि तान्*—यह कबीला कितान या खितान नाम से भी पुकारा जाता है। मूलतः यह उत्तर मंचूरिया के आमुर और सुनगारी नदियों के कांठों में रहने वाला कबीला था। फिर यह चीन के उत्तर उस भूभाग में आ बसा जिसमें तुर्क थे और तुर्क के भी पहले हूण। पहले यह तुर्क के अधीन था। थाङ् राजवंश के समय जब तुर्क लोग मार भगाए गए तो यह कबीला शक्तिशाली होने लगा और चीन की उत्तरी सीमा तक आ गया। थाङ् राजवंश के पतन के बाद चीन एक शासन के अधीन नहीं रहा और उस अवसर का लाभ उठा छि-तान् लोगों ने चीनी महान् दीवार के भीतर प्रवेश कर हू-पइ प्रान्त के उत्तर-पूर्व भाग पर अधिकार जमाया। पीछे उन लोगों ने भीतरी और बाहरी महान् दीवार के बीच के भूभाग पर भी अधिकार जमाया जो आज के चहार और सु-यूआन् प्रान्तों में पड़ता था। इस कबीले ने ता थुङ् फु शहर पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। यह मंचूरिया और लिआव् तुङ् प्रायद्वीप को पहले ही दखल कर चुका था जो थाङ् राजवंश के समय चीन के ही भूभाग थे। यद्यपि छि तान लोगों ने ठेठ चीन के बहुत बड़े भूभाग पर शासन नहीं किया पर उसके अधीन के भूभागों में बहुत चीनी आबादी थी और उनकी राजधानी चीन के शहर में थी। उन्होंने सन् ९०७-११२५ ई० तक उत्तर चीन के थोड़े से भूभाग में शासन किया और अपने राजवंश का नाम लिआव

रखा। नू चन् कबीले के आक्रमण के सामने यह कबीला ठहर नहीं सका और नू चन् ने उसके राज को दखल कर उसे खदेड़ दिया। छि तान् लोगों का एक सेनापति अपने कुछ लोगों के साथ मध्य एशिया के समरकन्द पहुंचा और काशगरिया में कारा खिताइ (पश्चिम लिआव् राज्य) के नाम से एक नया राज स्थापित किया। यह राज सन् ११२५-१२०१ तक रहा क्योंकि मंगोलों ने उस पर अधिकार कर लिया। काशगरिया में यह वंश (लिआव्) 'पश्चिम लिआव् राजवंश' कहलाया। पश्चिमी देशों में चीन का जो काथाय (Cathay) नाम प्रचलित है वह इसी छि तान् शब्द से निकला है। छि-तान् – कितान—खितान से रूसी भाषा में "किताइ" हो गया और किताइ से अंग्रेजी शब्द 'Cathay' बना।

१३. नू चन्—यह कबीला भी आमुर नदी के दोनों कांठों में रहता था। जब छि-तान् लोग शक्तिशाली थे तो यह उन्हें कर देता था। धीरे-धीरे नू-चन् लोग भी शक्तिशाली होने लगे और १२वीं शती के प्रारम्भ में इन्होंने छि-तान् का आधिपत्य अस्वीकार कर दिया। दोनों में बराबर युद्ध होता रहा। अंत में सन् ११२४ ई० में नू-चन् लोगों ने यिन् (आधुनिक पइ-चिङ् शहर) नगर में अपनी राजधानी स्थापित की। इन्होंने अपने राजवंश का नाम चिन् (=सोना, सुनहला) रखा और इसी नाम से ये चीन के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। चीन के सुङ् राजवंश से इनका बराबर संघर्ष रहा। सन् ११२६ ई० में चिन् सेना ने सुङ् सम्राट् को हटाया तथा कैद कर लिया। उन दिनों सुङ् साम्राज्य की राजधानी उत्तर चीन के पिएन् नगर (खाइ फङ् शहर) में थी। सुङ् राजवंश का एक राजकुमार बच निकला और उसने दक्षिण चीन में हाङ् चउ नगर में राजधानी स्थापित की। तब से सुङ् राजवंश 'दक्षिण सुङ् राजवंश' कहलाया। जब तक पिएन् नगर में राजधानी थी तब तक का सुङ् राजवंश 'उत्तर सुङ् राजवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् ११५३ ई० में चिन् सम्राट् अपनी राजधानी यिन् नगर से पिएन् नगर उठा ले आए और फिर दक्षिण

चीन पर भी अधिकार करना चाहा। पर इस बार सुङ् सेना ने चिन् सेना को हराया। इस प्रकार दक्षिण चीन चिन् राजवंश के अधीन नहीं हुआ। पर चिन् राजवंश पूरे उत्तर चीन यानी छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) के उत्तरी जलविभाजक तक फैला हुआ था। अंत में चिन् तथा सुङ् दोनों ही राजवंशों को मंगोलों ने समाप्त किया। चिन् राजवंश सन् १११५—१२३४ ई० तक रहा। नू चन् लोग धीरे-धीरे चीनी लोगों में घुलमिल गए।

१४. *थाइ फिङ् विद्रोह*—थाइ फिङ् विद्रोह हुङ् शिउ छुआन् के नेतृत्व में ईसाई धर्म के झंडे के नीचे मांचू सम्राट् के विरुद्ध सन् १८५० ई० में प्रारम्भ हुआ था। विद्रोहियों ने जल्द ही सारे छाङ् चिआङ् (याङ् टि सि किआङ्) के कांठों पर अधिकार जमा लिया और इस प्रकार पन्द्रह प्रान्त उनके अधीन हो गए। सन् १८५३ ई० में नान् चिङ् दखल कर उसे अपनी राजधानी बनाया। नान्-चिङ् में हुङ् शिउ-छुआन् ने थाइ फिङ् थिएन् कुओ (महान् और शांतिपूर्ण स्वर्ग राज) की स्थापना की और स्वयं थिएन् वाङ् (स्वर्ग सम्राट्) की उपाधि ली। पहले मांचू सम्राट् थाइ फिङ् विद्रोह दबाने में एकदम असमर्थ रहे। पर अंत में छङ् कुओ-फान् और लि हुङ्-चाङ् ने फ्रेडरिक टाउनसेंड और अंग्रेज जेनरल चार्ल्स जॉर्ज (चीनी भाषा में ये जेनरल गोरडोन Gordon के नाम से प्रसिद्ध हैं) की सहायता से विद्रोह शांत किया। इन लोगों की सेना ने सन् १८६४ ई० में नान् चिङ् को पुनः दखल किया। सन् १८६६ ई० तक यह विद्रोह एकदम समाप्त हो गया।

परिशिष्ट 'ख'

चीन की राजवंशावली

नाम	समय	विवरण
	(अ) अनुश्रुति-प्रचलित वंशावली	
१. फ़ान् कु (पौराणिक आदि पुरुष)	१८,००० वर्ष की आयु	
२. सान् हुआङ् (तीन पौराणिक सम्राट)	८१,६०० वर्षों तक	
(क) स्वर्ग सम्राट्	१८,००० वर्ष की आयु	
(ख) पृथ्वी सम्राट्	१८,००० वर्ष की आयु	
(ग) मानव सम्राट्	४५,६०० वर्ष की आयु	
३. श च (दश युग)		
४. पाँच शासनकर्त्ता का युग (वु ति)	ई० पू० २६६७-२२०५	इस काल और इस काल के सम्राटों के समय के बारे में कई मत हैं। कई मत से इस काल का प्रारम्भ ई० पू० २६५२ से माना जाता है और इस काल में हुए सम्राटों की संख्या नौ। यहाँ अधिक प्रचलित मत का उल्लेख है। जिन नामों के पहले (क) (ख) आदि हैं उनके नाम पर ही इस काल का नाम "पाँच शासनकर्त्ता का युग" पड़ा है।

नाम	समय	विवरण
(क) हुआङ् ति (पीला सम्राट्)	ई० पू० २६६७-२५६७	
शाव् हाव्	ई० पू० २५६७-२५१३	
(ख) चुआन् शू	ई० पू० २५१३-२४३५	
(ग) ति खु	ई० पू० २४३५-२३६५	
ति च	ई० पू० २३६५-२३५७	
(घ) याव् (थाङ् याव्)	ई० पू० २३५७-२२५५	
(ङ) शुन् (यू शुन्)	ई० पू० २२५५-२२०५	

(आ) अर्द्ध ऐतिहासिक वंशावली

नाम	समय	विवरण
१. शिआ	ई० पू० २२०५-१७६६	

(इ) ऐतिहासिक वंशावली

नाम	समय	विवरण
१. शाङ् या यिन्	ई० पू० १७६६-११२२	इस राजवंश का नाम ई० पू० १४०१ में शाङ् से बदल कर यिन् हो गया था।
२. चउ	ई० पू० ११२२-२५५	
(क) वसन्त-पतझड़ युग	ई० पू० ७२२—४८१	
(ख) रियासती कलह काल	ई० पू० ४७३—२२१	कोई कोई रियासती कलह काल ई० पू० ४८१-२२१ मानते हैं।
३. छिन्	ई० पू० २४६—२०६	इस राजवंश का प्रारम्भ ई० पू० २५५ से भी मानते हैं क्योंकि छिन् राज ने चउ राजवंश को ई० पू० २५५ में ही समाप्त कर दिया था। पर वास्तव में प्रथम छिन् सम्राट् ने सम्राट् होने

नाम	समय	विवरण
		की घोषणा ई० पू० २४६ में की थी।
४. हान्	ई० पू० २०६—सन् २२०ई०	
(क) पश्चिमी हान् या अगला हान्	ई० पू० २०६—सन् २५ ई०	सम्मिलित रूप से चीनी इतिहास में
(ख) पूर्वी हान् या पिछला हान्	सन् २५—२२० ई०	उभय हान् राजवंश भी कहलाते हैं।
५. त्रिक-राज-काल (सान्क्वो)	सन् २२०—२६५ ई०	
(क) वइ	सन् २२०—२६५ ई०	उत्तर चीन में।
(ख) शु हान् या छोटा हान्	सन् २२१—२६४ ई०	उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिमचीन में।
(ग) वु	सन् २२२—२८० ई०	दक्षिण चीन में।
६. चिन्	सन् २६५—४२० ई०	
(क) पश्चिम चिन्	सन् २६५—३१६ ई०	संपूर्ण चीन में
(ख) पूर्व चिन्	सन् ३१७—४२० ई०	दक्षिण चीन में

[पश्चिम चिन् राजवंश के अंतिम दिनों में उत्तर चीन पर बर्बर कबीलों के आक्रमण शुरू हो गए; जिस कारण उत्तर चीन से पश्चिम चिन् राजवंश समाप्त हुआ। पर चिन् राजवंश दक्षिण चीन में पूर्व चिन् राजवंश के नाम से बना रहा। तब से राजनीतिक दृष्टि से चीन उत्तर चीन और दक्षिण चीन दो भागों में बंट गया। उत्तर-चीन पर बर्बर कबीलों का अधिकार रहा और दक्षिण चीन पर चीनी लोगों का। सन् ३०४-४३९ यानी १३५ वर्षों में उत्तर चीन पर पाँच बर्बर कबीलों (हूण, शिएन् पि, ति, छिआङ् और चिए) तथा हान् जाति के सोलह राज कायम हुए। उन सोलह राजों का उल्लेख इस तालिका में नहीं है। सन् ३८६ ई० से उत्तर चीन में शिएन् पि कबीले की एक शाखा 'तो पा' या 'तो बा' अधिक शक्तिशाली होने लगी और उसने कालान्तर में सभी राजों को समाप्त कर उत्तर चीन पर अपना

नाम	समय	विवरण
आधिपत्य स्थापित किया और 'उत्तर वइ' या 'यूआन् वइ' नामक राजवंश की स्थापना की। इसका आधिपत्य उत्तर चीन तक ही सीमित रहा। यह उत्तर और दक्षिण का विभाजन सुइ राजवंश ने समाप्त किया और सारे चीन को एक शासन में संगठित किया। नीचे दक्षिण और उत्तर चीन के राजवंशों का निर्देश अलग अलग है]		
७. दक्षिण राजवंश	सन् ४२०—५८९ ई०	
(क) सुङ्	सन् ४२०—४७९ ई०	
(ख) छि	सन् ४७९—५०२ ई०	
(ग) लिआङ्	सन् ५०२—५५७ ई०	
(घ) छन्	सन् ५५७—५८९ ई०	
उपर्युक्त राजवंशों में से वु, पूर्व चिन् तथा दक्षिण राज वंश सुङ्, छि, लिआङ् और छन् ये छः राजवंश दक्षिण चीन में कायम हुए थे। अतः चीनी इतिहास में सम्मिलित रूप से ये 'दक्षिण के छः राजवंश' कहलाते हैं।		
८. उत्तर राजवंश	सन् ३८६—५८१ ई०	
(क) उत्तर वइ या यूआन् वइ	सन् ३८६—५३५ ई०	
(ख) पूर्व वइ	सन् ५३४—५५० ई०	उत्तर वइ राजवंश ही बंटकर पूर्व वइ और पश्चिम वइ हो गया।
(ग) पश्चिम वइ	सन् ५३५—५५६	
(घ) उत्तर छि	सन् ५५०—५५७	पूर्व वइ राजवंश के एक सेनापति ने अपने राजा को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन उत्तर छि राजवंश की स्थापना की।
(ङ) उत्तर चउ	सन् ५५६—५८१	पश्चिम वइ के

नाम	समय	विवरण
		प्रधान मंत्री ने सन् ५५६ में अपने राजा को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन उत्तर चउ राजवंश की स्थापना की। इसने सन् ५५७ में उत्तर छि के राजा की गद्दी भी हड़प ली और पूरे उत्तर चीन पर अपना आधिपत्य कायम किया।
६. सुइ	सन् ५८१-६१८ ई०	उत्तर चउ राजवंश का प्रधान मंत्री चीनी जाति का था। उसने सन् ५८१ में अपने सम्राट् को गद्दी से उतार दिया और स्वयं सम्राट् बन सुइ राजवंश की स्थापना की। इसने ५८९ ई० तक में दक्षिण चीन के छन् राजवंश को भी समाप्त कर दिया। इस प्रकार सुइ राजवंश के अधीन पुनः पूरा चीन एक शासन सूत्र में संगठित हुआ। अतः सामान्यतया सुइ राजवंश का प्रारम्भ सन् ५८९ से माना जाता है। पर वास्तव में सुइ राजवंश की स्थापना सन् ५८१ में ही हुई थी।

नाम	समय	विवरण
१०. थाङ्	सन् ६१८-९०७ ई०	

थाङ् राजवंश के अंतिम दिनों में ही चीन पर छि-तान् (कितान तातार) आदि कबीलों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। थाङ् राजवंश के बाद चीन राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं रहा। थोड़े वर्षों के अन्दर ही एक के बाद एक पाँच राजवंश कायम हुए। साथ साथ उत्तर चीन की उत्तरी सीमा पर छि तान् कबीला भी अपना राज कायम कर लिआव् राजवंश के नाम से राज्य करने लगा। यद्यपि चीन के बहुत बड़े भूभाग पर लिआव् राजवंश का अधिकार नहीं था पर लिआव् राज के भीतर चीनी आबादी काफी थी। पाँच राजवंशों के बाद सुङ् राजवंश की स्थापना हुई पर लिआव् राजवंश उत्तरी सीमा पर कायम ही रहा। सुङ् शासन काल में ही नू-चन् कबीले ने लिआव् राजवंश को समाप्त कर दिया और उत्तर चीन से सुङ् राजवंश के आधिपत्य को भी समाप्त कर दिया। नू-चन् कबीला चिन् (= सुनहला) राजवंश के नाम से उत्तर चीन में राज करने लगा और सुङ् राजवंश का आधिपत्य दक्षिण चीन में रहा। जब से सुङ् राजवंश का आधिपत्य केवल दक्षिण में रहा वह दक्षिण सुङ् राजवंश कहलाने लगा। इसलिये जब तक उसका आधिपत्य लगभग पूरे चीन पर था वह उत्तर सुङ् राजवंश कहलाया (क्योंकि राजधानी उत्तर चीन में थी)। कालान्तर में मंगोलों का आक्रमण चीन पर हुआ और इस आक्रमण से पहले उत्तर चीन का चिन् राजवंश समाप्त हुआ और फिर दक्षिण का सुङ् राजवंश भी। इस प्रकार मंगोलों के अधीन पुनः संपूर्ण चीन एक शासन में संगठित हुआ। नीचे पाँच राजवंशों, लिआव्, सुङ् चिन् आदि राजवंशों का निर्देश अलग अलग किया गया है]

११. पाँच राजवंशों का युग—सन् ९०७-९६० ई०

नाम	समय	विवरण
(क) पिछला लिश्राङ्	सन् ६०७-६२३ ई०	
(ख) पिछला थाङ्	सन् ६२३-६३६ ई०	
(ग) पिछला चिन्	सन् ६३६-६४७ ई०	
(घ) पिछला हान्	सन् ६४७-६५१ ई०	
(ङ) पिछला चउ	सन् ६५१-६६० ई०	
१२. लिश्राव् (छि-तान् कबीले का)	सन् ६०७-११२५ ई०	नू चन् कबीले ने इसका राज दखल कर इसे खदेड़ दिया। इस पर इस कबीले के एक सेनापति ने मध्य एशिया में जा कर अपना राज कायम किया और वहाँ यह राजवंश पश्चिमी लिश्राव् कहलाया। इस राजवंश का राज वहाँ सन् ११२५-१२०१ तक रहा जिसे मंगोलों ने समाप्त कर दिया।
१३ सुङ्	सन् ६६०-१२७६ ई०	
(क) उत्तर सुङ्	सन् ६६०-११२६ ई०	लगभग संपूर्ण चीन पर।
(ख) दक्षिण सुङ्	सन् ११२७-१२७६ ई०	केवल दक्षिण चीन पर।

नाम	समय	विवरण
१४. चिन् (नू चन् कबीले का)	सन् १११५-१२३४ ई०	
१५ यूआन् (मंगोल जाति का)	सन् १२८०-१३६८ ई०	मंगोलों ने दक्षिण सुङ् की राजधानी पर तो सन् १२७७ में ही कब्जा कर लिया था। पर दो सुङ् राजकुमार सुदूर समुद्र किनारे अपना आधिपत्य सन् १२७६ ई० तक बनाए रहे। इसलिये यहाँ यूआन् राजवंश का प्रारम्भ सन् १२८० से लिखा गया है। कितने लोग इसका आरंभ सन् १२७७ से ही मानते हैं।
१६. मिङ्	सन् १३६८-१६४४ ई०	
१७. छिङ् (माँचू जाति का)	सन् १६४४-१९११ ई०	
१८. प्रजासत्तात्मक राज	सन् १९१२-	१ ली जनवरी, सन् १९१२ में चीन में प्रजासत्तात्मक राज की स्थापना हुई जो जारी है।